बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

प्रधान संपादक

गिरीश्वर मिश्र

संपादक

अशोक मिश्र

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

बहुवचन
अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक
अंक : 51 (अक्टूबर-दिसंबर 2016) ISSN- 2348-4586
प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

संपादकीय संपर्क :
संपादक बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
मो. संपादक- 7888048765, 09422386554, ईमेल- bahuvachan.wardha@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : राजेश कुमार यादव
ईमेल- rajeshkumaryadav97@gmail.com फोन- 07152-232943, मो. 09975467897

© **संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित**
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

पत्रिका न मिलने की शिकायत इस पते पर करें :
प्रचार प्रसार : सुरेश कुमार यादव
फोन : 07152-232943, मो. 09730193094, ईमेल- s.ujala80@gmail.com

बिक्री और प्रसार कार्यालय :
प्रकाशन विभाग, **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, फैक्स : 07152-230903

वार्षिक सदस्यता के लिए बैंक ड्राफ्ट **महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय** के नाम से, जो वर्धा में देय हो, ऊपर लिखित बिक्री कार्यालय के पते पर भेजें। मनीऑर्डर स्वीकार्य नहीं।

अंक : रु. 75/-, वार्षिक शुल्क रु. 300/-, द्विवार्षिक शुल्क रु. 600/- व्यक्तिगत
संस्थाओं के लिए वार्षिक शुल्क रु. 400/-, द्विवार्षिक रु. 800/- (डाक खर्च सहित)
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 15 अमेरिकी डॉलर/7 ब्रिटिश पाउंड
समुद्री डाक : एक प्रति 8 डॉलर/5 ब्रिटिश पाउंड
आवरण : देवप्रकाश चौधरी

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHIANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA) INDIA.

मुद्रक : क्विक ऑफसेट ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 (फोन : 011-22824606, मो. 9811388579)

अनुक्रम

आरंभिक

हमारे सपनों का भारत 4

वैचारिकी

शिक्षा में सुधार की चुनौती/ *प्रकाश जावड़ेकर* 9

समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था/ *ए.पी.जे. अब्दुल कलाम* 12

मेरे स्वप्न का भारत/ *कमल किशोर गोयनका* 22

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम : नव युग के स्वप्न द्रष्टा/ *जी. गोपीनाथन* 28

भारतीय संस्कृति : इतिहास और भविष्य/ *रामाश्रय राय* 35

परिवर्तन के संकेत/ *अच्युतानंद मिश्र* 44

भारतीय दृष्टि से बदलाव की जरूरत/ *रामबहादुर राय* 48

राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य/ *दादूराम शर्मा* 53

राष्ट्र चिति और संस्कृति/ *प्रमोद कुमार दुबे* 62

मेरे सपनों का भारत/उषा काल के सूरज की सतरंगी किरणों जैसा है/*देवी प्रसाद त्रिपाठी* 68

पुराना सपना छूट न जाए/ *पुष्पेश पंत* 71

एक खुशहाल और शांत भारत/ *एस.एन.सुब्बाराव* 76

सपनों को साकार करने की जरूरत/ *कमल नयन काबरा* 78

सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्रचना के प्रश्न/ *विभांशु दिव्याल* 90

मिलावट मुक्त भारत का सपना/ *प्रयाग शुक्ल* 98

गिरेबान में झांकने की जरूरत/ *संजीव* 104

धर्म का आधुनिक संदर्भ : भारत/ *राम पुनियानी* 110

समता, समृद्धि और उदारता / *अरुण कुमार त्रिपाठी* 117

गांधी के सपनों का भारत और प्रतिबद्धता/ *मनोज कुमार* 130

पंचायतराज और महिला सशक्तिकरण/ *देवेंद्र उपाध्याय* 136

स्वास्थ्य क्रांति/ *ए.पी.जे. अब्दुल कलाम* 140

उड़े कहानी और कविताएं : मेरे सपनों के भारत में/ *अमिताभ शंकर राय चौधरी* 153

भविष्य का मेरा भारत/ *धीरेन्द्र पाल सिंह* 159

आरंभिक

हमारे सपनों का भारत

कहते हैं कि सपने मन की मुरादों को रेखांकित करते हैं। इसलिए यदि सपने देखना सबको अच्छा लगे तो कोई आश्चर्य नहीं है। वह आदमी की फितरत में है। पर सपने भी कई तरह के होते हैं, सुहाने भी और डरावने भी। कुछ खामखयाली वाले दिवास्वप्न होते हैं तो कुछ कल्पनाशील मन के साथ सर्जन-परिवर्तन के स्रोत बन जाते हैं। आम तौर पर हर कोई अपनी जिंदगी को लेकर सपने बुनता है। पर किसी जाति, समुदाय या देश को लेकर सपने देखना बड़ा ही व्यापक और एक हद तक अनिश्चय भरा काम होता है। पूरे देश की जगह अपने को रखकर उसके साथ समानुभूति करते हुए सोचना एक बड़ी चुनौती है। भारत को लेकर सपने देखना समूचे इतिहास और संस्कृति को संजोते हुए भविष्य का ताना-बाना बुनना या नई इबारत लिखना-पढ़ना जैसा काम है। भारत बड़ा पुराना नाम है और दुर्भाग्य से 'भारत' की परंपरागत संकल्पना को अतीत यानी इतिहास से जोड़ा जाता है जो बीत चुका है या चुका हुआ है। पर ठीक ऐसा भी नहीं है क्योंकि निरंतरता भी बनी हुई है। ऋग्वेद के 'पृथ्वी सूक्त' और 'विष्णुपुराण' जैसे प्राचीन ग्रंथों और कौटिल्य और कालिदास आदि की कृतियों में जिस सांस्कृतिक सत्ता की छवि राष्ट्र के रूप में उभरी थी वह जन समुदाय की सामाजिक स्मृति में तो है ही वह उन तमाम प्रतीकों, प्रथाओं, अनुष्ठानों और संगीत, नृत्य आदि के विविध रूपों में भी सजीव रूप में लोक जीवन में व्याप्त है।

खुली आंखों से सपने देखना यानी भविष्य को वर्तमान में लाना एक वैचारिक प्रयोग (थाट एक्सपेरिमेंट) है। इन्हें यथार्थ के धरातल पर उतारने में उत्साह, क्षमता और कर्म के प्रति समर्पण की खासी भूमिका होती है। इसलिए अपने यथार्थ की जमीन पर खड़े होकर सपने देखना अधिक फलदायी होता है। पर यह यथार्थ स्थिर नहीं होता। समय के साथ परिस्थितियों में बदलाव आता है। इस बदलाव के चलते हम क्या हैं? क्या होना चाहते हैं? क्या बनना चाहते हैं? कैसे बनेंगे? उसके उपादान क्या होंगे? इन सब प्रश्नों पर समय-समय पर या कहें बार-बार सोचना जरूरी होता है। इसलिए सपने हर पीढ़ी अपने-अपने देश और काल में देखा करती है। उन्होंने भी सपने देखे थे जिन्होंने स्वतंत्रता की बलि वेदी पर जान गंवाई और वे भी जो उस स्वतंत्रता का लाभ भोग रहे हैं। पिछली पीढ़ी नहीं है पर उसकी विरासत मौजूद है और वे संस्थाएं भी जिन्हें उन्होंने बनाया था। भारत में राजनैतिक दृष्टि से कई वैचारिक धाराएं बहती रहीं जिन्होंने हमारी चाल-ढाल, पसंद नापसंद, क्या करें, कैसे करें आदि को प्रभावित करती रही हैं।

जब देश स्वतंत्र नहीं था उस समय देश को ले कर तीव्र भावनात्मक लगाव था। देश के बारे में सपनों की अनुगूंज सर्जनात्मक साहित्य में भी हुई। बंकिम बाबू ने 'सुजलां सुफलां, मलयज

शीतलां, शस्य श्यामलां, मातरम्, वन्दे मातरम्' का सुर छेड़ा था। सुब्रह्मण्य भारती ने देश को ललकारा था। जयशंकर प्रसादजी ने 'स्वयंप्रभा समुज्वला' स्वतंत्रता की पुकार सुनी और 'अमर्त्य वीर पुत्र' जो 'दृढ़प्रतिज्ञ थे' का आह्वान किया था। उनका भारत 'मधुमय देश' था। इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' का गीत गाया था। गुरुदेव ने 'जनगणमन अधिनायक' का गान किया था। कविवर मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत भारती' लिखी। महाप्राण निराला ने प्रार्थना की थी कि 'अंध उर के बंधन स्तर' कटें 'और 'नव नभ के नव विहग वृंद को' 'नव पर नव स्वर' मिलें। स्वतंत्रता को लेकर सबमें नवोन्मेष की आस थी। देश तो स्वतंत्रता मिली पर भारत के टुकड़े हुए, भीषण रक्तपात हुआ। इसके साथ ही अंर्तसामूहिक संबंधों के जटिल प्रश्न खड़े हुए। एक देश के रूप में भारत एशिया और विश्व राजनीति के पटल पर अपनी भूमिका तलाशने लगा।

आधुनिक भारत के नायकों में लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, श्री अरविंद, पंडित नेहरू, बाबा साहब अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया और ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आदि ने अपने-अपने ढंग से भारत के सपने देखे और उन्हें समाज के साथ साझा किया था। उन सपनों के प्रति समर्पित होकर इन लोगों ने उनकी ओर चलने के लिए जनता को उद्यत भी किया था। उनमें कुछ लक्ष्यों को पाने का संकल्प था और समाज को कुछ कष्टों से मुक्त करने की जिद थी। एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था और गणतंत्र के रूप में देश की सार्वभौम सत्ता प्रतिष्ठित हुई। इस देश के सपनों में आजादी, समता, समरसता, समानता, एकता, स्वास्थ, शिक्षा, सुरक्षा आदि को प्राप्त करने और गरीबी, अस्पृश्यता, बेरोजगारी, भेदभाव और अभाव के कष्टों से मुक्ति पाने को लक्ष्य बनाया गया। देश के लिए सपनों को देखने और समझने से लेकर कार्यान्वित करने के लिए हमने एक महकमा ही बना दिया जिसे 'योजना आयोग' नाम दिया गया। इसने अब तक बारह पंचवर्षीय योजनाएं यानी राष्ट्रीय सपने बनाकर पेश किए। अब इसकी जगह 'नीति आयोग' बन गया है। शिक्षा के प्रसार, स्वास्थ्य, अंतरिक्ष विज्ञान तथा कंप्यूटर विज्ञान आदि के क्षेत्रों में हमने अच्छी प्रगति दर्ज की है और आर्थिक मोर्चे पर भी सुधार हुआ है। पर परिवर्तन किधर जा रहा है और कितनी हद तक सबका भला कर रहा है यह विचारणीय है।

राष्ट्रपिता गांधी ने देश के लिए एक सदी पहले एक बड़ा सपना 'हिंद स्वराज' में देखा था जो पहली बार 1909 में एक संवाद के रूप में प्रस्तुत किया था। वह सपना भारत को न केवल राजनैतिक सत्ता या एक स्वतंत्र देश के रूप में स्थापित करता था बल्कि एक विकेंद्रित, स्वावलंबी, स्थानीय संसाधनों पर टिकी, प्रकृति के प्रति संवेदनशील, सामाजिक भागीदारी और संवाद वाली व्यवस्था को प्रश्रय देने वाली सभ्यता का था। इसमें ज्यादा से ज्यादा रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की दृष्टि से बड़ी मशीनों की जगह छोटी मशीनों और हाथ के कामों पर जोर था। गांधीजी के द्वारा सारी जनता का सुख कैसे बढ़ाया जाए और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग किस तरह किया जाए कि वे अगली पीढ़ी के लिए भी बने रहें यह सोचा गया। गांधीजी के सपने में भारतीय समाज का एक समावेशी रूप था जिसमें पिछड़े और हाशिए के लोगों के जीवन और सरोकारों पर खासा जोर था। वे इनके लिए ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करना चाहते थे ताकि वे एक सामान्य नागरिक की तरह जीवन यापन कर सकें।

गांधीजी द्वारा प्रस्तावित 'बुनियादी शिक्षा' इसी तरह की दृष्टि के विकास को आगे बढ़ाने वाली

थी। इस में जीवन को एक अवसर के रूप में देखा गया और हाथ और मस्तिष्क दोनों के उपयोग पर ध्यान दिया गया। गांधीजी शरीर, बुद्धि और आत्मा तीनों का संतुलित विकास चाहते थे। उनकी की जीवन दृष्टि वास्तविकताओं पर टिकी एक आडंबरहीन दृष्टि थी जो सहज जीवन को स्वीकार करती थी। गांधीजी अपनी कल्पना को अपने आश्रमों में प्रयोग में ला रहे थे। वे स्वयं को आध्यात्मिक मानते थे। सत्य और अहिंसा सिर्फ आदर्श न रह कर व्यावहारिक पथ प्रदर्शक थे। आत्मानुशासन और पर दुखकातरता उनके मूलमंत्र थे।

स्वतंत्रता मिलने के साथ देश ने करवट बदली। उपनिवेश से मुक्त होकर देश को अपनी देखभाल खुद करनी थी। स्वतंत्रता तंत्र का अभाव नहीं बल्कि स्व या अपने तंत्र की पुकार होती है। इसे स्वायत्तता कहें तो ज्यादा ठीक है। वस्तुतः स्वतंत्र होने से अपने ऊपर स्वयं नियंत्रण या आत्मनियमन की अपेक्षा करता है। इसका अर्थ है ऐसा तंत्र जो स्वयं को पुष्ट और संवर्द्धित कर सके। पर हम स्वयं को अपनी शर्तों पर परिभाषित नहीं किए और अनुकरण में लग गए। विकास का ऐसा पश्चिमी मॉडल अपनाया जिसमें तकनीक, उपभोग और अधिकार ही प्रमुख सरोकार बन गए। विकसित देशों का वर्चस्व बना। उन्हीं को आदर्श मान हम वैसा ही बनने बनाने को उद्यत हो गए, उनके अनुभवों से बिना कोई सीख लिए। कहना न होगा कि गांधीजी के विचारों को सराहा तो गया पर उपयोग के लिए ठीक नहीं माना गया हमने दूसरा रास्ता पकड़ा।

इक्कीसवीं शताब्दी तकनीकी के चरम का समय है। मन और शरीर की सारी तृष्णाएं मुंह बाएं खड़ी हैं और सभी उनकी पूर्ति करने के लिए आतुर हैं। दिन पर दिन आकांक्षाओं में वृद्धि हो रही है। सुख सुविधा के सरंजाम बढ़ते जा रहे हैं। हर कोई उन्हें पाने में मशगूल है। उपकरणों के नित नए मॉडल आते हैं और उन्हें पाने को हम व्यग्र हो उठाते हैं। आज भारत 'इंडिया' होने को बेताब दिखता है पर भारत की अधिसंख्य जनता अभी भी गांवों में रहती है। सारी योजनाएं शहरों और महानगरों को ही केंद्र में रखकर बनाई जाती है और गांव उपेक्षित ही रह जाते हैं। अब वैश्वीकरण के दौर में आधुनिकीकरण और शहरीकरण ही विकास की अकेली राह बनता जा रहा है। एक सच्चाई यह भी है कि अभी भी भारत गांवों का ही देश है और अधिकांश जनसंख्या वहीं बसती है इसके बावजूद वहां कि समस्याओं पर खास ध्यान नहीं दिया गया और कृषि की सतत् उपेक्षा होती रही। गांव शहर बन रहे हैं और शहर की सारी मुसीबतें वहां पहुंच रही हैं। शिक्षा की दृष्टि से हमारे आयोजन यूरो-अमेरिकी मॉडल का ही विस्तार करते नजर आते हैं। इस क्रम में आयातित ज्ञान ने समस्याओं को देखने-समझने की एक हद तक असंगत दृष्टि प्रदान की और देश के लिए उपयोगी ज्ञान पिछड़ता गया। सतत उपेक्षा के कारण यहां की अपनी ज्ञान परंपराएं लुप्त होने के कगार पर पहुंच रही हैं। उपभोक्ता की दृष्टि से हम कितना आगे बढ़ पा रहे हैं यही विकास का पैमाना बन गया। देश की शिक्षा भी इसी ढांचे पर चली और बाजार से नियंत्रित होने लगी। मुक्त करने वाली शिक्षा बंधन में डालने लगी। अब उपभोग के रोग बढ़ रहे हैं। असुरक्षा और भ्रष्टाचार में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। गरीबी और अमीरी के बीच की खाई भी तेजी से बढ़ रही है। स्वाभाविक है कि हम सब ऐसा चाहते तो नहीं थे पर जो राह अपनाई गई उसका अनिवार्य रूप से यही हश्र होना था।

आज के महत्वपूर्ण सवाल हैं कि लोगों को काम मिले और उपयुक्त तकनीक का प्रयोग किया जाय। आर्थिक नीति और नियोजन की प्रक्रिया पर एक किस्म के नैतिक अर्थशास्त्र का दबाव जरूरी

हो गया है। साथ ही विकेंद्रित बहुआयामी व्यवस्था भी होनी चाहिए। उपभोग से उपजी बीमारी का प्रतिकार करने के लिए हमें शरीर का अनुशासन सीखना होगा। भूख पर नियंत्रण करना होगा क्योंकि स्वस्थ्य जीवन ही इलाज है। निरंतर आर्थिक विकास और ऊर्जा के अधिकाधिक उपयोग की नीति दीर्घकाल में कारगर नहीं हो सकती। आधुनिकीकरण, शहरीकरण, प्रति व्यक्ति उपभोक्ता वस्तुओं का उच्च स्तर पाने की अदम्य लालसा जैसी सोच पर पुनर्विचार करना होगा। साधारण और किफायती जीवन का कोई विकल्प नहीं है। हमें आगे आने वाले कल के लिए विश्व को सुरक्षित रखना होगा। आर्थिक, पर्यावरणीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उभरती चुनौतियों की उपेक्षा करने के गंभीर परिणाम होंगे। इस दृष्टि से कई विचारणीय मुद्दे हैं। जनसंख्या बढ़ती जा रही है। खास तौर पर युवा वर्ग का अनुपात बढा है और इसके साथ ही उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक जरूरतों की मात्रा और तीव्रता भी बढ़ी है। इन्हें कुशल, योग्य और आत्मनिर्भर नागरिक बनाना हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। इसके लिए शिक्षा के वर्तमान स्वरूप और प्रक्रियाओं पर गंभीर विचार करना होगा। शिक्षा में स्तर और वर्गभेद की उपस्थिति ने शिक्षा के परिणामों को जटिल बना दिया है। इसी तरह वृद्ध जनों की संख्या बढ़ रही है। उनकी देख-भाल, सुरक्षा और स्वास्थ्य भी एक बड़ी जिम्मेदारी बनती है। स्त्रियों और जनजातियों, पिछड़े और अन्य हाशिए पर स्थित समुदायों के कुशल-क्षेम की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। उन पर अत्याचार और उनका शोषण भारत को मानवाधिकारों के मामले में जहां कमजोर करता है वहीं उनका क्षोभ आक्रामक रुख अख्तियार कर विद्रोह और अलगाववादी स्वर को जन्म दे रहा है। परंपरागत सामाजिक विषमताओं के कारण भारत को गांव न बनाएं पर गांवों की स्थिति को सुधारना अत्यंत आवश्यक है। यदि गांवों को सशक्त बनाना और उसकी संस्थाओं को प्रासंगिक बनाना जरूरी है तो शहरों के अव्यवस्थित विकास पर भी रोक लगानी होगी। वहां पर आवश्यक सुविधाओं जैसे सड़क, यातायात, बिजली, पेयजल, सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा जुटाना मुश्किल हो रहा है और हर शहर में मलिन बस्तियां बढ़ रही हैं। रोजगार की तलाश में लोग गांवों से शहरों की ओर मुखातिब हो रहे हैं। उनका पलायन अनेक तरह की समस्याओं को पैदा कर रहा है। सरकार ने 'स्मार्ट सिटी' की योजना शुरू की है जिसके अंतर्गत चुनिंदा शहरों को सर्वसुविधायुक्त बनाया जा रहा है। निश्चय ही यह समस्या पूरा समाधान नहीं है। वस्तुतः आधारभूत संरचना एक ऐसा क्षेत्र हैं जहां बहुत कुछ करना शेष है।

भारत में तकनीकी प्रगति के क्षेत्रों में संचार और सूचना के क्षेत्र बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। प्रजातंत्र में स्वतंत्र मीडिया बेहद जरूरी होता है। भारत इस दृष्टि से काफी आगे है। प्रेस की आजादी बरकरार है हालांकि प्रकाशन व्यवसाय पर कुछ घरानों का अधिकार बना हुआ है जिससे कुछ आग्रह आ जाते हैं। न केवल राष्ट्रीय बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर भी अखबार अच्छी संख्या में निकल रहे हैं। अभिव्यक्ति की आजादी है। भारतीय गणराज्य के संचालन के लिए हमने जो संस्थाएं बनाईं वे चल रही हैं और कुछ के काम में सुधार हुआ है (जैसे निर्वाचन आयोग) तो कुछ के काम में व्यवस्था की कमजोरियां आईं (जैसे संसद और न्यायपालिका)। मुकदमों की तुलना में जजों का न होना बड़ी मुश्किल पैदा कर रहा है। नेता, अपराध और धन बल के रिश्ते मजबूत हुए हैं। नौकरशाही का स्वरूप अभी जनता के प्रति संतोषजनक ढंग से संवेदनशील नहीं हो सका है। प्रजातंत्र के स्वास्थ्य के लिए यह सब चिंताजनक है।

विकास का जो मॉडल अपनाया उसका हानि-लाभ तो होना ही था। आर्थिक-सामाजिक भेदभाव एवं समानता की दिशा में हमारी यात्रा कैसी रही है और एकता की दिशा में हम कितना आगे बढ़ सके हैं यह एक गंभीर प्रश्न है। धरती मां से लगाव और उसके रक्षा और संवर्द्धन की इच्छा प्रबल है। भारत ने दिग्विजयी की जगह आत्मजयी होना श्रेयस्कर माना था। सफलता, नवोन्मेष और उपलब्धि कालानुबंधित होते हैं इसलिए उन्हें सतत परिभाषित करते रहना होता है।

सपने व्यक्तियों के भी होते हैं और देश के भी। भारत में दोनों की राहें अलग सी होती गईं। अब स्थिति यह हो गई है कि देश को ही समझना मुश्किल हो रहा है। वैसे तो 'देश' शब्द स्थानवाचक है पर वह निरा भूगोल नहीं होता है। वह देशवासियों की सोच से बनता है और देशवासियों की सोच को बनाता भी है। भारत के पास एक विशाल ज्ञान-परंपरा और सृष्टि के साथ जुड़ते हुए जीने की दृष्टि है। शहर में कम पर गांवों में अभी भी यह लोक जीवन का हिस्सा है। आज बाजार का असर सब कुछ को अपने में खपाता जा रहा है। अतः आज सर्जना और प्रतिकार दोनों ही जरूरी होते जा रहे हैं। आने वाला समय आत्म परीक्षण और सजग संधान का है। साथ ही समय, श्रम और संवेदना वाली कार्य संस्कृति का विकास करना होगा। एक खुशहाल और समर्थ देश का सपना देखते हुए तुलसीदासजी के रामराज्य की याद आती है। वे ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें दैहिक, दैविक और भौतिक किसी भी तरह के ताप नहीं थे। हम भी ऐसे ही भारत का सपना देखते हैं जहां सारा लोक सुखी हो, किसी को कोई कष्ट न हो। हमारी भी कामना है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चित् दुःखभाग भवेत॥

(सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े)

आज जीवन जटिल होता जा रहा है और उसकी चुनौतियां बहुआयामी। गुलामी से मुक्ति के सत्तर साल हो रहे हैं। बदले समय में नए ढंग से सोचने समझने की जरूरत है। यही सोच कर 'बहुवचन' ने विभिन्न क्षेत्रों के विचारकों और विद्वानों से अनुरोध किया कि वे अपने-अपने क्षेत्र में भारत को किस रूप में देख रहे हैं और देखना चाहते हैं इस पर अपने विचार प्रस्तुत करें। अधिकांश ने व्यस्तता के बावजूद अपने आलेख भेजकर हमें कृतार्थ किया। हम उन सभी के प्रति हृदय से आभार ज्ञापित करते हैं। आशा है 'बहुवचन' का यह अंक देश की भावी परिकल्पना को लेकर चल रहे विमर्श में सहायक होगा।

गिरीश्वर मिश्र

शिक्षा में सुधार की चुनौती

प्रकाश जावड़ेकर

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत एक ऐसा देश है जो कभी विश्व स्तर के विश्वविद्यालयों के लिए जाना जाता था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला अपने समय के सर्वश्रेष्ठ विद्या केंद्रों में थे। यह ऐसा समय था जब विश्व व्यापार में भारत की बड़ी साख थी और बड़ा हिस्सा था। आज इसका ठीक उल्टा हो रहा है। हमें फिर कोशिश करनी है कि भारत एक उन्नत देश बन सके। यह इस अर्थ में और जरूरी है कि भारत की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा बच्चों और युवा वर्ग का है। यदि हम बच्चों को सही शिक्षा दें तभी हम योग्य और कुशल मानव संसाधन का विकास कर सकेंगे। उसके द्वारा देश में नवाचार का माहौल बनाने में मदद मिलती है। शिक्षा के संस्कार देश के नागरिकों के व्यक्तित्व, आचरण और मूल्यों को निखारती है और उन्हें एक विश्व नागरिक बनाने में मदद करती है। इसीलिए सभी देश एक निश्चित अंतराल पर शिक्षा में सुधार करने का प्रयास करते हैं और अपनी शिक्षा नीति की समीक्षा करते हैं। आजादी के बाद इस संबंध में देश में कई बड़े कदम उठाए गए हैं। सबसे पहले मुदलियार आयोग का गठन हुआ था। उसके बाद कोठारी आयोग बना। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी थी, जिसे 1992 में संशोधित किया गया था। उसके बाद पच्चीस साल बीत चुके हैं। जाहिर है, आबादी की बदली जरूरतों और शिक्षा, नवाचार तथा शोध के स्तर पर पैदा हुई जनआकांक्षाओं को पूरा करने के लिए हमें अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर एक बार पुनर्विचार करना चाहिए।

शिक्षा नीति एक सतत् प्रयास है और इसीलिए हम सभी को एक नई शिक्षा नीति का हिस्सा बनना चाहिए, जो आम सहमति और विचार विमर्श से विकसित की जा सकती है। यही वजह है कि सरकार ने इस संबंध में जनवरी 2015 में ही पुनर्विचार प्रक्रिया आरंभ कर दी थी। स्कूली शिक्षा के लिए 13 विषय चयन किए गए थे, जिसमें अध्ययन के परिणाम, माध्यमिक शिक्षा, वोकेशनल शिक्षा, परीक्षा, टीचर एजुकेशन, सूचना एवं संचार तकनीक का प्रयोग, शिक्षा शास्त्र, स्कूल प्रणाली, समावेशी शिक्षा, भाषा और बाल स्वास्थ्य शामिल थे। आज हर कोई स्कूली शिक्षा के लिए इन विषयों की प्रासंगिकताओं को स्वीकारेगा। इससे बढ़कर बात यह है

कि कोई भी व्यक्ति इनसे संबंधित अपने सुझाव दे सकता है।

उच्च शिक्षा के लिए 20 विषयों का चयन किया गया था, जिसमें उच्च शिक्षा का संचालन, गुणवत्ता, विनियमन, केंद्रीय संस्थाएं, राज्य विश्वविद्यालय, कौशल विकास, ओपेन यूनिवर्सिटी, क्षेत्रीय विषमताएं, लैंगिक और सामाजिक खाई, समाज से जुड़ाव, भाषा, पीपीपी फाइनेंसिंग, उद्योग जगत से जुड़ाव, रिसर्च, नवाचार और नया ज्ञान शामिल है। इसके अलावा इसमें कई और विषय भी जोड़े जा सकते हैं। इसके लिए 26 जनवरी 2015 से ऑनलाइन विचार-विमर्श की प्रक्रिया आरंभ हुई, जिसके जरिए कुछ बिंदु रखे गए और उन पर विचार मांगे गए। 31 अक्टूबर, 2015 तक 29 हजार प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई थीं। मई 2015 में एक लाख दस हजार गांवों, 3015 ब्लॉकों, 406 जिलों और 962 स्थानीय निकायों में जमीनी स्तर पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया आरंभ हुई। विभिन्न शिक्षा कमेटियों के सदस्यों, शिक्षकों, प्रधानाचार्यों और शिक्षा से जुड़े सभी लोगों ने इन विषयों पर चर्चा की और अपने सुझाव दिए। 21 राज्यों ने भी स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा पर अपनी प्रतिक्रियाएं दी हैं। इस प्रक्रिया के बाद सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में छह जोनल बैठकें की गई थीं। इस जोनल बैठक में कई राज्यों के शिक्षा मंत्री भी मौजूद थे। इस प्रकार शिक्षा नीति के संबंध में व्यापक विचार-विमर्श हुआ और इस क्रम में तमाम सुझाव हमें प्राप्त हुए। इसके बाद इन सभी सुझावों को समझने और छांटने के लिए भी टीएसआर सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई। कुछ लोगों ने अर्थ लगाया कि यह कमेटी नई शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयार के लिए गठित की गई है। सुब्रमण्यम कमेटी ने बड़े पैमाने पर आए सुझावों की जांच-पड़ताल की। इस कमेटी ने भी शिक्षा से जुड़े विभिन्न लोगों के साथ बैठक की थी। गहन और विस्तृत विचार-विमर्श की प्रक्रिया के बाद सुब्रमण्यम कमेटी ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे के विकास के लिए भारत सरकार को अपने सुझाव दिए। इस प्रकार जमीनी स्तर पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया से आए सुझाव और सुब्रमण्यम कमेटी की सिफारिशों ने नई शिक्षा नीति पर चर्चा और बहस आरंभ करने के लिए महत्वूपर्ण इनपुट दिए हैं। सुब्रमण्यम कमेटी द्वारा दी गईं सिफारिशें शिक्षा नीति का मसौदा नहीं हैं, क्योंकि यह अभी न तो मंत्रिमंडल के समक्ष लाई गई है और न ही मंत्रिमंडल ने उन पर मुहर लगाई है। दरअसल यह सिर्फ नई शिक्षा नीति के मसौदे का एक खाका भर है। यहां यह समझना जरूरी है कि किस आधार पर नई शिक्षा नीति का विकास होना चाहिए। देश के सामने मौजूद चुनौतियों से निपटने और हर व्यक्ति को रोजगार के अवसर मुहैया कराने के लिए नई शिक्षा नीति पांच स्तंभों पर टिकी होनी चाहिए। ये पांच स्तंभ हैं-पहुंच, सामर्थ्य, गुणवत्ता, समानता और जवाबदेही। विगत सत्तर सालों के दौरान शिक्षा को हम हर दरवाजे पर ले गए हैं और इसके विस्तार के अपने लक्ष्य को पाने में सफल रहे हैं।

अब हमारे सामने प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक हर स्तर पर शिक्षा को सुधारने की चुनौती है। अर्थात हमें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सपना साकार करना होगा। इसके लिए शिक्षण का सम्मानजनक कॅरिअर बनाना शेष है। लिहाजा नई शिक्षा नीति का मुख्य जोर

गुणवत्ता पर रखना होगा। इसे भारत की ज्ञान परंपरा से जोड़ना होगा। नई नीति में सामाजिक न्याय और समानता के तत्वों को शामिल कर शिक्षा को समावेशी बनाना भी समान महत्व रखता है। जाहिर है, हमारे सामने सबसे मुख्य चुनौती तर्कसंगत समाधान खोजने को है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता सुधरे और हर स्तर पर सभी छात्रों को अवसर भी मिले। पिछले महीनों में मैं कई विश्वविद्यालयों और आई.आई.टी. में गया हूं और वहां की प्रतिभाओं ने मुझे प्रभावित किया है। अनेक स्थानों पर बहुत अच्छा और उपयोगी अनुसंधान हो रहा है।

अभी हाल ही में संसद के मानसून सत्र में राज्यसभा में भी नई शिक्षा नीति पर संक्षिप्त चर्चा हुई थी, जिसमें कई सदस्यों ने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिए। राज्यसभा के कुछ सांसदों की मांग पर हम उन सांसदों के लिए नई शिक्षा नीति पर एक वर्कशॉप आयोजित करने पर विचार कर रहे हैं जिनकी इसमें रुचि है और जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है। इस बीच कुछ लोग नई शिक्षा नीति पर सस्ती राजनीति भी करने की कोशिश कर रहे हैं। यह नहीं होना चाहिए, क्योंकि मेरा मानना है कि शिक्षा एक राष्ट्रीय एजेंडा है, न कि एक पार्टी का एजेंडा। इस प्रकार सरकार की मंशा के ऊपर सवाल उठाने या गलतफहमी पैदा करने और दुष्प्रचार अभियान में लिप्त होने से कोई परिणाम नहीं निकलेगा। कुछ लोग, अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों को मिले अधिकारों को यह सरकार खत्म कर देगी, ऐसा अंदेशा जता रहे हैं। उन्हें मैं स्पष्ट कहना चाहूंगा कि संविधान में सुनिश्चित अधिकारों में तनिक भी कटौती का कोई इरादा सरकार का नहीं है। हम ऐसे कदम उठाना चाहते हैं ताकि जनजाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यकों, पिछड़ों और सभी वंचित वर्गों को शिक्षा में समान अवसर प्राप्त हों।

शिक्षा वह उपकरण है जिससे समाज का भाग्य बदलता है। देश को शिक्षित बनाने का काम समाज और सरकार दोनों को मिलकर करना है। हमको समकालीन चुनौतियों का सामना करने वाली शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। एक समर्थ और शक्तिशाली भारत का सपना सदृढ़ और विविधता वाली शिक्षा के ही आधार पर ही सच होगा।

(लेखक केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री हैं)

●

समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

इक्कीसवीं सदी ज्ञान युग या बौद्धिक युग से संबंधित है जहां ज्ञान की प्राप्ति, उपलब्धि और प्रयोग सबसे महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इसलिए भारत जैसे विकासशील देश के लिए एक बौद्धिक समाज के रूप में विकसित होना और खुद को एक बौद्धिक अर्थव्यवस्था में बदलने के तरीकों व उपायों की पड़ताल करना आवश्यक है। यह अध्याय इस पहलू की विस्तृत पड़ताल करता है। यह अध्याय भारत के लिए विशिष्ट नवीन आदर्शों को भी प्रस्तुत करता है, जैसे सरकारी प्रशासन तथा प्रबंधन में पारदर्शिता लाने के लिए प्रयास।

इक्कीसवीं सदी में पूंजी या श्रम के बजाय ज्ञान प्राथमिक उत्पादन संसाधन है।

बौद्धिक समाज-परिभाषा और परिभाषाएं

पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार बौद्धिक समाज एक ऐसा समाज है, जिसमें निम्नलिखित चीजें हों-

1. सीमाहीनता, क्योंकि ज्ञान धन से भी अधिक सहजता से भ्रमण करता है।
2. ऊपर की ओर गतिशीलता, सरलता से प्राप्त औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रत्येक को उपलब्ध।
3. विफलता और सफलता दोनों की संभावना। हर कोई 'उत्पादन के माध्यम', यानी किसी नौकरी के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है; लेकिन हर कोई नहीं जीत सकता।

इक्कीसवीं सदी का संबंध बौद्धिक समाज से है। इसलिए विभिन्न देश ज्ञान की गति की को समझते हुए तथा उसे धन में परिणत करते हुए खुद को बौद्धिक समाज में बदलेंगे। बौद्धिक समाज की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. वह अपने सभी घटकों द्वारा ज्ञान का इस्तेमाल करता है और अपने लोगों को सशक्त तथा समृद्ध बनाने का प्रयास करता है।
2. वह सामाजिक बदलाव को प्रेरित करने के लिए ज्ञान को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता है।
3. वह नवीन प्रयोगों के प्रति प्रतिबद्ध एक विद्वान समाज होता है।

4. उसमें ज्ञान को उत्पन्न करने, अवशोषित करने, प्रसारित करने, सुरक्षित करने तथा उसे आर्थिक संपन्नता और सामाजिक कल्याण में इस्तेमाल करने की क्षमता होती है।

सामाजिक परिवर्तन

पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान दुनिया कई सामाजिक परिवर्तनों से गुजरी है। उसने कृषि समाज के रूप में अपना विकास शुरू किया जहां शारीरिक श्रम सबसे महत्वपूर्ण कारक था और आर्थिक विकास बड़े पैमाने पर प्राकृतिक उत्पादों जैसे कच्चे माल तथा कृषि उत्पादों, पर आधारित था।

औद्योगिक क्रांति के आगमन के साथ आर्थिक विकास बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकीय विकास द्वारा प्रेरित हुआ, जिसके कारण मानव संसाधन का स्थान मशीनों ने ले लिया।

भारत औद्योगिक क्रांति का पूरी तरह लाभ नहीं उठा पाया, क्योंकि उन दशकों में हमारा देश विदेशी शासकों के अधीन था। लेकिन लाइसेंसधारी औद्योगिकी संस्थान जरूर उभरे।

इस समाज ने स्पष्ट ज्ञान, यानी प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपने उत्पादों को मूल्य-संवर्धित करके औद्योगिक उत्पाद उत्पन्न किए जिन्होंने देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार प्रौद्योगिकी, पूंजी और श्रम के प्रबंधन ने आर्थिक विकास में इस परिवर्तन के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान किया।

विश्व एक सूचना समाज में प्रवेश कर चुका है। यह समाज नेटवर्किंग के द्वारा स्पष्ट ज्ञान में और मूल्य-संवर्धन करके आर्थिक विकास प्राप्त करता है। इस समाज में अब कनेक्टिविटी और सॉफ्टवेयर उत्पाद देशों की अर्थव्यवस्था को संचालित कर रहे हैं।

कल का विश्व ज्ञान को उसके सबसे अधिक विस्तृत रूप में पहचानेगा और नेटवर्क पर्यावरण में नवीन ज्ञान-आधारित उत्पादों/सेवाओं के द्वारा उत्पादों में और मूल्य संवर्धन करेगा। ये बौद्धिक उत्पाद बड़े पैमाने पर देशों के आर्थिक विकास में योगदान करेंगे।

कौशल, प्रतिभा, कल्पना-शक्ति और लोगों की सभ्यतागत शक्ति किसी देश की मूल्यवान संपदा होती है। भूमंडलीकरण द्वारा प्रतियोगिता को प्रेरित किए जाने के साथ, विभिन्न देशों में प्रमुख भिन्नकारक विशेषता होगी इन प्राकृतिक क्षमताओं का पूर्ण लाभ उठाने और आवश्यक प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करने की उनके लोगों की योग्यता। इस व्यक्तिनिष्ठ ज्ञान, अनुभव, कल्पना तथा हमें अच्छा मानव बनाने वाली सभी प्रवृत्तियों को अपने देश की आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुकूल योजनाओं को प्रतिपादित के लिए समन्वित किया जाना चाहिए। ज्ञान-प्राप्ति तथा दक्षताओं में प्रशिक्षण के साथ यह ज्ञान प्रतिस्पर्धात्मक होने के लिए अनिवार्य आंतरिक शक्ति प्रदान करेगा। यह अभी और भविष्य में आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय शक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व होगा।

इक्कीसवीं शताब्दी में पूंजी या श्रम की अपेक्षा ज्ञान प्राथमिक उत्पादन संसाधन है। इस विद्यमान ज्ञान का सफल उपयोग बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा, आधारभूत तंत्र तथा अन्य सामाजिक सूचकों के रूप में देश्या के लिए व्यापक संपदा उत्पन्न कर सकता है। ज्ञान आधार-तंत्र का

निर्माण तथा उसे बरकरार रखना, बौद्धिक कर्मियों को विकसित करना तथा नए ज्ञान के निर्माण, विकास तथा दोहन द्वारा उनकी उत्पादकता बढ़ाना ज्ञान समाज की संपन्नता निर्धारित करने में प्रमुख कारक होंगे। ऐसे बौद्धिक समाज के दो महत्वपूर्ण घटक हैं- सामाजिक परिवर्तन तथा धन उत्पत्ति। अब इस बात पर चर्चा करते हैं कि भारत एक दशक के अंदर अपनी अनूठी क्षमताओं का लाभ उठाते हुए किस प्रकार खुद को एक पूर्ण बौद्धिक समाज और फिर एक समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर सकता हैं

भारत की बौद्धिक परंपरा

जैसे कि हमने पहले भी चर्चा की है, भारत एक समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों वाला देश है और कीमती जन-संसाधन के रूप में उसके पास 1 अरब (अब एक अरब 25 करोड़) लोग हैं। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों में इस देश को प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त हैं। अब हम सपने पास उपलब्ध इन संपदाओं के विस्तृत क्षेत्र और संबंधित मुद्दों पर नजर डालते हैं। भारतीय सभ्यता की प्रभावशाली उपलब्धियों को देखने पर यह विश्वास प्रबल हो जाता है कि भारत पिछली सहस्राब्दी में एक उन्नत समाज था। कई धर्मों के संतों, दार्शनिकों, कवियों, वैज्ञानिकों, खगोलविदों और गणितज्ञों के प्रेरक योगदानों के द्वारा बौद्धिक पुनर्जागरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। उनके नए तथा मौलिक विचारों, सिद्धांतों और व्यवहारों ने हमारे अपने बौद्धिक समाज के लिए एक ठोस आधार प्रदान किया।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत बहुत उन्नत था। यहां तक्षशिला और नालंदा जैसे महान विश्वविद्यालय थे, जहां न केवल भारत बल्कि सुदूर देशों जैसे बेबीलोन, ग्रीस, सीरिया, अरेबिया तथा चीन से विद्यार्थी विभिन्न विषयों- भाषा, व्याकरण, दर्शनशास्त्र, औषधि-विज्ञान, सर्जरी, धनुर्विद्या, एकाउंट्स, वाणिज्य, भविष्य-विज्ञान, दस्तावेजकरण, तंत्र-विद्या, संगीत, नृत्य तथा छिपे हुए खजानों को खोजने की विद्या सीखने के लिए आते थे। शिक्षकों के पैनल में कौटिल्य, पाणिनि, जीवक, अभिनवगुप्त तथा पतंजलि जैसे प्रसिद्ध आचार्य थे।

भारत ने शून्य का आविष्कार किया, जिसने गणना की दोहरी प्रणाली की आधारशिला रखी जिस पर वर्तमान कंप्यूटर निर्भर हैं। अल्बर्ट आइंस्टाइन ने कहा था, 'हम इसका श्रेय भारतीयों को देते हैं जिन्होंने हमें गणना करना सिखाया, जिसके बिना कोई भी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज नहीं की जा सकती थी।' इसी प्रकार, भारत ने दशमलव पद्धति (डेसिमल सिस्टम) का आविष्कार किया।

यूकलिड से काफी पहले भारत में 'ज्यामिति' के नाम से रेखागणित का प्रयोग किया जाता था। आर्यभट ने किसी वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात को पाई के रूप में परिभाषित किया था और दशमलव के चार अंकों तक इसका शुद्ध मान बतलाया था।

इसी प्रकार, 1500 वर्ष पहले, 'सूर्य सिद्धांत' में भास्कराचार्य ने सूर्य की परिक्रमा में पृथ्वी द्वारा लिए गए समय की 9 दशमलव स्थानों में गणना की। इसके अलावा, कोपरनिकस से 1000 वर्ष पहले आर्यभट ने कहा था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जबकि 'सूर्य सिद्धांत' में

भास्कराचार्य ने गुरुत्वाकर्षण के नियम को पहचाना था। औषधि-विज्ञान के क्षेत्र में चरक ने आयुर्वेद को समेकित किया था और 2500 वर्ष पहले सुश्रुत ने जटिल शल्य क्रियाएं की थीं।

हमें अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व होना चाहिए लेकिन यह सारी जानकारी भारत के बाहर शेष विश्व को ज्ञात नहीं है, क्योंकि इन पर आगे शोध नहीं हुआ या इनका प्रसार नहीं हुआ।

ऐसा नहीं है कि उल्लेखनीय उपलब्धियां केवल हमारे अतीत तक सीमित हैं। भारत की आजादी से पहले, हमारे पास विश्व स्तरीय वैज्ञानिक, कवि, दार्शनिक, इंजीनियर, चिकित्सक और लगभग प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े लोग थे। हमारे पास एस.एन. बोस, मेघनाद साहा, जे.सी. बोस, सर सी.वी. रमन, सर के.एस. कृष्णन, होमी जहांगीर भाभा, विक्रम साराभाई, बी.सी. राय जैसे वैज्ञानिक, रामानुजम जैसे गणितज्ञ; रविंद्रनाथ टैगोर जैसे कवि; विवेकानंद जैसे दार्शनिक संत रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद के काल में भी उतनी ही महान उपलब्धियां देखने को मिली हैं।

स्वतंत्रता के बाद के भारत ने अपनी पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की। इसने महत्वपूर्ण उद्योगों की स्थापना और आधारभूत ढांचे के निर्माण को प्रेरित किया। 70 के दशक में पहले हरित क्रांति के परिणाम देखने को मिले, जिसने भारत का खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया। ऑपरेशन फ्लड ने भारत को निश्चित समयावधि में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक बनाया। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में भी काफी विकास देखने को मिला और कई अनुसंधान व विकास और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना हुई, जिनका नेतृत्व विभिन्न क्षेत्रों के योग्य नेता कर रहे थे। इसने उच्च प्रौद्योगिकी मिशनों के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया।

भारत के उपग्रह तथा उपग्रह प्रक्षेपण यान कार्यक्रमों द्वारा रखे गए ठोस आधार ने देश को किसी प्रकार का उपग्रह डिजाइन तथा विकसित करने और उसे अपनी ही धरती से अपने प्रक्षेपण यानों द्वारा कक्षा में प्रक्षेपित करने की क्षमता प्रदान की है। पी.एस.एल.वी. सी-5 के सातवीं सफल उड़ान, जिसमें रिसोर्स सैट-1 को सन सिंक्रोनस ऑरबिट में स्थापित किया गया, ने स्वदेशी योग्यता में भारत की क्षमता को प्रदर्शित किया है। इसी प्रकार, भारत किसी भी प्रकार की मिसाइल या मुखाग्र को डिजाइन करने, विकसित करने तथा उत्पादित करने में सक्षम है। भारतीय सेना में 'पृथ्वी' तथा 'अग्नि' को शामिल किया जाना इस स्वदेशी क्षमता का प्रमाण है। परमाणु ऊर्जा उत्पत्ति तथा अस्त्र विकास में हमारी उपलब्धियां विकसित विश्व के मुकाबले की हैं।

भारतीय सॉफ्टवेयर अंतरराष्ट्रीय व्यावसायिक बाजार में अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। ऐसे परिवर्तन के लिए युवा उद्यमियों का विशाल समूह प्रशंसनीय है। हमारा कुशल जन-संसाधन विश्व में सबसे इच्छित संसाधनों में से एक है। यह विकसित विश्व के आर्थिक विकास में भारतीय वैज्ञानिकों व उद्यमियों के बड़े योगदान से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अपनी जनसंख्या तथा शिक्षित जनशक्ति की उपलब्धता के कारण भारत तुरंत बौद्धिक कर्मियों की विशाल संख्या तैयार कर सकने में सक्षम है, जितमें बहुत कम विकसित देश सक्षम हैं।

भारत के पास कुछ ऐसी संपदाएं तथा लाभ हैं जिनके बारे में विश्व के कुछ देश गर्व से दावा कर सकते हैं। हमें अपने गौरवशाली अतीत और वर्तमान योगदानों तथा अपने भविष्य

की रूपरेखा बनाने के लिए प्राप्त प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को पहचानना चाहिए। विश्व एक बौद्धिक समाज में परिवर्तित हो रहा है, जहां समन्वित ज्ञानशक्ति तथा धन का स्रोत होगा। *यही समय है, जब भारत खुद को एक बौद्धिक शक्ति में बदलने और फिर अगले दो दशकों के भीतर एक विकसित देश बनने के लिए इस अवसर का लाभ उठा सकता है। इस रूपांतरण के लिए यह जानना आवश्यक है कि हम प्रतिस्पर्धात्मकता के मामले में कहां हैं, जो एक बौद्धिक शक्ति बनने की दिशा में अग्रसर होने के लिए वास्तविक इंजन है।*

प्रतिस्पर्धात्मकता-प्रेरक शक्ति

विश्व प्रतिस्पर्धात्मकता के सिद्धांत विश्व आर्थिक मंच द्वारा तैयार किए गए वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक रिपोर्ट पर आधारित हैं। मंच ने प्रतिस्पर्धात्मकता को 'आर्थिक विकास के स्थिर उच्च दर प्राप्त करने की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की योग्यता' के रूप में परिभाषित किया। इस परिभाषा के अनुरूप 2002-2003 में विभिन्न देशों के स्थान हैं-

अमेरिका (1), ताइवान (3), सिंगापुर (4), आस्ट्रेलिय (7), हांगकांग (17), चीन (33), भारत (48)।

वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता उद्योग की प्रगतिशीलता, प्रौद्योगिकी तथा सरकारी अधिनियम की स्थिति के त्रिकोणीय संयोजन से निर्धारित होती है।

प्रौद्योगिकी नीत औद्योगिक प्रगति को केवल एक नवप्रवर्तन प्रणाली (इनोवेशन सिस्टम) स्थापित करके ही बरकरार रखा जा सकता था। नवीन प्रयोग की प्रक्रिया के द्वारा ही ज्ञान धन में परिवर्तित होता है। इसके अलावा नवप्रवर्तन सेवा तथा निर्माण क्षेत्रों की प्रतिस्पर्धात्मकता के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है और इसलिए एक नवप्रवर्तन प्रणाली स्थापित किए जाने की अत्यंत आवश्यकता है। ऐसी प्रणाली में फर्मों, ज्ञान-उत्पादक संस्थानों, दोनों को जोड़नेवाले संस्थानों और उपभोक्ताओं का नेटवर्क शामिल होगा, जिससे एक उत्पादक शृंखला निर्मित होगी। ऐसे संगठन के साथ नवप्रवर्तन प्रणाली वैश्विक ज्ञान के बढ़ते भंडार को ग्रहण करेगी, उसे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालेगी और अंततः नया ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी सृजित करेगी। भारत को वैश्विक बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मकता को सुधारने के लिए ऐसी प्रणलियां विकसित करनी चाहिए।

प्रतिस्पर्धात्मकता बौद्धिक शक्ति से प्राप्त होती है, जो प्रौद्योगिकी से बलवर्धित होती है और प्रौद्योगिकी को पूंजी से शक्ति प्राप्त होती है। जैसी कि पहले चर्चा की गई है, कृषि समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता मानव शक्ति से प्राप्त होती है। औद्योगिक समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता की पूरी तरह प्रौद्योगिकी, निर्माण उपकरण तथा मशीनों से प्राप्त होती थी। एक सूचना समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता सहयोग, संसाधनों और क्षमताओं की नेटवर्किंग की योग्यता से आती है। आगामी बौद्धिक समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता सभी प्रकार के ज्ञान को पहचानने तथा समन्वित करने की योग्यता से प्राप्त होगी, जिससे मानव प्रयास के प्रत्येक क्षेत्र में नवप्रवर्तन को प्रोत्साहन मिलेगा।

ज्ञान की शक्ति-समन्वित बल

हम यहां चर्चा करना चाहते हैं कि ज्ञान का क्या महत्व है और किस प्रकार समन्वित ज्ञान

और निर्णयन प्रक्रियाएं प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रेरित कर सकती हैं तथा चुनौतियां का सामना करने में मदद कर सकती हैं।

(क) हार्डवेयर प्रणाली में सुधार के लिए सॉफ्टवेयर समाधान

एक मिसाइल प्रणाली के विकास के दौरान हम एक अत्यंत परिशुद्ध निर्देशन और नियंत्रण प्राप्त करना चाहते थे, ताकि अपने लक्ष्य तक पहुंचने में मिसाइल की बेहतर परिशुद्धता सुनिश्चित हो सके। यह भी प्राप्त हो सकता है जब हमारे पास अत्यंत सटीक जाइरो सेंसर हों। इसके लिए हमें 0.1 डिग्री प्रति घंटे से कम ड्रिट (झुकाव) के साथ एक जाइरो की आवश्यकता थी। एम.टी.सी.आर. (मिसाइल प्रौद्योगिकी नियंत्रण पद्धति) के नाम पर विकसित देशों ने उच्च परिशुद्धतावाले सेंसर बेचने से इनकार कर दिया। इसलिए जाइरो की परिशुद्धता को बढ़ाने के लिए सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल का तकनीकी समाधान खोजने के लिए एक विश्वविद्यालय और तीन अनुसंधान व विकास प्रयोगशालाओं से चुने गए सदस्यों के साथ एक टास्क समूह का गठन किया गया। लगभग बारह युवा सॉफ्टवेयर तथा हार्डवेयर इंजीनियरों ने लगभग आठ माह तक इस पर काम किया और एक अनूठा समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने सुझाव दिया कि प्रक्षेपण-मार्ग विश्लेषण तथा हार्डवेयर-इन-लूप-सिमुलेशन द्वारा समन्वित सॉफ्टवेयर तथा हार्डवेयर के सत्यापन सहित विस्तृत डिजाइन, सिस्टम इंजीनियरिंग तथा सिमुलेशन प्रयासों के बाद मिसाइल के ऑन-बोर्ड कंप्यूटर पर एक तीव्र परिकलन प्रक्रिया (एलगोरिद्म) लोड किया जा सकता है।

यह सॉफ्टवेयर सही समय पर उड़ान से पहले त्रुटि के बारे में बता सकता है। मिसाइल की उड़ान के दौरान वह वर्तमान स्थिति का विश्लेषण कर सकता है, ड्रिट कंपनसेशन (झुकाव क्षतिपूर्ति) का इस्तेमाल कर सकता है और नियंत्रण बल सुधारों (कंट्रोल फोर्स करेक्शंस) को लागू कर सकता है। नवीन सॉफ्टवेयर तथा सिस्टम इंजीनियरिंग के समावेश के साथ हार्डवेयर में बेहतर परिशुद्धता प्राप्त की जा सकती है। इसका परिणाम एक बेहतरीन निर्देशन तथा नियंत्रण प्रणाली (गाइडेंस एंड कंट्रोल सिस्टम) के रूप में सामने आया। भारतीय सेना ने इस मिसाइल प्रणाली को अपनाया है। जब युवा मस्तिष्कों के आगे चुनौतियां रखी जाती हैं तो वे बहुत मजबूती से उभरकर सामने आते हैं।

(ख) हलके लड़ाकू विमान के लिए नियंत्रण विधि

एक और आदर्श उदाहरण हलके लड़ाकू विमान (एल.सी.ए.) जिसे अब 'तेजस' कहा जाता है, की नियंत्रण विधि के विकास के लिए गठित एक राष्ट्रीय टीम द्वारा विभिन्न संस्थानों में बिखरे ज्ञान को समन्वित करने की अवधारणा। एल.सी.ए. प्रबंधन स्वदेशी कौशल का प्रयोग करके एल.सी.ए. के लिए नियंत्रण विधि विकसित करना चाहता था, क्योंकि यह प्रौद्योगिकी देने के लिए कोई देश तैयार नहीं था। डिजाइन के लिए देश की विभिन्न कार्यशालाओं में विद्यमान क्षमताओं की स्थिति, सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर इंजीनियरों की उपलब्धता और विशेषज्ञों के दृष्टिकाणों पर विचार-विमर्श किया गया। उन्होंने महसूस किया कि क्षमताएं

विभिन्न संस्थानों, अनुसंधान व विकास प्रयोगशालाओं और उद्योग में बिखरी हुई थीं। नियंत्रण विधि के तीव्र विकास के लिए विशेषज्ञों के समन्वयन तथा युवा वैज्ञानिकों को लेकर एक राष्ट्रीय टीम का गठन किया गया। इस टीम ने चुनौती को स्वीकार किया और रिकॉर्ड समय में इस कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न किया।

मई 1998 के परमाणु परीक्षणों के बाद जब भारत ने स्वयं को एक परमाणु राष्ट्र घोषित कर दिया तो अमेरिका की एक फर्म के साथ एल.सी.ए. उड़ान नियंत्रण प्रणाली के विकास के लिए संयुक्त विकास अनुबंध उनकी ओर से अचानक वापस ले लिया गया। हमारी युवा नियंत्रण विधि राष्ट्रीय टीम द्वारा प्राप्त अनुभव के कारण कुछ अतिरिक्त समय के साथ स्वदेशी प्रयास द्वारा एल.सी.ए. के लिए उड़ान नियंत्रण प्रणाली बनाने के लिए हमारी अनुसंधान प्रयोगशालाएं और भागीदार आत्मविश्वास से भरपूर थे। हम सफल रहे।

इस राष्ट्रीय टीम अवधारणा को कार्बन फाइबर कंपोजिट (सी.एफ.सी.) विंग्स के विकास में भी इस्तेमाल किया गया, जो देश में उन्नत प्रौद्योगिकी प्रक्रिया के साथ बनाया गया सबसे बड़ा संयोजित उत्पाद है। यहां भी विभिन्न संस्थानों से लेकर बनाई गई राष्ट्रीय टीम सफल रही। इसी प्रकार एल.सी.ए. के लाइट टेस्ट सेंटर के लिए गठित राष्ट्रीय टीम में विभिन्न अनुसंधान प्रयोगशालाएं, शैक्षिक संस्थान, उद्योग और उपभोक्ताओं ने एक साथ मिलकर काम किया। इस समन्वित शक्ति ने समन्वयन, समन्वित व्यवस्था में प्रत्येक उप-प्रणाली के प्रदर्शन के मूल्यांकन के लिए हार्डवेयर-इन-लूप-सिमुलेशन, गुणवत्ता के आश्वासन, प्रमाणन तथा एल.सी.ए. के उड़ान परीक्षण में व्यवस्थित प्रवृत्ति को प्रेरित किया। टी.डी.-1 और टी.डी.-2 के सौ से अधिक सफल उड़ान परीक्षण हो चुके हैं। एल.सी.ए. भारतीय वायुसेना में शामिल होने के क्रम में है और अंतरराष्ट्रीय बाजार में एक उम्मीदवार होगा।

मिसाइल और एल.सी.ए. प्रौद्योगिकियों ने हमारे वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय समुदाय में बेहतरीन प्रतिस्पर्धात्मकता और एक समन्वित वातावरण में कार्य करने की हमारी क्षमता को उभारा है। हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि यदि चुनौतियां स्पष्ट हों और एक समयबद्ध रूप में परिणाम प्राप्त करने के लिए युवा लोगों को समन्वित समूहों के रूप में साथ लाया जाए तो भारत के पास किसी भी उच्च प्रौद्योगिकी प्रणाली के निर्माण के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त है। हमें संकीर्ण विभागीय अवरोधों को तोड़ते हुए अपनी निहित श्रेष्ठता को बाहर लाना होगा और मिशन मोड कार्यक्रमों के द्वारा समन्वित समूहों के रूप में काम करना होगा।

ज्ञान समृद्ध समाज

ज्ञान सामाजिक विकास का भी प्रेरक रहा है। ज्ञान के निर्माण, अवशोषण, प्रसार, सुरक्षा तथा प्रयोग की क्षमतावाला समाज आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक रूपांतरण को प्रोत्साहित कर सकता है। सामाजिक रूपांतरण शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा शासन के विकास के माध्यम से सामने आएगा।

इसके परिणामस्वरूप रोजगार की उत्पत्ति, उच्च उत्पादकता तथा ग्रामीण संपन्नता

आएगी। इस क्षमता को पहचानते हुए भारत के योजना आयोग ने भारत को एक बौद्धिक शक्ति के रूप में रूपांतरित करने के लिए कार्य-योजनाएं विकसित करने के उद्देश्य से एक टास्क फोर्स गठित की। इस टीम ने आर्थिक व्यवस्था को देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व के रूप में पहचाना है जिसे राष्ट्रीय क्षमताओं के इर्द-गिद्र तैयार किया जाना है। इस टास्क समूह ने इन केंद्रीय क्षेत्रों की भी पहचान की है, जो एक बौद्धिक समाज की ओर हमारे कद का नेतृतव करेंगे- सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, मौसम पूर्वानुमान, आपदा प्रबंधन, टेलीमेडिसिन तथ टेलीशिक्षा, देशी बौद्धिक उत्पादों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी, सेवा क्षेत्र तथा इन्फोटेनमेंट सूचना तथा मनोरंजन के मिश्रण के परिणामस्वरूप एक उभरता क्षेत्र। इन केंद्रीय प्रौद्योगिकियों को सौभाग्यवश सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा एक-दूसरे से जोड़ा जा सकता है।

इस प्रकार वांछित बौद्धिक समाज बनाने के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकी और प्रबंधन संरचनाओं को समन्वित करना आवश्यक है। इस बात को पहचानना होगा कि एक सूचना प्रौद्योगिकी-प्रेरित समाज तथा ज्ञान-प्रेरित समाज में भिन्नता विभिन्न प्रौद्योगिकी विकास इंजनों की है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपने लिए एक उपयुक्त स्थान बनाते भारत के साथ यह देश बौद्धिक समाज में रूपांतरित होने के अवसर का लाभ उठाने के लिए पूरी तरह तैयार है। सामाजिक परिवर्तन एक बौद्धिक समाज की आधारशिला है, जिसके लिए एक पारदर्शी शासन की आवश्यकता है।

हालांकि बौद्धिक समाज का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन और धन उत्पत्ति के रूप में द्वि-आयामी होता है, पर यदि भारत को एक बौद्धिक महाशक्ति के रूप में रूपांतरित होना है तो एक तीसरा आयाम उभरता है। एक बौद्धिक समाज को बरकरार रखने के लिए परिश्रम से अर्जित धन तथा रूपांतरित समाज को सुरक्षित रखना होगा, जो बौद्धिक समाज के दो आधार-स्तंभ हैं। इस उद्देश्य का तीसरा आयाम है ज्ञान की सुरक्षा।

बौद्धिक महाशक्ति का दर्जा अपने साथ बौद्धिक संपदा अधिकार को मजबूत करने और विस्तृत जैविक तथा सूक्ष्मजीवी संसाधनों को सुरक्षित करने का गुरुतर उत्तरदायित्व भी लाता है। हमारे प्राचीन ज्ञान और संस्कृति को कई दिशाओं से होने वाले विभिन्न हमलों से बचाया जाना चाहिए। इस प्रकार एक बौद्धिक महाशक्ति के दो महत्वपूर्ण पहलू होते हैं- आर्थिक संपन्नता और राष्ट्रीय सुरक्षा। हमारे संचार नेटवर्क और सूचना उत्पादकों को निगरानी द्वारा इलेक्ट्रॉनिक हमलों से बचाना है और ऐसे हमलों को झेलने के लिए प्रौद्योगिकियों का निर्माण किया जाना है। इस प्रकार, ज्ञान की सुरक्षा के लिए प्रमुख आवश्यकता दोहरी है। बौद्धिक संपदा अधिकारों और संबंधित मुद्दों के प्रति एक केंद्रित दृष्टिकोण होना चाहिए और सूचना सुरक्षा के लिए प्रौद्योगिकी निर्माण के क्षेत्र में बड़े निजी क्षेत्र-प्रयास आरंभ किए जाने चाहिए।

शासन में ज्ञान प्रबंधन

सरकारी एजेंसियों के साथ लेन-देन करनेवाले किसी के लिए भी एक चुनौती उसकी अत्यंत जटिलता है। अब केंद्र तथा राज्य सरकारों में ऐसी क्रियाशील एजेंसियों की स्थापना करने

के प्रति जागरूकता बढ़ रही है, जो नागरिकों की सभी आवश्यकताओं के लिए वन-स्टॉप शॉप की अवधारणा को साकार कर सकें। इस वन-स्टॉप शॉप के कर्मियों को खुद जटिल प्रणालियों के भीतर काफी समन्वयन करना पड़ सकता है। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी उपकरण ऐसे समन्वयन को बढ़ाने में मदद कर सकते हैं। आखिरकार, वह वास्तविक काल क्षमता प्राप्त कर सकता है, जैसा कि रेलवे आरक्षणों के लिए प्राप्त किया गया है।

बहरहाल, ऐसी क्रियात्मक प्रणाली का सरकार के कई अन्य क्षेत्रों में उभरना बाकी है, जैसे- बैंकिंग, कर या बिजली के बिल का भुगतान आदि। कुछ राज्य/केंद्रीय सरकारी विभागों के प्रयासों का परिणाम विस्तृत तथा उपभोक्ता सहायक इंटरनेट पोर्टलों के रूप में सामने आया है। इस प्रकार के पोर्टल केवल कुछ राज्यों जैसे- आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा मध्य प्रदेश में बनाए जा रहे हैं। इन राज्यों में बाजार-संबद्ध सूचना, भूमि रिकॉर्ड और खाद्य भंडार रिकॉर्ड उपलब्ध कराने के लिए इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क प्रणालियों का इस्तेमाल किया जा रहा है परंतु ये प्रयास आरंभिक चरण में हैं। एक राज्य में, एक पुष्प उत्पादक वास्तविक काल संचार (रियल टाइम कम्युनिकेशन) का इस्तेमाल करते हुए नीदरलैंड में फूलों की एक नीलामी में भाग लेता है।

इस पृष्ठभूमि के साथ यह आवश्यक है कि जनता के साथ संपर्क की आवश्यकतावाली सरकारी क्रियाओं में सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी के माध्यमों का उपयोग किया जाए (खासकर जहां राज्य तथा केंद्रीय कर्मचारियों को नागरिकों की सेवा, सहयोग या सुधार करना हो)। नियमों, क्रियाविधियों तथा अन्य संबद्ध सरकारी कार्यों को संहिताबद्ध करने के लिए सॉफ्टवेयर बनाना होगा और पारदर्शी तरीके से शासन के लिए सार्वजनिक पहुंच आवश्यक असेस कंट्रोल के साथ सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से होना चाहिए। चूंकि संचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी में भारत के पास केंद्रीय योग्यताएं हैं, ई-कॉमर्स तथा ई-बिजनेस के द्वारा प्रशासन तथा प्रबंधन में पारदर्शिता लाना पूर्ण रूप से संभव है, ताकि ई-शासन को बढ़ावा दिया जा सके। मिशन मोड में प्रयास आरंभ करने होंगे। ऐसे संपर्क माध्यमों से सरकारों को लैस करने के लिए उपयुक्त कानूनी उपाय भी किए जाने चाहिए। ऐसे बदलाव ग्रामीण तथा शहरी इलाकों में इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टीविटी की स्थापना पर निर्भर हैं।

ज्ञान उत्पत्ति के लिए उपयुक्त रणनीतियों (जैसे- शिक्षा में सुधार, मानव संसाधनों का प्रशिक्षण, बौद्धिक संपदा अधिकार द्वारा ज्ञान के संरक्षण आदि के द्वारा) को अपनाकर प्रौद्योगिकी द्वारा ज्ञान के दोहन, आधारभूत तंत्र के विकास तथा उद्यम पूंजी को प्रोत्साहित करके बौद्धिक समाज विकसित किया जा सकता है। केंद्रीय शक्ति और विकास प्रारूप हर देश में भिन्न होते हैं। स्थिति के अनुसार बौद्धिक समाज को बरकरार रखने के लिए आवश्यक आधारभूत तंत्र तथा प्रशिक्षण शिक्षा के प्रकार का निर्णय करना चाहिए।

चूंकि एक बौद्धिक समाज में सभी प्रकार के ज्ञान विकास में सहायक होंगे, इस ज्ञान का राष्ट्रीय स्तर पर प्रबंधन करना आवश्यक होगा। राष्ट्र स्तरीय ज्ञान प्रबंधन में आधारभूत तंत्र,

प्रक्रियाओं, नीतियों तथा व्यवहार की स्थापना शामिल होती है, जो ऐसे पर्यावरण को प्रेरित करेगा जहां ज्ञान के निर्माण को प्रोत्साहित, संसाधित, पुरस्कृत और अंततः देश के आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संदोहित किया जाता है।

किसी देश की विज्ञान-प्रौद्योगिकी संबंधी, राजस्व संबंधी, व्यापारिक और औद्योगिकी नीतियां देश की मजबूतियां, कमजोरियों, पर्यावरणीय जोखिमों तथा अवसरों के आधार पर विकसित की जानी चाहिए। ज्ञान के उत्पादन, ज्ञान के दोहन तथा ज्ञान के आधारभूत तंत्र में शामिल रणनीतियां अंततः संपन्नता तथा राष्ट्रीय आर्थिक सूचकों में सुधार को प्रेरित करती हैं। ये रणनीतियां हैं-

1. बौद्धिक संपदा अधिकार के द्वारा ज्ञान का संरक्षण।
2. ज्ञान के नेटवर्कों द्वारा अनुसंधान तथा विकास।
3. मानव संसाधन नियोजन तथा विकास।
4. उद्यम पूंजी को प्रोत्साहित करना।
5. राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार का विकास।
6. चयनित प्रौद्योगिकी अधिग्रहण
7. आधारभूत ढांचे का विकास।

एक बौद्धिक समाज में विकास के मूल्यांकन के लिए एक विषय-सूची का विकास आवश्यक है, जिसे ज्ञान विकास विषय-सूची कहा जा सकता है, ताकि ज्ञान के उत्पादन, अवशोषण, प्रसार, सुरक्षा तथा ज्ञान के प्रयोग के अर्थों में विकास के स्तर को मापा जा सके। उदाहरण के लिए, ज्ञान के निर्माण को प्रकाशित शोधपत्रों की संख्या के रूप में मापा जा सकता है, प्रसार को समाचार-पत्रों के घनत्व से संबद्ध किया जा सकता है आदि। ऐसी विषय-सूची जानकारी उपलब्ध कराने के अलावा आवश्यक सुधार लागू करने के लिए एक फीडबैक भी प्रदान करेगी।

समापन टिप्पणियां

जैसे-जैसे विश्व एक बौद्धिक समाज में बदल रहा है, सूचना प्रौद्योगिकी, विशाल प्राकृतिक संसाधन तथा सबसे ऊपर 30 करोड़ जोशीले युवाओं सहित कुछ प्रौद्योगिकियों में केंद्रीय क्षमता के कारण भारत के पास एक बौद्धिक अर्थव्यवस्था बनने के लिए असीम अवसर हैं। समाज के रूपांतरण तथा देश के हित में धन उत्पन्न करने के लिए इस शक्ति का समुचित लाभ उठाना चाहिए। हमने ज्ञान की शक्ति तथा कुछ मिशन मोड कार्यक्रमों से प्राप्त प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को देखा है। समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था के साथ भारत सन 2020 तक निश्चित रूप से एक विकसित देश बन जाएगा। इस महान् स्वप्न को मिशन में रूपांतरित करना चाहिए।

(डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का यह लेख 'मेरे सपनों का भारत' पुस्तक से साभार लिया गया है जिसका प्रकाशन प्रभात पेपरबैक्स, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002 ने किया है)

●

मेरे स्वप्न का भारत

कमल किशोर गोयनका

मैं जब भारत के संबंध में अपने स्वप्न के बारे में सोचता हूं तब मुझे भारत में जन्म लेने पर परमपिता की असीम कृपा का बोध होता है। भारत में जन्म लेना यह आपके नहीं सृष्टिकर्ता के निर्णय का परिणाम है। यह पृथ्वी पर एक अनोखा देश है। प्रकृति की असीम कृपा है भारत पर। हिमालय ने इसे ऐसा आकार दिया है, तीन ओर के समुद्र ने इसे ऐसी प्रकृति दी है और देश की वैविध्यपूर्ण प्राकृतिक रचना ने ऐसा जीवन दिया है, ऐसा परिवेश एवं संस्कृति दी है जो पृथ्वी के अन्यत्र भू-भाग में अनुपलब्ध है। इसकी विविधता से भरी प्रकृति, ऋतुओं, भाषा एवं रहन-सहन आदि ने जीवन को इंद्रधनुषीय रंग दिया है, लेकिन इसके साथ इसे भारतीयता के एक सूत्र में भी बांध दिया है। प्रकृति ने भारत को एक संपूर्ण राष्ट्र बनाया है तथा इतनी प्राकृतिक संपदा दी है कि इसे लूटने एवं यहां बसने के लिए बाहर से आक्रमणकारी बराबर आते रहे हैं। यह विश्व का एक मात्र ऐसा देश है जिसकी संस्कृति, जीवन-विश्वास एवं जीने-रहने की शैलियां हजारों वर्षों से कायम हैं और आज भी काफी रूप में हमारे जीवन का अंग हैं। यह जीवन-संस्कृति की एकरूपता तथा निरंतरता भारत को विशिष्ट देश बनाती है और यदि मैं तथा मेरे पूर्वज, यहां जन्म लेने को सौभाग्य मानते रहे हैं तो उसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

मेरे भारत की यह गर्वता मुस्लिम आक्रमणकारियों, लुटेरों तथा साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने लगभग एक हजार वर्ष तक खंडित की है। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने देश के संस्कृति-केंद्रों मंदिरों को लूटा, उन्हें ध्वस्त किया, पुस्तकालयों को जलाया और हिंदुओं का धर्मांतरण किया, लेकिन इतिहास का यह भी सच है कि हिंदुओं ने इस विधर्मी विध्वंसक तूफान का डटकर विरोध किया और भारती स्वत्व की रक्षा में प्राणों का बलिदान कर दिया। अंग्रेजी दासता को भी भारतीयों ने स्वीकार नहीं किया और हजारों-हजारों भारतीय फांसी के फंदे पर चढ़ गए। भारत की इस लंबी गुलामी के लिए, महात्मा गांधी के अनुसार हम हिंदुस्तानी ही जिम्मेदार हैं। विदेशी आक्रमणकारियों को बुलाने और उनकी सहायता करने में अनेक भारतीयों के नाम इतिहास में अंकित हैं और हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसे देशद्रोही लोग आज भी हमारे समाज में देखे जा सकते हैं। इधर ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है कि जब भी चुनाव का समय आता है ऐसे लोग सक्रिय

हो उठते हैं और व्यक्ति हो या देश, बदनाम करने लगते हैं। जब से नरेंद्र मोदी की सरकार आई है और इस चुनाव से पहले ही मोदी पर हर तरह के आरोप लगाए गए। उन्हें 'मौत का सौदागर' और इधर 'खून का दलाल' तक कहा गया, जबकि इन आरोपों में कोई सत्यता नहीं थी। बिहार के चुनाव के समय कुछ लेखकों ने पुरस्कार लौटाने का नाटक किया और मीडिया ने खूब प्रचारित किया, लेकिन चुनाव के बाद सब कुछ शांत हो गया। देश को ऐसे देश-विरोधी तत्वों से सावधान रहना है। अपने ही लोग देश को कमजोर करते हैं, विदेशी पूंजी से सरकार को बदनाम करते हैं और लोकतंत्र को घायल करते हैं।

ऐसी स्थिति में मुझे देश की एकता और सुरक्षा की सबसे बड़ी चिंता है। मैं भारत को शक्तिशाली, विकासमान और विश्व में शांति स्थापक देश के रूप में देखना चाहता हूं। भारत कई ओर से दुश्मनों से घिरा है, आतंकवाद बार-बार आहत कर रहा है और हमारे वीर सैनिक शहीद हो रहे हैं। भारत वर्षों से संयम बनाए हुए था और विरोधी दल नरेंद्र मोदी पर पाकिस्तान को उत्तर न देने पर आलोचना कर रहे थे और जनता भी चाहती थी कि 18 सैनिकों की हत्या का समुचित उत्तर दिया जाए। नरेंद्र मोदी ने निर्णय लिया और हमारी सेना ने पाक अधिकृत कश्मीर (जो भारत का अंग है) में स्थित आतंकवादियों के सात अड्डों पर 'सर्जिकल स्ट्राइक' करके अनेक आतंकवादियों को मार दिया। इस घटना की पूरे देश ने प्रशंसा की और नरेंद्र मोदी का लोहा मान लिया, किंतु विरोधी दलों ने इसका स्वागत करने पर भी मोदी जी पर इसका राजनीतिक लाभ लेने का आरोप लगाया और राहुल गांधी ने तो मोदी पर खून की दलाली करने तक का आरोप लगा दिया। मैं शर्मिंदा हूं ऐसे भारतीयों पर जो सेना का, प्रधानमंत्री का और 125 करोड़ जनता का अपमान करने का दुस्साहस कर रहे हैं। सेना के उपक्रमों का तथा युद्ध में शत्रु को पराजित करने का प्रमाण आज तक नहीं मांगा गया, लेकिन ये नेता और ये दल सर्जिकल स्ट्राइक का प्रमाण मांग रहे हैं। ये फिर उत्तर प्रदेश के चुनाव पर खेल खेल रहे हैं और नरेंद्र मोदी को बदनाम करने तथा झूठा बताने में लगे हैं। ये दल पाकिस्तानी स्वर में बोल रहे हैं कि सर्जिकल स्ट्राइक हुआ ही नहीं। ये कैसे भारतीय हैं जिन्हें शत्रु का विश्वास है, अपनी सेना और अपने प्रधानमंत्री का नहीं। आतंकवादी कैम्पों को ध्वस्त करने का फैसला यद्यपि प्रधानमंत्री का था, परंतु उसमें 125 करोड़ जनता का भी निर्णय था। यह भारतीय लोकतंत्र की विजय है।

नरेंद्र मोदी सरकार की नीतियां और विकास-यात्राओं में मुझे देश का भविष्य दिखाई देता है। जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। मोदीजी की विदेश यात्राओं से अनेक देश, यहां तक कि पाक के मित्र मुस्लिम देश भी, भारत के निकट आए हैं। इससे पाकिस्तान को अलग-थलग करना आसान हुआ है तथा विदेशी निवेश की उपलब्धता आसान हो गयी है। मोदी जी की 'मेक इन इंडिया' ने स्वदेशी भाव को जीवित कर दिया है और अधिकांश विदेशी निवेश इस शर्त पर हो रहा है कि कंपनी भारत में उत्पादन करेगी। देश में नवीनतम तकनीक का, चाहे शस्त्र निर्माण में हो या उपभोक्ता वस्तुओं में, प्रवाह शुरू हो गया

है। मोदीजी ने आम जनता, श्रमिक और किसानों के लिए कई कार्य किए है, जो बहुत पहले होने चाहिए थे। करोड़ों आम आदमी के बैंक खाते खुल गए हैं, फसलों का बीमा होने लगा है, काले धन पर अंकुश लग रहा है, शिक्षा की नई नीति बन रही है और इसी प्रकार के जनता के हित के काम हो रहे हैं। आतंकवाद के विरुद्ध छेड़े संघर्ष ने तथा पाकिस्तान को अकेला करने की नीति से जनता में उनके प्रति विश्वास बढ़ा है। जनता को उनमें भारतीय नायक बनने और देश के साथ विश्व का नेतृत्व करने की संभावना दिखाई देती है। मेरे विचार में देश को ऐसे ही राष्ट्रीय नायक की आवश्यकता है जो देश के अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा के लिए भारत को उच्चतम शिखर तक ले जाए।

मैं भारत की बढ़ती जनसंख्या और भ्रष्टाचार की बड़ी एवं आत्मघाती समस्याओं से चिंतित हूं। मैं जानता हूं कि मेरे जीवनकाल में इनका समाधान नहीं होगा, परंतु मेरी प्रबल इच्छा है कि मेरा देश इनका शीघ्र हल करे। देश के विभाजन से पूर्व अविभाजित भारत की जनसंख्या लगभग 35 करोड़ थी, आज विभाजन के बाद 125 करोड़ से अधिक है। हम जानते हैं, कुछ वर्षों में हम 150 करोड़ होंगे और यह बढ़ोतरी होती जाएगी। इस जनसंख्या के विस्फोट ने पुरानी समस्याओं का हल कठिन बना दिया है और नई-नई समस्याओं को पैदा किया है। यह बढ़ती जनसंख्या हमारी विकास यात्रा को निष्प्रभावी बना रही है और गरीबों की संख्या बढ़ रही है। यह सच है कि जनसंख्या के बढ़ने के साथ विकास का बढ़ना संभव नहीं है तो हम क्यों नहीं ऐसे उपाय करते जो जनसंख्या को नियंत्रित करे और विकास के अनुपात से चल सकें। चीन का उदाहरण यद्यपि हमारे सामने है, लेकिन हम अधोगति की उस सीमा तक नहीं जा सकते जहां से लौटना असंभव हो। मानव समाज का सत्य है कि वह स्वेच्छा से संतानोत्पत्ति पर नियंत्रण नहीं करेगा, तो कुछ-न-कुछ सरकारी बंधन आदि की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। इधर तो जनसंख्या नियंत्रण का प्रचार-प्रसार भी दिखाई नहीं देता। अतः भविष्य की भयानक घटना से बचने के लिए व्यक्ति से लेकर सरकार तक कोई-न-कोई उपाय करने होंगे, अन्यथा सारा विकास जनसंख्या के पेट में समा जाएगा और देश को उच्च शिखर तक ले जाने का हमारा स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा। इसी प्रकार भ्रष्टाचार पर अंकुश आवश्यक है। भ्रष्टाचार हमारे जीवन को सैकड़ों फनों से डस रहा है और उसका विष भारतीय जीवन को विषैला बना रहा है। नरेंद्र मोदी को भ्रष्ट भारत मिला है, लेकिन उसकी सर्जरी शुरू हो गई है। मोदी के कार्यकाल में एक भी भ्रष्टाचार की कहानी सामने नहीं आई है और काले धन पर भी अंकुश लगाया है, परंतु अभी भ्रष्टाचार के रावण को बार-बार मारने की आवश्यकता होगी। निश्चय ही मैं ऐसा भारत चाहता हूं जो भ्रष्टाचार विहीन हो और प्रशासन नियमानुसार चलता रहे।

हमारा शिक्षा क्षेत्र भी पतनोन्मुख है। दिनोंदिन छात्राओं की संख्या बढ़ रही है और पुराने स्कूल खस्ताहाल हो रहे हैं, अध्यापकों में पढ़ाने की रुचि घट रही है, परीक्षा में नकल की प्रवृत्ति जोरों पर है, शिक्षा मंहगी होती जा रही है और नियुक्तियों में मैरिट नहीं पैरवी और पैसे का बोलबाला है। विश्वविद्यालयों तक में योग्यता का स्थान जाति, धर्म, पैरवी और धन ने ले लिया

है और योग्य छात्र विदेशों की ओर भाग रहे हैं। तकनीकी एवं डॉक्टरी के कॉलेज तो व्यापार के अड्डे बन गए हैं और पाठ्यक्रमों में देश विरुद्ध सामग्री लगाई जा रही है। इस दुर्दशा को बदलना और शिक्षा को भारतीय संदर्भों से जोड़ना आवश्यक है। भारत की शिक्षा नीति क्या है और क्या होनी चाहिए, इस पर तुरंत विचार की आवश्यकता है। भारत में विदेशी विश्वविद्यायों की शाखाएं खुल रही हैं जो हमारी शिक्षा के लिए घातक है। शिक्षा के लिए भाषा के किस माध्यम को चुना जाए, इस पर एकमत नहीं हैं। अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ रहा है और हिंदी पिछड़ती जा रही है। किसी भी विदेशी भाषा से देश का कल्याण नहीं हो सकता। चीन, जापान, रूस, फ्रांस आदि देशों में वहां की भाषा से ही शिक्षा दी जाती है, परंतु हम इनसे कुछ भी सीखना नहीं चाहते। अंग्रेज चले गए परंतु अंग्रेजी निरंतर शक्तिशाली होती गई। देश की उन्नति के लिए हमें भाषा नीति को बदलना होगा और हिंदी को उच्च शिक्षा तथा सरकारी कामकाज की भाषा बनाना होगा। शिक्षा में लापरवाही एवं योग्यता की उपेक्षा घातक होगी।

इधर समाज में धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि को लेकर वैमनस्य बढ़ रहा है। अब दूसरी जातियां भी आरक्षण मांग रही हैं और आंदोलन कर रही हैं। आरक्षण से दलित समाज को लाभ हुआ है और अनेक दलित जातियां उच्च पदों पर कार्यरत हैं, परंतु यह भी सच है कि जातियों में परस्पर वैमनस्य भी बढ़ा है। दलित समाज को विकास के अवसर मिलने ही चाहिए, लेकिन सवाल यह है कि उच्च वर्ण के गरीब लोगों को इससे क्यों वंचित रखा जाए। मेरे विचार में हमारे लोकतंत्र में समरसता एवं बंधुत्व आवश्यक है। यह धर्म, जाति, भाषा आदि सभी क्षेत्रों में होना चाहिए, लेकिन परस्पर संघर्ष, विवाद एवं खूनखराबे की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह चिंता का विषय है। तुष्टीकरण हर दृष्टि से गलत है। समाज के शक्ति संपन्न होने में सामाजिक एकता, सद्भाव ओर समरसता का सबसे अधिक योगदान होता है। संविधान सर्वोपरि है, धर्म नहीं और न भाषा व क्षेत्र। जो लोग धर्म आदि के कारण संविधान को चुनौती देते हैं, वे लोकतंत्र विरोधी हैं। हमें विविधतापूर्ण इस देश में संविधान को ही धर्म-ग्रंथ मानकर चलना होगा।

भारत के बारे में कुछ और भी मेरी चिंताएं हैं, स्वप्न हैं, जिन्हें मैं चाहूंगा कि वे पूर्ण हों। न्याय व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन जरूरी हैं। लाखों मुकदमे न्याय की प्रतीक्षा में हैं और भ्रष्टाचार का तो कहना ही क्या। हमारी पुलिस व्यवस्था तो संवेदनशील है और आम आदमी तो त्रस्त है। सरकारी निर्माण-सड़क, पगडंडी बनती है और एक वर्ष बाद उसे तोड़कर फिर बनती है और इस प्रकार प्रशासन और ठेकेदार मिल-बांटकर खाते हैं। यह कैसा देश है जो सीमेंट, कंकरीट, बालू आदि को हर साल कूड़े में बदल देता है और भ्रष्टाचार की नाली बहती रहती है। अभी पेरिस गया था। वहां हजारों बिल्डिंग दो सौ-ढाई सौ साल पुरानी हैं और शान से खड़ी हैं। उसे देखकर अपने भारतीय होने पर शर्म आई कि हम कैसा भारत बना रहे हैं और अब तो अंग्रेज नहीं हम खुद ही अपने देश को लूट रहे हैं। हमारे यहां भी कानून हैं, पर जवाबदेही तथा अपराधी को समय पर दंडित करने की हमारी प्रवृत्ति खत्म हो गई है। सरकारी दफ्तरों

में काफी लोग न तो समय पर आते हैं और न समय से काम पूरा करते हैं। ऐसी स्थिति में प्रशासन सुचारू रूप से नहीं चल सकता। नरेंद्र मोदी इस ओर भी प्रयास कर रहे हैं और निकम्मे, आलसी, गैरजिम्मेदार कर्मचारियों पर अंकुश कसना ही होगा।

मैं भारतीय हूं, भारतीय होने पर गर्व करता हूं परंतु भारत के शक्तिशाली देश होने पर और भी अधिक गर्व का अनुभव करूंगा। भारत महान था और इस युग में उसे और महान बना कसते हैं। इसके लिए पूरे देश को प्रयत्न करना होगा। देश के प्रति हमारा जो पवित्र कर्तव्य है, उसे पूरा करना होगा। भारत को यदि कोई हरा सकता है तथा उसे अपमानित एवं कलंकित कर सकता है तो वे भारतीय ही होगा। हमारे बीच भारतघाती लोग हैं और आगे भी रहेंगे तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं मानवाधिकार का हवाला देकर देशद्रोहियों का साथ देते रहेंगे, परंतु हमें, राष्ट्र-प्रेम को इतना प्रबल बना देना है कि इनकी हर आवाज निरर्थक और निष्प्रभावी हो जाए। भारत को राष्ट्रीय चेतना तथा सांस्कृतिक अस्मिता की आवश्यकता है और हम इनके साथ विकास-यात्रा का समुचित प्रतिफल प्राप्त कर सकते हैं। भारत का राष्ट्र भाव, संस्कृति, विकास एवं युवाशक्ति सम्मिलन देश को एक अभिनव रूप देगा और वह एक शक्तिशाली विकसित देश के रूप में विश्व रंगमंच पर अपनी पहचान बनाएगा। मुझे विश्वास है, मेरा यह स्वप्न एक दिन सच होगा। मेरे भारत में सहने और संयम की अदम्य शक्ति है और शत्रु को नष्ट करने का भी शौर्य एवं युद्ध-कौशल है। पाकिस्तान को बार-बार पराजित करके तथा बांग्लादेश को बनाकर एवं पाकिस्तान के 95 हजार सैनिकों को कैद करके अपने सैन्य बल और युद्ध क्षमता का परिचय दे दिया है। हम बुद्ध के उपासक हैं और विश्व में हम शांति के लिए अपने सैनिकों को भेजते रहे हैं, परंतु हमारी शांतिप्रियता कायर की नहीं है। यह तो शौर्यवान, बलशाली वीरता की शोभा है। भारत अपनी रक्षा करना जानता है, अतः कश्मीर को भारत से अलग करने का कोई भी स्वप्न दिवास्वप्न ही होगा। कश्मीर में भारत विरोधी शक्तियां सक्रिय हैं, लेकिन वे पराजित होंगी और कश्मीर भारत का अंग बना रहेगा। धर्म के आधार पर देश का कोई हिस्सा अब अलग नहीं हो सकता। कश्मीर के विस्थापित लाखों हिंदुओं को कश्मीर में सम्मान के साथ पुनः स्थापित करना होगा। स्वतंत्र भारत में हुआ यह विस्थापन दुर्भाग्यपूर्ण है और धार्मिक कट्टरता इसका मूल कारण है। देश में सभी धर्मों के लोग यहां के विधिवत् नागरिक हैं और सभी को समान अधिकार है। लोकतंत्र में धर्म की सत्ता संविधान के ऊपर नहीं हो सकती। इसे सभी को समझना होगा। संविधान सबका धर्म-ग्रंथ है। देश में एक सिविल कोड की मांग भी लोकतंत्र की मूल प्रवृत्ति एवं प्रकृति के अनुरूप है। लोकतंत्र में न्याय व्यवस्था किसी धार्मिक ग्रंथ के आधार पर नहीं चल सकती। देश की एकता के लिए एक समान सिविल कोड होना ही चाहिए।

मुझे भारत की एकता में पूर्ण विश्वास है और यह भी विश्वास है कि आने वाली पीढ़ियां एकता को खंडित नहीं होने देंगी। यह सच है कि प्रांतीयता और धार्मिक कट्टरता की प्रवृत्ति बढ़ रही है परंतु हमारा गणराज्य और संविधान इतना मजबूत है विखंडन की किसी प्रवृत्ति को

सफल नहीं होने देगा। पंजाब के खालिस्तान का परिणाम हम देख चुके हैं, कश्मीर को देख रहे हैं। देश की जनता अब किसी बिखराव को स्वीकार नहीं करेगी। देश की राजनीति में नरेंद्र मोदी का उदय ऐसे सभी प्रयासों को असंभव बनाता जा रहा है। भारत एक है, उसकी संस्कृति में अनेक रूप होने पर भी उसमें एकता है, सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वत्र एकरूपता है, सीमाएं सुरक्षित हैं, देश विकास की ओर बढ़ रहा है देश के नेतृत्व में जनता का तत्परता एवं कुशलता है, अंत्योदय के प्रति जाग्रति है, धर्मों में समरसता की चेष्टा है, भ्रष्टाचार को खत्म करने में सक्रियता है, स्वदेशी का नाम मंत्र है और शिक्षा का नाम चिंतन है। भारत इससे सबल बनेगा, स्वदेश और परदेश में स्वीकृत होगा और इससे मेरा स्वप्न भी पूर्ण होगा।

(लेखक सुप्रसिद्ध आलोचक और केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष हैं)

●

श्रद्धांजलि

- कथाकार-चिंतक मुद्राराक्षस, 13 जून
- कथाकार सतीश जमाली, 21 जुलाई
- चित्रकार सैयद हैदर रजा, 23 जुलाई
- कवि अनुवादक नीलाभ, 23 जुलाई
- कथाकार-समाजसेवी महाश्वेता देवी, 28 जुलाई
- आलोचक-संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय, 15 सितंबर
- कथाकार हृदयेश, 31 अक्टूबर
- निबंधकार विवेकी राय, 22 नवंबर
- पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र, 19 दिसंबर
- हिंदीसेवी एन. सुन्दरम, 19 दिसंबर

वर्ष 2016 के दौरान दिवंगत सभी विभूतियों को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की ओर से श्रद्धांजलि।

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम : नव युग के स्वप्न द्रष्टा

जी. गोपीनाथन

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत में और पूरे विश्व में समृद्धि, शांति और मैत्री स्थापित करने की जो भारतीय मनीषा की कामना है, उसके जीवित प्रतीक थे। सभी धर्मों और विचारधाराओं को समेटनेवाली भारत की सनातन सांस्कृतिक धारा के भी वे मूर्त रूप थे। उन्होंने भारत के स्कूली छात्रों और युवाओं से संवाद स्थापित कर उन्हें जीवन में महान स्वप्न देखने और कठिन मेहनत द्वारा उन स्वप्नों को यथार्थ में परिणत करने की प्रेरणा दी। इसलिए नई पीढ़ी के वे महान प्रेरणा स्त्रोत रहे है और आगे भी उन की रचनाएं प्रेरणास्त्रोत रहेंगी। यहां पर उन की रचनाओं के आधार पर युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा-प्रद उन के जीवन के प्रमुख बिंदुओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

भारत की उदार संस्कृति के प्रतीक

देश के विख्यात वैज्ञानिक और विमान प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ होने के साथ ही अब्दुल कलाम भारत की उदार सांस्कृतिक परंपरा के पोषक थे। धर्मों से परे जो आध्यात्मिकता है और मानवीयता पर आधारित जो मैत्रीभाव है, वह उन के जीवन में हम पाते हैं। उन के जीवन और चिंतन के विकास में उन के बचपन के माहौल की भूमिका बहुत बड़ी है। बचपन में वे रामेश्वरम् की मसजिदवाली गली में स्थित अपने पुश्तैनी घर में रहते थे। प्रतिष्ठित शिव मंदिर, जिस के कारण रामेश्वरम् प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, का इस घर से दस मिनट का पैदल का रास्ता था। जिस इलाके में वे रहते थे वह मुस्लिम बहुल था, लेकिन वहां कुछ हिंदू परिवार भी थे जो अपने मुस्लिम पड़ोसियों से मिल-जुलकर रहते थे। धार्मिक उदारता और सौहार्द इस वातावरण के कारण उन में सहज ही विकसित हुआ। इस इलाके में जो मस्जिद थी, उसी में उन के पिताजी जैनुल्लबदीन उन्हें नमाज पढ़ने के लिए ले जाते थे। उनके पिताजी उदार धार्मिक विचार के थे, रामेश्वरम् मंदिर के सबसे बड़े पुजारी पं. लक्ष्मण शास्त्री उनके पिताजी के

मित्र थे। नमाज के रहस्य के बारे में जैनुल्लबदीन ने अपने बेटे को बताया था कि जब तुम नमाज पढ़ते हो, तो अपने शरीर से इतर ब्रह्मांड का एक हिस्सा बन जाते हो जिसमें दौलत, आयु, जाति या धर्म का कोई भेदभाव नहीं होता। उन्होंने अपने बेटे को यह भी बताया था कि जो लोग संकट की स्थिति में उनके पास आते हैं, उनके लिए अपनी प्रार्थना के जरिए ईश्वरीय शक्तियों से संपर्क स्थापित करने का वे माध्यम बन जाते हैं। रामेश्वरम् के इस उदार सांस्कृतिक माहौल में रहने के कारण बचपन से ही उन्हें संदेह नहीं था कि मंदिर में की गयी प्रार्थनाएं जहां जिस जगह पहुंचती हैं, मस्जिद में पढ़ी गयी नमाज भी ठीक वहीं जा पहुंचती है। मंदिर में प्रतिवर्ष होनेवाले श्री सीताराम विवाह समारोह के दौरान उनके परिवार के लोग ही विवाह-स्थल तक मूर्तियां ले जाने के लिए विशेष प्रकार की नावों का बंदोबस्त करते थे। उन्होंने 'अग्नि की उड़ान' शीर्षक अपनी आत्मकथा में यही भी लिखा है कि क्लास में धर्म के आधार पर छात्रों से भेदभाव दिखानेवाले अध्यापक को बुलाकर मंदिर के मुख्य पुरोहित लक्ष्मण शास्त्री ने उन्हें डांटा था कि निर्दोष बच्चों के दिमाग में सामाजिक असमानता और सांप्रदायिकता का विष नहीं घोलना चाहिए। भारत की इस उदार सांस्कृतिक परंपरा ने कलाम साहब के व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित किया था।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय

डॉ. कलाम अपने जीवन में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के छात्र और अनुसंधाता रहे हैं लेकिन हमारे छात्रों एवं वैज्ञानिकों की इस गलत धारणा का उन्होंने खंडन किया कि विज्ञान आध्यात्मिकता से भिन्न है। 'अग्नि की उड़ान' में उन्होंने लिखा है कि उनके लिए विज्ञान हमेशा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होने और आत्मज्ञान प्राप्त करने का रास्ता रहा है। उन्हें इस मंथन से यह भी आभास हुआ कि ऐसी कोई दैवी शक्ति है, जो हमें भ्रम, दुःखों, विषाद और असफलता से छुटकारा दिलाती है तथा रास्ता दिखाती है। इस धारणा के कारण बचपन से ही वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषयों के साथ ही आध्यात्मिक विषयों में भी दिलचस्पी लेते थे। उनके बचपन में रामेश्वरम् में वह भयंकर तूफान आया था जिसमें रेल सहित यात्री बह गए थे, उनके पिताजी और बहनोई जलालुद्दीन की सभी नावें बह गयी थीं और नौका बनाने का उनके परिवार का धंधा चौपट हुआ था। उस आघात में उनके बहनोई जलालुद्दीन एक आध्यात्मिक व्यक्ति बन गए थे। उन दिनों जलालुद्दीन के साथ वे आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे और तीर्थ स्थल होने के कारण रामेश्वरम् का वातावरण उनकी आध्यात्मिक चर्चाओं में और भी प्रेरक हुआ। जलालुद्दीन के साथ वे समुद्र के रेतीले तट पर रोज घूमते थे। रास्ते में उनका पहला पड़ाव शिव मंदिर हुआ करता था। इस मंदिर की वे उतनी ही श्रद्धा से परिक्रमा करते थे जितनी श्रद्धा से रामेश्वरम् आया कोई भी तीर्थ यात्री करता। इस

परिक्रमा के बाद वे दोनों अपने शरीर को बहुत ही ऊर्जावान महसूस करते। वे लिखते हैं कि इस ग्रह पर आप जहां भी जाते है, वहां गति और जीवन है, वैसे ही निर्जीव वस्तुओं, जैसे चट्टानों, धातुओं, लकड़ी और चिकनी मिट्टी में भी आंतरिक गतिशीलता विद्यमान है। हर नाभिक के चारों और इलक्ट्रोन चक्कर काटते हैं, नाभिक इन इलक्ट्रोनों को अपने चारों ओर बांधे रखता है। इसकी प्रतिक्रिया में इलक्ट्रोन उस के चारों ओर घूमते रहते है, और यही इस गति का स्त्रोत है।... हर ठोस वस्तु के भीतर खाली स्थान होता है और हर स्थिर वस्तु के भीतर बड़ी हलचल होती रहती है। यह ठीक उसी तरह से जैसे हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में पृथ्वी पर भगवान शिव का शाश्वत नृत्य हो रहा है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से कलाम साहब का जीवन-दर्शन विकसित हुआ जो एकदम से भारतीय और सार्वलौकिक है।

अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धा

प्रारंभिक पाठशाला से लेकर मद्रास प्रौद्योगिकी संस्थान तक ओर आगे भी उन के जो मार्गदर्शक अध्यापक थे, उन सबको कलाम साहब अपनी आत्मकथा तथा अन्य किताबों में श्रद्धा और कृतज्ञता से याद करते हैं। वे रामनाथपुरम के श्वार्टस हाईस्कूल के अयादुरै सोलमान को एक महान शिक्षक के रूप में याद करते हैं। उनके साथ रहते हुए कलाम साहब ने यह जाना कि व्यक्ति खुद अपने व्यक्तित्व को बना सकता है। 'निष्ठा एवं विश्वास से तुम अपनी नियति बदल सकते हो', यही उनका कथन था। जीवन में सफलता अर्जित करने के लिए उन्होंने इच्छा, आस्था और उम्मीदें इन तीनों बुनियादी तत्वों को आवश्यक बताया था। इसी तरह वे सेंट जोसेफ कालेज के अपने भौतिकी के शिक्षकों चिन्नादूरै और प्रो. कृष्णमूर्ति को परमाणुवीय भौतिकी के विशिष्ट अध्यापन के लिए याद करते हैं। एम.आई.टी. मद्रास में स्पांडर नामक आस्ट्रिया के अध्यापक, प्रो. के.ए.बी. पन्दलाई और प्रो. नरसिंह राव से वैमानिकी तकनीक की शिक्षा ली थी। वहां का कोर्स पूरा करने के लिए उन्हें आकाश से नीचे आकर करीब से हमला करने वाले लडाकू विमान का डिजाइन तैयार करना था। पहले वे उसमें असफल रहे। प्रो. श्रीनिवासन ने उन्हें समय सीमा में वह काम करने के लिए मजबूर किया और दिन रात एक कर वे उस काम में जुट गए और मौलिक डिजाइन बनाने में समर्थ हुए। उनके अंदर की प्रतिभा को बाहर निकालने और आगे मिसाइलों को रूपाकार देने में उनको जिन महान वैज्ञानिकों का मार्गदर्शन और सहयोग मिला, उनको भी सधन्यवाद बार-बार याद करते हैं। प्रो. विक्रम साराबाई, डॉ. ब्रह्मप्रकाश, प्रो. सतीश धवन, प्रो. एम.जी.के. मेनोन, डॉ. राजा रामन्ना आदि वैज्ञानिकों के कार्य को वे अत्यंत श्रद्धा से याद करते हैं।

आध्यात्मिक गुरुओं से मार्गदर्शन

कलाम साहब ने अपने जीवन में कई आध्यात्मिक गुरुओं से मार्गदर्शन प्राप्त किया

था। अपने वैज्ञानिक जीवन में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन उन्हें हिमालय के स्वामी शिवानंद से मिला था। वायुसेना में कमिशन अधिकारी बनना वे चाहते थे। इसके लिए उनका जो इंटरव्यू देहरादून में हुआ, उसमें से जिन आठ उम्मीदवारों का कमिशन अधिकारी के रूप में चयन हुआ, उनमें कलाम नवें नंबर पर आकर अटक गए थे। उनके लिए यह बड़ी निराशा का कारण बना। तभी संयोग से उनकी मुलाकात ऋषिकेश में शिवानंद आश्रम में स्वामी शिवानंद से हुई। उस विषम स्थिति में वे एक सच्चे गुरु की तरह उन्हें सही रास्ता दिखाते हुए बोले, 'अपनी नियति को स्वीकार करो और जाकर अपना जीवन अच्छा बनाओ। नियति को मंजूर नहीं था कि तुम वायुसेना के पायलट बनो। नियति तुम्हें जो बनाना चाहती है, उसके बारे में अभी कोई नहीं बता सकता। लेकिन नियति यह पहले ही तय कर चुकी है। अपनी इस असफलता को भूल जाओ, जैसे कि नियति को तुम्हें यहां लाना ही था। असमंजस से निकलकर अपने अस्तित्व के लिए सही उद्देश्य की तलाश करो। अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दो'। कलाम साहब भगवान बुद्ध की तरह दिखनेवाले इस स्वामी का उपदेश ग्रहण कर दिल्ली गए और उन्हें उड्डयन निदेशालय में वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक के पद के लिए नियुक्ति पत्र मिल गया जो आगे के महान कार्यों के लिए उन्हें सहायक बना। 2002 में वे स्वामी नारायण संस्था के प्रमुख स्वामी महाराज से अहमदाबाद में मिले थे। कलाम साहब ने स्वामीजी को बताया कि भारत के रूपांतरण के लिए उन्होंने पांच क्षेत्रों को चुना है, शिक्षा और स्वास्थ्य संरक्षण, कृषि, सूचना एवं संचार, बुनियादी ढांचा निर्माण और संवेदनशील प्रौद्योगिकी। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि एक छठा तत्व इन क्षेत्रों के कार्यों को सफल बनाने के लिए चाहिए और वह है ईश्वर पर विश्वास और आध्यात्मिकता के आधार पर जनता का सर्वांगीण विकास। उन्होंने कलाम साहब के प्रश्न का उत्तर देते हुए यह भी बताया कि भौतिक और आध्यात्मिक विकास समानांतर रूप से होना चाहिए। उन्होंने बताया कि हमारी संस्कृति हमें पराविद्या (आध्यात्मिकता) और अपरा विद्या (भौतिक) सीखने की प्रेरणा देती है। प्रत्येक आत्मा का विकास ही इस सृष्टि का ध्येय है। बचपन से ही आध्यात्मिक शिक्षा देने से अपने देश के प्रति प्रेम और स्वाभिमान जागेगा और अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो जाएगा। कलाम साहब के विजन 2020 के लिए यह सुझाव दिया था कि सभी क्षेत्रों में आध्यात्मिक दृष्टि के समावेश से यह विजन सफल होगा। 2002 में वे ख्वाजा मोहिउद्दीन चिश्ती के दरगाह गए। सूफी संत चिश्ती से नदियों जैसी उदार दान वृत्ति, सूर्य जैसी करुणा और पृथ्वी जैसा धीरज धरने की सीख ली। भूखे को खिलाने और दीन दुःखियों की सेवा का आदर्श उन्हें वहां से प्राप्त हुआ। इसी वर्ष वे माता अमृतानंदमयी देवी से मिले, जिनसे उन्हें आत्मिक मूल्य आधारित शिक्षा का संदेश मिला। कांची शंकराचार्य से उन्हें ग्रामीण इलाके में नगरों जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराने

और धार्मिक सहभाव की प्रेरणा मिली। सत्य साई उच्चतर शिक्षा केंद्र जाने पर और स्वामी सत्यसाईं से मिलने पर उन्हें अपने हृदय से घृणा को दूर कर उस के स्थान पर प्रेम को भरने और अपने अहंकार की आहुति देने की प्रेरणा मिली। आबू पर्वत पर ब्रह्मकुमारी केंद्र में जाने पर ज्ञान, योग, सदगुण एवं सेवा के द्वारा भारत को एक सुंदर देश बनाने की प्रेरणा मिली। पांडिचेरी के श्री अरविंदो आश्रम से उन्हें मानव राशि के भविष्य को बनाने के लिए विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की प्रेरणा मिली। इस समन्वय द्वारा विश्व के लिए भारतीय प्रतिरूप प्रस्तुत करने की प्रेरणा अपने लेखन और कार्यों द्वारा उन्होंने दी है।

स्वप्न देखने की युवा लोगों को प्रेरणा

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का एक बहुत बड़ा योगदान युवा पीढ़ी को स्वप्न देखने की प्रेरणा देने में है। इसके लिए उन्होंने खुद अपना उदाहरण दिया है। बचपन में वे अनंत आकाश एवं पक्षियों के उड़ने के रहस्यों के प्रति काफी आकर्षित थे। वे सारस और अन्य भारी पक्षियों को समुद्र के ऊपर उड़ान भरते हुए बहुत ध्यान से देखा करते थे। उन्होंने लिखा है कि यद्यपि वे एक साधारण स्थान से आनेवाले छात्र थे, लेकिन उन्होंने मन में निश्चय किया कि एक दिन आकाश में ऐसी ही उड़ानें भरेंगे। कालांतर में वे अंतरिक्ष विज्ञान और वैमानिकी के विशेषज्ञ बने और 'उड़ान भरनेवाला रामेश्वरम् का बालक' सिद्ध हुए। अपने अनुभव के आधार पर देश के युवा लोगों को जीवन में महान स्वप्न देखने और अपनी नियति को निष्ठा एवं विश्वास से बदलने की प्रेरणा दी है। उनका कथन है कि स्वप्न विचारों में परिणत होता है और विचार कार्यों में रूपांतरित होते हैं। यदि स्वप्न नहीं हो तो क्रांतिकारी विचार भी पैदा नहीं होंगे। इसलिए बच्चों को स्वप्न देखने की प्रेरणा देने के लिए सभी माता-पिता से भी अनुरोध करते हैं। महात्मा गांधी, अलबर्ट आइंसटीन, चक्रवर्ती अशोक, अब्राहम लिंकन और खलीफा उमर को चांदनी रात में एक रेगिस्तान में मिलते हुए वे कल्पना करते हैं जो उनका एक स्वप्न ही है। इस स्वप्न में अशोक द्वारा मानव राशि के बचाव के लिए अहिंसा धर्म अपनाने की बात बतायी गयी। गांधीजी ने शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की बात कही। खलीफा उमर ने कहा कि सभी मानव समान है और अपना धर्म अपनाने के लिए दूसरे को मजबूर नहीं किया जा सकता। आइंसटीन ने पश्चिमी भौतिक विकास में दिशाहीन मानव के लिए पूरब के अध्यात्म दर्शन को उपयुक्त बताया। अब्राहम लिंकन ने मानव की सुख-समृद्धि में परिवार की समृद्धि और खुशी को बुनियादी चीज बताया। गांधीजी का मार्ग अपनाते हुए इस स्वप्न का अंत इस तत्व को रेखांकित करते हुए होता है कि हम जो कुछ करते है, वह मानवराशि की भलाई के लिए हो।

विकसित देश बनाने का संकल्प

भारत के लोगों के दिल से हीन भावना दूर कर उन में आत्मविश्वास भरने के लिए अब्दुल कलाम का जीवन बहुत ही सहायक है। रॉकेट के विशेषज्ञ के रूप में स्वदेशी रॉकेट टेक्नोलॉजी और रॉकेट विक्षेपण वाहन के निर्माण में उनकी अहम भूमिका रही है। वे इसरो ({PMXz) में 1963-82 के दैरान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। 1980 में भारत रोहिणी उपग्रह को एस.एल.वी-3 द्वारा भ्रमण पथ पर स्थापित कर शून्याकाश क्लब का सम्मानित सदस्य गया था। उस समय कलाम साहब एस. एल. वी-3 की परियोजना के निदेशक थे। इस परियोजना को सफल बनाने में उन्हें विक्रम साराभाई, सतीश धवन, ब्रह्मप्रकाश तथा भारत के अन्य अनेक वैज्ञानिकों से पूरा सहयोग मिला था। 1982 में प्रतिरोध अनुसंधान और विकास संगठन में रहते हुए अनेक देशों के विरोध एवं रोड़े अटकाने के प्रयासों के बावजूद रणनीतिपरक मिसाइलों का निर्माण किया। उनके दल ने इतनी क्षमता अर्जित की कि अंतरभूखंडीय बैलिस्टिक मिसाइल के निर्माण का कार्य भी करने की क्षमता प्राप्त की। आणविक ऊर्जा के 'पृथ्वी' और 'अग्नि', जमीन से हवा में मार करनेवाली 'त्रिशूल', टैंक भेदी 'नाग' आदि मिसाइलों और 'ब्रह्मोस' जैसे क्रूज मिसाइलों की रूपकल्पना और निर्माण उनकी देखरेख में किया गया। 'भारत विजन 2020' के अनुसार ज्ञान के क्षेत्र में परम शक्ति बनने के लिए भारत में फिर से एक नवजागरण की कल्पना की गयी। कला, साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इतिहास, गणित, राजनीति इत्यादि क्षेत्रों में मौलिक उद्भावनाओं को विकसित करने पर बल दिया गया। आधुनिक भारतीय नवजागरण के पुरोधाओं से प्रेरणा ग्रहण कर आत्मविश्वास के साथ 2020 तक और उसके आगे भारत को विकसित देशों की श्रेणी मे ले जाने की योजनाएं कलाम और उनके सहयोगियों ने बनायी जो अब कार्यान्वित हो रही है। देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शांतिपूर्ण इस्तेमाल से समृद्धि, शांति और सर्वांगीण प्रगति करने की आधारशिला रखी गयी है। इस योगदान के संदर्भ में हमें डॉ. अब्दुल कलाम तथा नवभारत के अन्य स्वप्नद्रष्टा ऋषि तुल्य मनीषियों को याद करना है।

हिंदी विश्वविद्यालय के कुलाध्यक्ष

राष्ट्रपति की हैसियत से वर्धा के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलाध्यक्ष के रूप में कलाम साहब पांच वर्ष रहे। उन्होंने मुझे कुलपति के रूप में नियुक्त किया और मुझे उन्हें निकट से जानने का अवसर मिला। दो अवसरों पर उनसे प्रत्यक्ष संवाद करने का भी सुयोग मिला। 2004 में राष्ट्रपति भवन में हिंदी विश्वविद्यालय की स्थिति और प्रगति के बारे में उनसे लंबी बातचीत हुई थी। उनके सामने कंप्यूटर पर विश्वविद्यालय का सारा ब्योरा मौजूद था। परिसर निर्माण पर बात करते हुए वर्धा का परिसर बनाने और शीघ्रतिशीघ्र बुनियादी ढांचा निर्माण कर हिंदी में विश्वस्तरीय उच्च

अध्ययन शुरू करने के लिए उन्होंने निर्देश दिया। विश्वविद्यालय में शुरू किए गए अनुवाद प्रौद्योगिकी, भाषा प्रौद्योगिकी, जनसंचार, अहिंसा एवं शांति-अध्ययन, स्त्री अध्ययन, तुलनात्मक हिंदी साहित्य आदि पाठ्यक्रमों से वे खुश थे। हिंदी के विषय में उनका विचार था कि चूंकि हिंदी अब स्थानीय भाषा नहीं रही, वह एक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भाषा बन गयी है, इसलिए उसके अध्ययन-अध्यापन में प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से क्रांति लाने के लिए परिश्रम करना चाहिए। हिंदी के माध्यम से प्रबंधन जैसे विषयों को शुरू करने का भी उन्होंने समर्थन दिया। छात्रों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने भारत के सभी प्रदेशों और विदेशी राष्ट्रों, विशेषकर भारतवंशी बहुल देशों से विद्यार्थियों को आकर्षित करने लायक कार्यक्रम चलाने का सुझाव दिया। दूसरी बार उनसे विस्तृत चर्चा करने का अवसर तब मिला जब वे दूर-शिक्षा पाठ्यक्रम के उद्घाटन के लिए वर्धा पधारे। उनका विचार था कि उच्चस्तरीय इंटरएक्टिव मल्टी मीडिया-पैकेज और टेली शिक्षा के माध्यम से हिंदी को विश्व जनता तक पहुंचाया जा सकता है। 15 जून 2007 के अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा था कि गांधीजी के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदी को जन-जन की भाषा के रूप में विकसित करें। उन्होंने यह भी कहा था कि प्राचीन समय के नालंदा विश्वविद्यालय के आदर्श को ग्रहण कर वर्धा अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का विकास करना चाहिए जिससे विश्व भर के ज्ञानार्थी और हिंदी प्रेमी वर्धा की ओर आकर्षित हों।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति हैं)

●

भारतीय संस्कृति : इतिहास और भविष्य

रामाश्रय राय

भारतीय संस्कृति आज पराभव की अवस्था में जीवन और मरण के बीच झूल रही है। संस्कृति का जो रूप भारतीय सामाजिक जीवन को हजारों साल तक अनुप्राणित करता रहा, इसे विशिष्टता प्रदान करता रहा और जिसने उसके व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्षों एक सूत्र में पिरोकर रखा, उन्हें बिखरने से रोका रखा, आज वह ग्रहण-ग्रस्त सा लगता है। बहुतों की दृष्टि में भारतीय आर्थिक विकास की राह में भारतीय संस्कृति अगर पगबाधा ही प्रतीत होती है तो अन्य लोगों के लिए इसका क्षरण चिंता का विषय बना हुआ है। इस स्थिति को हम उस संक्रमण-स्थिति की संज्ञा दे सकते हैं, परंतु दूसरा प्रभुत्व-कामी जीवन दर्शन अभी पूर्णरूपेण संस्थापित नहीं हो पाया है। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि यह जीवन दर्शन भारतीय समाज की विभिन्न संस्थाओं की आधार भूमि बन गया है और हमारे बहुलांश क्रिया-कलापों का स्पन्दन स्रोत है। यह जीवन दर्शन उदीयमान ही नहीं, यह ओजस्वी भी है। इसलिए प्रारंभिक भारतीय संस्कृति की जड़ें खोदने में काफी समर्थ भी है।

यह विडंबना की बात है कि जो संस्कृति सार्वजनीनता, उदार हृदया एवं उन्मेषकारी मानी जाती रही है, उसका पराभव उस संस्कृति के हाथों हो रहा है जो संगदिल है, जिसका आधार अत्यंत ही संकीर्ण है, और जो वस्तुवादी है। भारतीय संस्कृति के उत्तरोत्तर ग्रहण-ग्रस्त होने से उत्पन्न चिंता के कारण तीन महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़े होते हैं। प्रथम प्रश्न का संबंध भारतीय संस्कृति के उस विशिष्ट रूप से है जो अन्य संस्कृतियों से इसे पृथक और असमान बनाए रखने का कारक है। भारतीय संस्कृति की दीर्घजीविता ही इस बात का प्रमाण है कि इसमें कुछ ऐसी विशिष्टताएं हैं जो उसे बाह्य असंगत और इसलिए हानिकारक तत्वों को निष्प्रभावी बनाने और अंगीकरण करने में समर्थ बनाती थीं। अतः भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को संक्षिप्त में ही सही, परिभाषित करना आवश्यक है। दूसरा प्रश्न उन तत्वों से संपृक्त है, जिनके क्रियाशील होने के कारण भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीनता और विमुखता की स्थिति उत्तरोत्तर गहरी और सुदृढ़ होती गई। इस संबंध में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जो संस्कृति मुस्लिम शासन की दीर्घ अवधि में अपनी अस्मिता सुरक्षित रख सकी और अपना ओज क्षीण नहीं होने दिया वह अंग्रेजों के आगमन और उनके करीब दो सौ वर्षों के शासन में ग्रहण-ग्रस्त होने लगी। अतः यह आवश्यक है कि जिन तत्वों ने भारतीय समाज में प्रविष्ट होकर भारतीय संस्कृति को खोखला बनाना प्रारंभ कर दिया, उनका लेखा-जोखा किया जाए। तीसरा प्रश्न भारतीय संस्कृति के भविष्य का है परंतु इसका उत्तर अनुमान के अतिरिक्त और कुछ

नहीं हो सकता।

यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का मूल स्वर वैदिक विश्व दृष्टि से झंकृत हुआ है। वैदिक विश्वदृष्टि का एक प्रमुख अंग है सृष्टि विद्या अथवा भाववृत्त। वैदिक सृष्टि विद्या के द्वारा ही व्यक्ति के जीवन के व्यावहारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पक्षों के अंतर्गुफन का स्वरूप दिग्दर्शित होता है। सृष्टि विद्या तीन महत्वपूर्ण पक्षों का स्पष्ट विवरण आवश्यक है। सृष्टि विद्या के तीन मुख्य प्रयोजन हैं। एक तो, यह अपरोक्ष, अगोचर, विश्व का परिचायक है; इस अगोचर विश्व को सृष्टि विद्या के द्वारा भाववृत्त या प्लेटो के शब्दों में संभाव्य कहानी के माध्यम से एक विश्व की झांकी बोलती है। दूसरे, यह व्यक्ति और अपरोक्ष विश्व के बीच क्या उपयुक्त संबंध होना चाहिए, इसका सूचक है। तीसरे, इससे व्यक्ति को यह बोध होता है कि अगोचर विश्व में जो व्यवस्था अंतर्निहित है, उसके अनुरूप अपने अंतर्जगत को व्यवस्थित करने के फलस्वरूप ही मनुष्य का वैयक्तिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन अनुशासित और मर्यादित हो पाता है।

वैदिक सृष्टि विद्या के अनुसार सृष्टि की प्रक्रिया तभी संचरित होती है जब असत् सत् में परिवर्तित होने के लिए क्रियाशील होता है। असत् से मंतव्य उस उर्जा से है जिसका कोई केंद्र नहीं, रूप नहीं। यह उर्जा स्वयंभू है जो विवर्धन की प्रक्रिया में अन्य जीवों के अतिरिक्त अक्षर, क्षर और मनुष्य के रूप में क्रमशः अवतरित होता है और महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक मनुष्य में अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष का निवास होता है; अर्थात मनुष्य अमर्त्य और मर्त्य दोनों का संगम स्थल है। ऋग्वेद 1.164.20 में वर्णित-सुपर्णा सयुजा सरवाया... इसी महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करता है।

कहने को तो प्लेटो की सृष्टि विद्या, जिसका विवरण टायमियस में उपलब्ध है, के अनुसार अगोचर विश्व की भी कल्पना की गई है। इस अगोचर विश्व के केंद्र के फॉर्म (form) है, जो सभी जीव-जंतुओं के प्रारूप का समुच्चय समाहार है। वह लोकातीत है और सृष्टि की प्रक्रिया में वह स्वयं परिवर्तित नहीं होता, इससे वह सर्वथा ही निर्लिप्त होता है। उसके स्थान पर डिमाय अर्गोस सृष्टि-प्रक्रिया में संलग्न होता है, वह जीवों, प्राणियों आदि का निर्माण तो नहीं कर सकता, परंतु अनान्के (प्रकृति) द्वारा निर्मित अव्यवस्थित और विपथगामी जीवों, प्राणियों, आदि पर व्यवस्था का आरोपन अवश्य करता है। प्लेटो की अवधारणा के अनुसार फार्म और अनान्के ही विभिन्न परंतु स्वायत्त सत्ताएं हैं- जिनकी अपनी सीमा है। फॉर्म प्रतिमानों का पुंज तो है, परंतु वह स्वयं इन प्रतिमानों के अनुरूप सृजन नहीं कर सकता, उसी तरह अनान्के सृजन के लिए उत्तरदायी तो है, परंतु व्यवस्था स्थापित करना उसकी जिम्मेदारी नहीं। स्पष्ट है कि इन दोनों, फॉर्म और अनान्के में असाम्य संबंध है। ध्यातव्य यह है कि दोनों ही अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकते। इसलिए कॉकरेन का मत है कि 'भौतिक काया जिसमें अभवन (becoming) की दुनिया को रूपों की दुनिया के रूप में चित्रित किया गया है, उसकी अभवन की प्रक्रिया कभी पूरी नहीं हो पाती। यह इसलिए क्योंकि यह भौतिक काया की सीमाओं को उल्लंघन करने जैसा होगा। इसके फलस्वरूप, भौतिक काया मात्र प्रतिमान या 'वास्तविक जगत' की प्रतिच्छाया बनकर रह जाती है। यह स्थिति भौतिक और आध्यात्मिक जगत के चिरंतन वि-भेद का द्योतक है।

इसके विपरीत वैदिक सृष्टि विद्या में यह विभेद, यह भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती, क्योंकि अथर्ववेद 10.08.98 के अनुसार देवों ने मर्त्यों को रचा और उनमें प्रवेश कर गए (गृहम् कृत्वा देवाः

पुरुषमविशम्) इसकी पुष्टि यजुर्वेद के इस कथन से होती है : प्रजापति ने जीवों को रचा और उनमें प्रवेश कर गए। इस संबंध में छान्दोग्य उपनिषद III.XIV.I की तज्जलान की अभिकल्पना महत्वपूर्ण है : तज्जलान का अर्थ तन् (रचयिता)+जर (विश्व)+ ली (आत्मसात करना) + आन (संभालना, संपोषित करना) अर्थात आदि पुरुष, स्वयंभू विश्व की रचना करता है और उसे आत्मसात् कर संभाले रखता है, संपोषित करना है। वैदिक, विश्वदर्शन की यह विशिष्टता है कि उसमें सृष्टिकर्ता और सृष्टि में कोई विभेद, कोई पृथकता की अवधारणा नहीं। प्रत्येक जीव प्रजापति का ही अलग-अलग रूप माना जाता है : पुरुषो वै प्रजापतिर्मदिष्ठान।

इसलिए ऋग्वेद VI.47.18 के अनुसार इंद्र विश्व का प्रतिमान है और वह अनेकानेक रूप धारण करता है : रूपम् रूपम् प्रतिरूपम् वभूवः। इसलिए विश्व का प्रत्येक प्राणी दिव्याग्नि का स्फुल्लिंग माना जाता है : याथाग्नेक्षुद्र विस्फुल्लिंग व्यूचरंति (वृहदारण्यक उपनिषद II.1.20, मुंडक उपनिषद II.1.1.) फिर मुंडक उपनिषद 1.1.7 के अनुसार प्रत्येक प्राणी परम पुरुष का विस्तार मात्र है। तैप्तिरीय उपनिषद भी इस बात की पुष्टि करता है : *स यश्चयम पुरुषे यश्चवादित्येः* यह जो पुरुष के रूप में स्थित है, और वह जो सूर्य में अंतर्विष्ट है, वे दोनों एक ही हैं।

यह स्पष्ट है कि वैदिक दर्शन में पुरुष (पुर में शयन करने वाला) की अभिकल्पना से यह बात सिद्ध होती है कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास है, वह परम पुरुष से अलग नहीं। इस अर्थ में प्रत्येक व्यक्ति अक्षर और क्षर जीवों का संगम है, वह दोनों का संयुक्त रूप है। प्राणी रूपी पुर में शयन करने वाले पुरुष के दो प्रमुख पक्ष माने जाते हैं : अमर्त्य और मर्त्य। अमर्त्य के रूप में अगर परमात्मा अग्रज है, तो आत्मा अनुज है। यह सत्य है कि अग्रज अनुज के साथ रहता तो जरूर है (अस्ति ज्यायान कनीयस उपरे (ऋग्वेद VII.86.6) परंतु अकसर अनुज अग्रज की अनुपस्थिति को स्वीकार नहीं करता, उसकी उपेक्षा-अवहेलना करता है, वह बहुधा संकट के समय ही उसका स्मरण करता है।)

अक्षर पुरुष की अवधारणा साक्षी के रूप में की गई है, वह क्षर अथवा भोक्तृ पुरुष के क्रियाकलापों को देखना तो रहता है, परंतु वह उसमें हस्तक्षेप नहीं करता और जब व्यक्ति अपने अंतर्तम में अवस्थित पुरुष की उपेक्षा-अवहेलना करता है, या उसका अनदेखा करता है, तो व्यक्ति की सांसारिकता में निमज्जित होती संभावना उदग्र हो जाती है। इस निमज्जन के फलस्वरूप व्यक्ति छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार, कामाचार बन जाता है; वह सुख की खोज में अपनी इच्छाओं की पूर्ति की प्रक्रिया में अर्थसंग्रही बन जाता है; धनोपार्जन ही उसकी प्रबल प्रवृत्ति बन जाती है। अर्थसंग्रही बनने पर वह अग्रज का सखा बन नहीं पाता।[२] अर्थ लोलुपता के कारण व्यक्ति यह विस्मरण कर देता है कि वह कोई सार्वभौम और स्वायत्त सत्ता नहीं, उसके ऊपर कोई एक ऐसी सत्ता है जिसके साथ संपृक्त होने पर ही वह अपना और बाह्य जगत-समाज और प्रकृति-दोनों का भला कर सकता है परंतु परमसत्ता की अवहेलना अथवा विस्मरण, दोनों ही ऐसी स्थितियां हैं जिनसे ग्रस्त होने के कारण व्यक्ति अपने कर्तव्य की सीमाओं, प्लेटो के शब्दों में सोफ्रोसीन (Sophrosyne) को तोड़कर स्वायत्त बनने का प्रयास करता है। इसके फलस्वरूप एक और अनेक की भलाई, मंगल को जोड़ने वाला तंतु भी टूट जाता है।

इसी तंतु को सबल बनाने और टूटने से बचाने के लिए संस्कृति की शुभंकर भूमिका की अवधारणा की गई है। भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र यही है कि मनुष्य के अंतरतम में अवस्थित अक्षर

के रूप में निवास करने वाला परम पुरुष का विस्मरण न हो। आत्मारूपी अनुज अपने अग्रज पुरुष की सचेतन स्वीकृति करे और निरंतर उसका स्मरण करता रहे। इसी आधार पर मनुष्य और देव, पृथ्वी और अंतरिक्ष का जो आद्य समुदाय है, वह सुरक्षित रहता है और संरक्षित रहता है। इसके संरक्षण के लिए मनुष्य और देव का संपर्क सूत्र अटूट बना रहा, यह आवश्यक है। इस संपर्क सूत्र के आधार पर ही मनुष्य के जीवन में महाशयता का आविर्भाव होता है, प्रस्फुटन होता है और पूर्ण विकसित होने पर समाजोन्मुखी मनोदशा में इसका प्रादुर्भाव होता है।

इसी संदर्भ में यह कथन कि 'ईश्वर प्रेम के आधार पर ही दूसरों से प्रेम संभव हो पाता है' का महत्व जाना जा सकता है। इसी आधार पर ऐसी संस्कृति का उद्‌भव होता है जो सम्यक कृति का बोध कराने में समर्थ होती है और जब सम्यक कृति, अर्थात किस स्थिति में क्या करणीय है और किसके साथ कैसा आचरण उचित है, का प्रश्न उठता है तो इस संबंध में दो बातें महत्वपूर्ण हो जाती हैं। एक, संस्कृति की आधुनिक अवधारणा को ई.एन.आर. टाइलर[3] ने जिस रूप में परिभाषित किया है, उसके अनुसार 'संस्कृति अथवा सभ्यता एक ऐसी इकाई है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला नैतिकता, कानून रीति-रिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित सभी क्षमताएं सम्मिलित हैं।'

इस परिभाषा के अनुसार संस्कृति साध्य नहीं, वरन् उपलब्धि है परंतु यह एक ऐसी उपलब्धि है जो इतिहास के बदलते परिवेश और मनुष्य के परिवर्तनशील तथ्यात्मक संदर्भ में अपना रूप बदलती रहती है। इस तरह संस्कृति का कोई शाश्वत रूप नहीं कोई अपरिवर्तनीय संघटन नहीं। संस्कृति तो इतिहास के प्रवाह में मानव जाति की उपलब्धियों के चरण-चिह्न भर ही है। स्पष्ट है कि सभ्यता की प्रगति की प्रक्रिया में संस्कृति सभ्यता की विशेष अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

संस्कृति की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि संस्कृति मनुष्य के उस उपक्रम की उत्पाद है जो वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं के लिए प्रेरित होता है। इस परिभाषा का निहितार्थ यह हे कि संस्कृति का पारंपरिक शास्त्रीय मानवतावादी तात्पर्य- अर्थात बुद्धिवादी, अस्पष्ट रूप से पूर्णता-कामी और मूल्यांकनकारी रूप लुप्त सा हो गया है। संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा चरित्र निर्माण, सद्‌गुण-अर्जन और पूर्णत्व प्राप्ति आदि पर विशेष बल देती है। संस्कृति किसी विशिष्ट आदर्श के संधान के लिए सुविचारित उपक्रम का संकेत करती है और इसी अर्थ में ग्रीक शब्द पाइडिया (Peidecia) अर्थात् चरित्र निर्माण की शैक्षणिक प्रक्रिया का व्यवहार होता था।[5] संस्कृति का यह बोध व्यक्ति के चरित्र निर्माण रचनात्मक सार्वदेशिक एवं मूल्यांकनकारी रूप को रेखांकित करता है।

कहने की जरूरत नहीं कि भारतीय संस्कृति का पारंपरिक बोध संस्कृति के इसी अभिप्राय को अंगीकृत किया है। अतः वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन तथा संबंधों में यही अभिप्राय परिलक्षित हुआ है। इसी अभिप्राय को चरितार्थ करने के लिए भारतीय संस्कृति का प्रमुख लक्ष्य यह है कि वह इस बात की ओर इंगित करे कि मनुष्य के कर्मक्षेत्र की क्या अधिकृत सीमाएं हैं। दूसरे शब्दों में, भारतीय संस्कृति यह इंगित करती है कि मनुष्य की अधिकार सीमाओं के भीतर कर्म करने पर ही पुरुष की संज्ञा सार्थक होती है। यमधिकृत्य पुरुषः प्रवर्त्तते और जो अधिकृत कर्म है, उन्हीं को पुरुषार्थ की संज्ञा दी गई है। पुरुषार्थ चतुष्ठय में काम और अर्थ मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से जुड़े हैं इसके लिए समीचीन है तो धर्म की भूमिका व्यावहारिक जीवन को किसी निर्दिष्ट आदर्श की सिद्धि के लिए केंद्रीभूत और व्यवस्थित-अनुशासित रखना है और मोक्ष का निहितार्थ सांसारिक जीवन से,

जन्म-मृत्यु के चक्र से व्यक्ति की मुक्ति है।

धर्मानुकूल आचरण का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि नैसर्गिक (Natural) मनुष्य आध्यात्मिक रूप से अंधा होता है। इसलिए काम और अर्थ, दोनों ही क्षेत्रों में उसकी आत्म-विवर्धन (Self-aggrandizemeat) की प्रवृत्ति बलवती होती है। काम के सहारे अगर व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों को परिभाषित, सुनिश्चित करता है, तो अर्थ के द्वारा वह इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सक्रिय होता है। काम और अर्थ दोनों ही मनुष्य के जीवन-यापन और जीवन को महत्तर बनाने के लिए आवश्यक साधन हैं परंतु अनुशासित-अमर्यादित क्रियाशीलता के कारण मनुष्य के अंतरतम में अव्यवस्था फैलने की संभावना बढ़ जाती है। मनुष्य के अंतरतम के अव्यवस्थित होने पर उसका सामाजिक परिवेश भी दूषित-कलुषित और अव्यवस्थित हो जाता है। फिर व्याधिग्रस्त सामाजिक परिवेश से किसी भी व्यक्ति का अछूता रह पाना और अव्यवस्था जनित व्याधियों से मुक्त हो पाना दूभर हो जाता है।

इस दुर्वृत्त से मुक्त होने के लिए धर्माचरण आवश्यक है और धर्माचरण के लिए यज्ञ जरूरी है। एक पौराणिक आख्यान के अनुसार देवताओं ने यज्ञ किया और उस यज्ञ से जो स्वर्ग तक सोपान बना उस पर चढ़कर वे स्वर्ग पहुंच गए। परंतु स्वर्ग पहुंचने के पहले उन्होंने सोपान को उलटा कर दिया, जिससे कोई अन्य बिना यज्ञ किए स्वर्ग पहुंच न पाए। इस आख्यान का तात्पर्य स्पष्ट है : जीवन को महत्तर बनाने के लिए मनुष्य की पशु-प्रकृति पर विजय पाकर महाशयता की ओर संक्रमण आवश्यक है। यह संक्रमण यज्ञ के द्वारा ही संभव है। और अगर यज्ञ का अर्थ पुनीतीकरण की प्रक्रिया है तो यह यज्ञ के द्वारा ही साध्य है। यहां यज्ञ का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति बाह्य धार्मिक अनुष्ठानों कृत्यों में भाग लेकर यह मान ले कि वह पवित्र हो गया। इन अनुष्ठानों और कृत्यों के संपादन से मनुष्य का आंतरिक पुनीतीकरण असंभाव्य है। वैदिक परिप्रेक्ष्य में यज्ञ का निहितार्थ अंतरिम अग्निहोत्र है जो विहव्य होता है, इसमें किसी बाह्य हव्य की आवश्यकता नहीं होती : तस्मादोगिय यद विहव्ये ने गिरे (अथर्ववेद VII.5.4) इस यज्ञ में यजमान स्वयं ही हव्य बनाता है (ऋग्वेद V.46.1)

इस पृष्ठभूमि में शतपथ ब्राह्मण का सतिसद और सत्रसद का विभेद महत्वपूर्ण है। सनिसद से तो यह संकेतित होता है कि यजमान वास्तविक रूप से यज्ञ में आसीन है और इस यज्ञ को वह मनसा संपादित कर रहा है। (मनसा अधवयति, शतपथ ब्राह्मण II.2.4.8) और वह मूल रूप से देवताओं के बीच बैठा है (सतीसु देवतास सिदन्तः) सत्रसद तो वह है जो प्रसाद की कामना से किसी यज्ञ में बैठा होता है।

सतिसद और सत्रसद के विभेद से एक दूसरे विभेद की तरफ भी संकेत होता है। यह आत्मयाजी और देवयाजी का विभेद है। आत्मयाजी तो स्वयं को यज्ञ में हव्य बनाकर अर्पित करता है, लेकिन देवयाजी देवताओं की पूजा-अर्चना करता है और उनकी आहुति करने के लिए अतिरिक्त और कुछ नहीं करता। आत्मयाजी वह है जो अपने आपको आहुति के रूप में चढ़ा देता है, आत्मन्नेव यजति (शतपथ ब्राह्मण XI. 2.6.13-14)।[6]

आत्मयाजी आत्मोद्घाटन की प्रक्रिया में सन्नद होकर एक ऐसी दृष्टि का विकास करता है जो उसे अपने अस्तित्व की अनिश्चितताओं को उसकी सीमाओं को पारकर एक बृहत्तर सत्ता से संपृक्त

होने में सहायक सिद्ध होता है। इस तरह संपृक्त होने पर उसका हृदय विशाल हो जाता है, वह उदार मना हो जाता है। फिर उसकी अपनी भलाई, अपने हित और दूसरों की भलाई और हित में उसे कोई विभेद नहीं दिखाई देता, कोई वैपरीत्य नहीं मालूम होता। इस आधार पर समान-चित्रता का उदय होता है, जिसकी सहायता से विविध हितों में सुसंगति स्थापित करने और सामंजस्य बनाए रखने में सहायता मिलती है। इसी परिप्रेक्ष्य में हम ऋग्वेद X.191.4 के मंत्र की भावना को समझ सकते हैं : समानी व आकृति समानी हृदयाति वः, समानीमस्तु वो मनो यथा वः सुहासति। यही समानचित्रता भारतीय संस्कृति का संधान है और यही इसकी उपलब्धि भी। इसी संधान के संकेत चिह्न हम भारतीय संस्था-विन्यास में देख सकते हैं, इसी समानचित्रता की व्यक्ति के जीवन में अपेक्षा की जाती है, क्योंकि इसी के सहारे व्यक्ति अपने कर्तृत्व की सीमाओं का बोध प्राप्त कर सकता है और इन सीमाओं का समादर कर सकता है। व्यक्ति को जब इन सीमाओं का बोध होता है, उनके प्रति प्रतिबद्धता होती है, तो वह आत्म-विवर्धन की प्रवृत्ति से विमुख हो पाता है।

भारतीय संस्कृति ने कभी विजातीय तत्वों को आने से नहीं रोका और न ही उनके आने पर उनसे प्रभावित होकर अपनी मूल पहचान को खोने दिया। इन विजातीय तत्वों को भारतीय संस्कृति ने अगस्त्य ऋषि की तरह उदरस्थ कर अपना बना लिया, आत्मसात कर लिया। भारतीय संस्कृति की सबलता और सामर्थ्य इसी बात से इंगित होती है कि दीर्घकालीन मुस्लिम शासन का क्रूर भार ढ़ोने पर भी वह अपनी अस्मिता बनाए रखी। परंतु अंग्रेजों के भारत प्रवेश और शासनरूढ़ होने के बाद भारतीय संस्कृति की सामर्थ्य क्षीण हो गई लगती है। पर्सिवल ग्रिफिथ्थ के शब्दों में, 'आठ दशकों की कम की अवधि में ही एक विदेशी वणिक समुदाय ने एक दूरस्थ देश पर अधिकार जमा लिया, वह एक ऐसा देश था जिसकी सभ्यता अति प्राचीन थी, इस सभ्यता को एक ऐसी प्रतिद्वंद्वी सभ्यता से भिड़ंत हुई जिसकी साम्राज्यवादी संस्कृति राजनैतिक, सामरिक और सांस्कृतिक अनुभवों से संपन्न थी।[7] इस भिड़ंत में कार्ल मार्क्स के शब्दों में अंग्रेजी शासन ने 'स्थानीय समुदायों को तोड़कर देशी उद्योगों को नष्ट कर और उन सभी तत्वों को जो उत्कृष्ट थे और स्थानीय समाज में शीर्षस्थ थे, उन सबको धराशायी कर हिंदू सभ्यता को विनष्ट कर दिया। उनके शासन के पन्ने विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं बताते।'[8]

अंग्रेजी शासन द्वारा भारतीय समाज पर आरोपित, पाश्चात्य उदारवादी जीवन दर्शन का परिणाम भारतीय संस्कृति के लिए बहुत ही विनाशकारी सिद्ध हुआ है। यद्यपि प्रारंभ में पूर्व और पश्चिम के संपर्क ने एक ऐसी धारा बहाई जो ट्राट मान की दृष्टि में 'भारत-स्तुति' के काल की द्योतक है; परंतु यह धारा बहुत शीघ्र ही सूख गई और भारत-भर्त्सना का विषाक्त जल द्रुतगति से भरकर प्रवाहित होने लगा है इसे ट्रॉटमान के ही शब्द में Indophobia (भारत-भर्त्सना) का काल कहा गया है। भारत-स्तुति की धारा एक मुख्य समर्थक मैक्समूलर भी था जिसने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को गौरवशाली करार दिया उनके शब्दों में 'भारत वर्ष उन सभी संपदा, शक्ति और सौंदर्य से विभूषित है जिन्हें प्रकृति प्रदान कर सकती है।' यह एक ऐसा स्थल है जहां 'मनुष्य की प्रतिभा ने कुछ श्रेष्ठ उपहारों का सृजन किया है (और) जीवन की गूढ़ समस्याओं पर गहरा चिंतन-मनन किया है।[9] ज्यॉ बेली ने ब्राह्मणों को पाइथागोरस का गुरु कहा है और उसके दार्शनिक विचारों के माध्यम से यूरोप का शिक्षक बतलाया है। वॉल्तेयर ने इसमें हां भरते हुए यह कहा कि मुझे इसकी पूर्ण प्रतीति है कि खगोल, विज्ञान, ज्योतिष, पुनर्जन्म का सिद्धांत आदि हमें गंगा के तीर से ही मिले हैं।[10]

भारत-स्तुति का दौर-दौरा अधिक दिनों तक नहीं चला। अंग्रेजी शासन का एक प्रयोजन आर्थिक था औद्योगिकरण की प्रक्रिया के प्रारंभ होने के कारण अपने उत्पादों के विक्रय के लिए, कल-कारखानों के लिए कच्चे माल, और अपने फैले हुए साम्राज्य के बचाव के लिए बराबर ही इग्लैंड को भौतिक साधनों भूख की भूख बनी ही रहती थी। अपने उपनिवेश की सुरक्षा के लिए आर्थिक साधनों का जुटाना आवश्यक था। इन्हीं उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अंग्रेजी शासन को भारतवर्ष की आर्थिक संरचना में दूरगामी, मूलभूत परिवर्तन करना आवश्यक था। साथ ही उदारवादी दर्शन में आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस संबंध में लार्ड केन्स की यह उक्ति कि आर्थिक विकास में ही विकास की संभावना अंतर्निहित है' बहुत ही अर्थवान है। इन सभी कारणों से भारतीय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन अपरिहार्य था और इसी आर्थिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारतीय चिंतन तथा कार्यप्रणाली में अभूतपूर्व परिवर्तन संभव हो सका।

कहने की जरूरत नहीं कि इस परिवर्तन के मूल में अर्थसंग्रह की प्रवृत्ति को, जो सदियों से नियमित-दमित थी उभारना था : और जब तक यह प्रवृत्ति उदित होकर वीर्यवान नहीं होती, तब तक उदारवाद में कल्पित मनुष्य की अवधारणा का प्रतिफलन नहीं हो सकता और न ही उसकी वर्तमान आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उद्योग धंधों में वार्धक्य हो सकता है। आर्थिक परिवर्तन के अतिरिक्त एक और भी कारण था जिसने अंग्रेजी शासन को पारंपरिक भारतीय समाज को बदलने के लिए उत्प्रेरित किया। इंग्लैंड में उपयोगितावाद के प्रभावी होने के कारण पारंपरिक भारतीय समाज को हेय माना गया। इसके अलावा ईसाई धर्म के प्रचार की लहर तब तक भारतीय संस्कृति को निगल नहीं लेती, जब तक उसकी सार्थकता को नकार कर लोगों को उससे विमुख न किया जाता। इन सभी कारणों के एकजुट होने से भारत-स्तुति का काल समाप्त हो गया और उसकी जगह भारत-भर्त्सना ने ले ली। अतः जिस सभ्यता और संस्कृति को मैक्समूलर ने गरिमामंडित माना, उसे जेम्समिल और चार्ल्स ग्रांट जैसे ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभावी अधिकारियों ने निंदा की। उन सबों ने भारतीय विधि-व्यवस्था, धर्म, चरित्र इन सभी की भर्त्सना की। ग्रांट ने तो यह कह डाला कि 'यूरोप के निकृष्ट क्षेत्रों में भी ऐसे बहुत सारे लोग मिल जाएंगे जो निष्कपट, ईमानदार और विवेकशील हैं परंतु बंगाल में सच्चे और निष्कपट लोग विरले ही मिलेंगे।[11] ऐसे लोगों का जब ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में बोलबाला हुआ तो यह स्वाभाविक था कि भारत-स्तुति की जगह भारत-भर्त्सना ले ली। ट्रॉटमान के शब्दों में 'भारत-स्तुति का काल अपनी स्वाभाविक मृत्यु नहीं मरा, वह तो मार डाला गया। इसके स्थान पर ईसाई धर्म के प्रचार और उपयोगितावाद जिसके प्रतिनिधि जेम्स मिल और चार्ल्स ग्रांट थे का बोलबाला हो गया।'[12] भारत-भर्त्सना के दौरान ही भारतीय चिंतन धारा और कार्य प्रणाली में दूरगामी परिवर्तन हुए।

इस परिवर्तन का आरंभ प्राच्यवादी विद्वानों द्वारा भारतीय संस्कृति को उच्च स्थान देने की प्रवृत्ति के ऊपर लगाम लगाने की क्रिया से प्रारंभ हुई। इस कार्य में सर विलियम जोन्स का विशेष योगदान है। यूरोप के भाषाविदों ने संस्कृत को सभी भारोपीय भाषाओं की जननी करार दिया था; जोन्स ने संस्कृत को इन भाषाओं की भगिनी के अलावा और कुछ नहीं माना। भारोपीय भाषाओं की जननी के रूप में जोन्स ने एक अज्ञात कुल-शील आदिम भाषा को माना, जिसका अता-पता अब तक नहीं मिल पाया है। दूसरे, ओल्ड बाइबिल में वर्णित जेनेसिस (सृष्टि) की कहानी की सत्यता को सुरक्षित

रखने के लिए जोन्स ने भारतीय सभ्यता की प्राचीनता मिथ्या सिद्ध किया। उन्होंने जेनेसिस की कहानी को सत्य मानकर भारतीय सभ्यता का काल निर्धारण इस तरह किया जिससे भारतीय सभ्यता 'महान जलप्लावन' की कल्पित तिथि के बाद पैदा हुई और तीसरे, जोन्स ने भारतीय विधि-व्यवस्था पर इंग्लैंड की विधि-व्यवस्था थोप कर उसे पंगु बना दिया।

इन सभी कारकों के क्रियाशील होने के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के विपरिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस प्रसंग में तीन महत्वपूर्ण विपरिवर्तनों का उल्लेख आवश्यक है। कहने की जरूरत नहीं कि ये सारे विपरिवर्तन दो विभिन्न सभ्यताओं के टकराव के कारण हुए। इस टकराव के कारण पहला विपरिवर्तन तो यह हुआ कि जो संस्कृति अध्यात्मोन्मुखी थी वह धीरे-धीरे अर्थ संग्रह की महत्ता को स्वीकार करने लगी। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और राजनैतिक विकास के दौरान संस्था-विन्यास में परिवर्तन के कारण समाज के शिक्षित वर्गों में पाश्चात्य सभ्यता के प्रति रुचि जगी और उसमें उनकी आस्था सबल हुई। परिणामस्वरूप, अध्यात्म के प्रति विमुखता भी उदग्र हुई। स्वतंत्रता के बाद अर्थतंत्र की प्रधानता और बढ़ी और अध्यात्म से विमुखता नेतृ वर्ग से फैलकर आम आदमियों को भी आवृत्त कर गई। अतः धीरे-धीरे लोगों की मनस्थिति अध्यात्म से विमुख होकर अर्थोपार्जन की ओर प्रवृत्त हो गई।

इस विपरिवर्तन के कारण और दूसरे विपरिवर्तन भी हुए। एक विपरिवर्तन का संबंध तो व्यक्ति की सामाजिक स्थिति से जुड़ा हुआ है। जो सभ्यता समाजनिष्ठ थी, समाज उतना ही महत्वपूर्ण था जितना व्यक्ति और समाज व्यक्तियों का गणितीय समुच्चय न होकर कुछ अधिक अर्थवान हुआ करता था, व्यक्तियों के आचरण का नियामक और व्यवस्थापक हुआ करना था, वह मात्र व्यक्तियों का समुच्चय बनकर रह गया। व्यक्ति को प्रधानता मिली और यह एक ऐसा केंद्र बन गया जिसके इर्द-गिर्द समाज और प्रकृति दोनों की उपादेयता का आकलन होने लगा। समाज और प्रकृति, दोनों ही व्यक्ति के प्रयोजनों की सिद्धि के साधन बन गए। व्यक्ति की इच्छा-अनिच्छा ही सामाजिक जीवन और संबंधों का नियामक हो गई। इस विपरिवर्तन के साथ-साथ एक और विपरिवर्तन भी हुआ। पहले समाज व्यक्तियों, दलों, वर्गों के पारस्परिक संबंधों का नियामक होता था; संघर्ष की स्थिति में न्याय की प्रक्रिया समाज ही चालित किया करता था परंतु अब यह जिम्मेदारी चली गई राजनीति और राजकीय संस्थाओं के पास। दूसरे शब्दों में समाज के महत्व में, उसके पद में बड़ा विघटन हुआ।

ये सारे विपरिवर्तन अंग्रेजों के शासनकाल में हुए और भारतवर्ष का नेतृवर्ग, कुछ महत्वपूर्ण अपवादों को छोड़कर, पाश्चात्य जीवन दर्शन के रंग में इतना रंग गया कि उसे भारत की प्रत्येक वस्तु से विमुखता हो गई। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि स्वतंत्रता के उपरांत राजनैतिक संस्था-विन्यास, विधि-व्यवस्था आदि के आधार पर ही भारत के नव निर्माण का स्वप्न देखा गया। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आर्थिक विकास को ही आधार माना गया। यह विस्मरण कर दिया गया कि जब अर्थ का प्राबल्य होता है, तो अध्यात्म दमित हो जाता है। इसी अर्थ में मैक्स शीलर ने भौतिकता को अध्यात्म का जलकपाट (sluice gate) माना है। यह ऐसा जल कपाट है आध्यात्मिक गतिविधियों की, उसकी ओर रुझान को व्यवस्थित-नियमित करता रहता है। अध्यात्म का कभी पूर्णावसान नहीं होता, पर वह उसी हद तक क्रियाशील होता है जिस हद तक भौतिक कार्य-व्यापार उसकी सीमाएं निश्चित करता है। स्वतंत्रता के बाद अर्थ को मानव अस्तित्व का केंद्र माना गया,

उसे प्रधानता दी गई, उसे प्रश्रय दिया गया। अर्थ की प्रधानता के आध्यात्मिक जीवन और उस पर आश्रित संस्कृति के लिए विषम परिणामों को स्वीकारा तो गया, परंतु यह माना गया कि आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर ही आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हो सकता है। स्पष्ट है कि इसके मूल में यह मान्यता थी कि अर्थसंग्रह ही प्रबल प्रवृत्ति के साथ ही अध्यात्माश्रित संस्कृति को जीवित रखा जा सकता है, उसे ओजस्वी बनाया जा सकता है, वह वर्द्धिष्णु हो सकती है। इस मान्यता ने इतिहास के सबक को नजरअंदाज कर एक असाध्य कार्य को साध्य बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परंतु यह ईश्वर के प्रति विद्रोह का ही प्रतीक है, मनुष्य के अक्खड़पन का ही उदाहरण है।

इस पृष्ठभूमि में भारतीय संस्कृति के भविष्य का जो प्रश्न उठता है, उसका उत्तर साफ है। जब तक अर्थसंग्रह की प्रवृत्ति उत्कर्ष की अवस्था में हो, तो भारतीय संस्कृति पर संकट छाया ही रहेगा। जब कुबेर इष्ट देवता हो जाए, तो नारायण सोए ही रहेंगे।

संदर्भ :

1. चार्ल्स नॉरिस कॉकरेन, क्रिस्चियानिटो एंड क्लासिकल कल्चर : ए स्टडी ऑफ थॉट एंड एक्शन फ्रोम ऑगस्तस टू ऑगस्टिन (आक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957), पृ. 79
2. तुलनीय ऋग्वेद VII.21.14 और कठोपनिषद 1.II.6
3. ई.एन. टाइलर, प्रिमिटव सोसाइटीज (लंडन : मरे, 1871)
4. जे.जी. मार्कियोर, दी वेल एंड दी मास्क : एसे ऑन कल्चर एंड आइडियोलॉजी (लंडन : रूटलेज एंड केगान पॉल, 1979), पृ. 79
5. वर्नर जैकार, पायडिया : दी आयडियल्स ऑफ ग्रीक कल्चर (न्यूयार्क : आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1939), I भूमिका
6. तुलनीय जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण 1.14.1 और बृहदारण्यक उपनिषद 1.IV.10.
7. पर्सिवल ग्रिफिथ, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया (हैमन्स वर्थ : पेंग्विन बुक्स, 1986), पृ. 120
8. कार्ल मार्क्स, 'आर्टीकल्स ऑफ इंडिया' पी.के. गोपालकृष्णन, डेवेलपमेंट ऑफ इकोनॉमिक आयडियाज इन इंडिया, 1890-1950 (नई दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1959), पृ. 17
9. मैक्समूलर, इंडिया, व्हाट कैन इट टीच अस (लंडन : लौंगमैन्स, 1885), पृ. 7
10. एडविन ब्रायन्ट, दी क्वेस्ट फॉर दी ओरिजिन्स ऑफ वैदिक कल्चर : दी इंडो-आर्यन मायग्रेशन (दिल्ली : ऑक्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001), पृ. 18
11. द्रष्टव्य रामाश्रय राय, गांधी एंड अंबेडकर ए स्टडी इन कॉन्ट्रास्ट (दिल्ली : शिप्रा प्रकाशन, 2006), पृ. 45
12. टॉमस आर. ट्रॉटमान, आर्यन्स एंड ब्रिटिश इंडिया, (बर्कले : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1997) पृ. 99

(लेखक राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञ तथा वरिष्ठ अध्येता हैं)

परिवर्तन के संकेत

अच्युतानंद मिश्र

समस्याओं पर विचार हर दौर में होता रहा है, हर दौर की अपनी समस्याएं रही हैं। उनका उस दौर ने अपने अतीत की अच्छाइयों, अपने दौर की चुनौतियों और भविष्य के लिए बेहतर संभावनाओं के आधार पर हल खोजा है। दुर्भाग्यवश आज के दौर में ऐसा नहीं दिख रहा। अगर कहें तो आज के दौर में न तो अतीत की अच्छी चीजों से सीखने की ओर ध्यान दिया जा रहा है, न ही मौजूदा दौर की चुनौतियों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश हो रही है और न ही भविष्य की संभावनाओं और आशंकाओं को सही तरीके से देखा-परखा और समझा जा रहा है। इसी वजह से आज के दौर में सब कुछ गड्डमड्ड नजर आता है। मेरी समझ से आज के दौर की सबसे प्रमुख समस्या है, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में नैतिकता और नैतिक मूल्यों का अभाव। हमारा देश राजनीतिक चुनौतियों की बजाय कहीं ज्यादा गहरे सांस्कृतिक और नैतिक संकट से गुजर रहा है। ऐसे में जरूरी यह है कि आखिर किस तरह से भारत, भारतीय समाज और उसकी व्यवस्था को ना सिर्फ सांस्कृतिक और नैतिक, बल्कि सामाजिक जीवन मूल्यों के साथ आगे लाया जाए। राजनीतिक दलों के लिए आज के दौर में सत्ता प्राप्ति का उद्देश्य कुछ वैसे ही हो गया है, जैसे सतयुग-त्रेता में साधकों के लिए ब्रह्म प्राप्ति थी। राजनीतिक दलों का एकमात्र लक्ष्य सिर्फ और सिर्फ सत्ता तक पहुंच हासिल करना रह गया है। राजनीतिक कार्यक्रमों में सामाजिक बदलाव के मानकों को जोड़कर बदलाव लाने की प्रवृत्ति राजनीतिक दल काफी पीछे छोड़ चुके हैं। अब उनके लिए विचारधारा त्याज्य हो गयी है। सत्ता प्राप्ति के लिए सामाजिक मूल्यों, विचारधारा और सिद्धांतों से समझौता करना पड़े तो भी राजनीतिक दल नहीं हिचकते। यह उस देश में हो रहा है, जहां गांधी, लोहिया, जयप्रकाश और दीनदयाल उपाध्याय जैसे राजनीतिक कार्यकर्ता हुए हैं, जिन्होंने अपने राजनीतिक कर्म के लिए कभी विचारधारा से समझौता नहीं किया, बल्कि नए मूल्य ही रचे।

हमारे राष्ट्रीय चरित्र में मुझे तीन कमियां दिखाई देती हैं.... ईमानदार और न्यायप्रिय राजनीतिक नेतृत्व की कमी..सार्वजनिक जीवन में अनुशासन, सेवा भावना, सहिष्णुता और न्यायप्रियता की अनुभूति की कमी है। मेरे हिसाब से राजनीति कभी-भी किसी समाज के नैतिक विकास का कारण नहीं बनती है..उसके अंदर की कला और संस्कृति विरोधी विचारधारा उसकी

अच्छाई को नष्ट करती है। रही-सही कसर राजनीतिक दलों में आ रहे संस्कृतिविहीन सोच वाले लोग पूरी कर दे रहे हैं। शायद यही वजह है कि आज के चुने हुए जनप्रतिनिधियों के सामने संकट कहीं ज्यादा बड़ा है। आज के दौर में ना सिर्फ चुने हुए लोग, बल्कि आम जन के लिए भी संविधान और समानता के प्रति आस्था जरूरी है...लेकिन मेरे हिसाब से यह सिर्फ लिखित बात है। यह भी सच है कि हमारा जो सामाजिक और आर्थिक ढांचा है, उसके चलते हमारे समाज में हर किसी को समानता नहीं मिल सकती है और शायद ही किसी दौर में ऐसा रहा हो..

स्वाधीनता के बाद हमने जो संसदीय प्रणाली अपनाई, वह एक संस्था के रूप में भले ही ठीक हो, लेकिन वह भारतीयता की धारा से दूर है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता उसके अंदर बनने वाली संस्थाओं पर निर्भर करती है और वे संस्थाएं लगातार कमजोर होती जा रही हैं। इसका कारण एक यह है कि पिछले कुछ सालों में राजनीतिक दलों में सत्ता के दलालों की आगत बढ़ गई है। ये दलाल और चुने हुए प्रतिनिधि कुल मिलाकर संविधान के साथ अन्याय ही नहीं, गद्दारी कर रहे हैं। इसलिए जो संस्थाएं लोकतंत्र को चलाने में सार्थक होनी चाहिए, वे अपनी वह भूमिका नहीं निभा पा रही हैं। इससे एक और बात हो रही है..समाज टूट रहा है। अपराध बढ़ रहे हैं, राजनीति में अपराधीकरण बढ़ रहा है। राजनीति नीचे जा रही है। सामाजिक तौर पर पहले यह था कि अपराध करने वालों को समाज में सम्मान नहीं मिलता था, समाज में उनका स्थान अच्छा नहीं माना जाता था। लेकिन अब ऐसा नहीं रहा। अब समाज के मूल्य भी बदल रहे हैं, जिसके असर से वह भी धीरे-धीरे टूट रहा है। चूंकि सामाजिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं, इसलिए राजनीति में अपराधीकरण बढ़ रहा है, और उसी के चलते अपराधियों को सामाजिक प्रतिष्ठा मिल रही है। उससे हमारे जीवन मूल्य नष्ट हो रहे हैं, सांस्कृतिक प्रतिष्ठा नष्ट हो रही है। ये जो सामाजिक विभाजन है, उससे शहरों ही नहीं गांवों तक में अशांति फैल रही है। समाज बंट रहा है, परिवारों का विघटन हो रहा है। इसलिए कुल मिलाकर महान देश होने के बावजूद भारत नैतिक अधःपतन का शिकार है। सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से हमारा देश भले ही महान रहा हो, लेकिन उसका वर्तमान हमारे नैतिक अधःपतन का इतिहास हो गया है। इसलिए हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा घट रही है। जातीयता बढ़ रही है, क्षेत्रीयता बढ़ रही है। समाज में विभाजनकारी गतिविधियां बढ़ रही हैं। इसलिए आज की जरूरत यह है कि हम यह सोचें और उन उपायों पर विचार करें, जिससे समाज को विघटित होने से बचाया जा सके।

करीब ढाई दशक पहले हमने जिन आर्थिक नीतियों को स्वीकार किया, उससे बेशक हाल के दिनों में कुछ चकाचौंध बढ़ी है लेकिन वह भी भारतीयता की वैचारिक धारा के अनुकूल नहीं है। आज का ग्लोबलाइजेशन भी भारतीय अवधारणा वसुधैव कुटुंबकम् से इतर है। इसी वजह से मौजूदा वैश्वीकरण के दौर में असमानता नजर आ रही है। चूंकि यह बराबरी की विचारधारा पर आधारित ही नहीं है, इसलिए इसमें असमानता तो होगी ही। हम इसे अब पलट भी नहीं

सकते, इसलिए इस असमानता का हल राजनीतिक व्यवस्था में ईमानदारी, पारदर्शिता, आर्थिक शुचिता के द्वारा ही हो सकता है। इसके लिए नई पीढ़ी को सही शिक्षा दी जानी चाहिए। एक और चिंता की बात है, यह कि हमारे यहां शिक्षा के द्वारा जो संस्कार दिए जा रहे हैं, वे भारतीय संस्कार नहीं है। हमने पश्चिम से सिर्फ राजनीति या अर्थव्यवस्था ही नहीं ली है, बल्कि शिक्षा व्यवस्था भी ले ली है जो समाज, देश और परिवार को तोड़ने का काम कर रही है। इसलिए राजनीतिक व्यवस्था में पारदर्शिता होनी जरूरी है। इसलिए राजनीति में सामाजिक सेवा करने की भावना और दृष्टि होनी चाहिए। केवल सत्ता प्राप्त कर लेना और सिर्फ सत्ता का इस्तेमाल हो, इस पर रोक लगनी चाहिए। नौकरशाही को कैसे आदर्श बनाया जाय, भ्रष्टाचारमुक्त समाज बनाया जाए, आर्थिक विषमता को मिटाया जाए, ये सबसे पहली जरूरी चीज है। आज जो व्यवस्था चल रही है, उसके अंदर से यह चीज निकलकर नहीं आ रही है। कुल मिलाकर भ्रष्टाचार और अराजकता से मुक्त लोकतांत्रिक मूल्यों से संपन्न सशक्त समाज बनाने की दिशा में काम करना होगा।

आज की जो संस्थाएं हैं, वे भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में बिल्कुल सक्षम नहीं हैं। जैसे हमने संविधान के जरिए जो लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाई है, उसी में एक चुनाव आयोग भी है। जिसने निष्पक्ष चुनाव और राजनीति को अपराधमुक्त करने के लिए कई सारे उपाय किए हैं, इसके बावजूद उसी चुनाव आयोग के जरिए हो रहे चुनावों से अपराधी चुनकर आ रहे हैं, भ्रष्ट लोग चुनकर आ रहे हैं इसलिए नहीं माना जा सकता कि हमारी संस्थाएं मूल्य आधारित समाज बनाने में कारगर रही हैं। हमारी संस्थाएं न तो भ्रष्टाचार से मुक्ति दिला पा रही हैं और न ही अपराधीकरण पर रोक लगा पा रही हैं। इन संस्थाओं के जरिए चुनकर आने वाले लोग ही अपराधीकरण को बढ़ावा दे रहे हैं। वे लोकतांत्रिक संस्थाओं की जड़ों को काट रही हैं।

जो अनचाही चीजें हो रही हैं, वे किसी भी हाल में ना हों, लोकतंत्र सही ढंग से काम करे, ईमानदार और जनसेवक प्रतिनिधि चुनकर आएं, उनमें एक सार्वजनिक नैतिकता और अनुशासन बना रहे। यहां से इसकी शुरुआत हो सकती है। समय तेजी से बदल रहा है, फिर भी अब माना जाने लगा है कि भारतीयता के जो पारंपरिक मूल्य रहे हैं, वे ही दुनिया में समानता आधारित समाज को विकसित करने में कारगर हो सकते हैं। पश्चिम भी अपनी भौतिकता की दौड़ के बाद इसे स्वीकार कर रहा है। इसलिए हमारे लिए जरूरी है कि हम भी अपने पुरातन भारतीयता के जो मूल्य रहे हैं, उनको हासिल करें। लेकिन यहां हमें यह भी ध्यान रखना है कि इसका यह मतलब नहीं कि हमें पुरातन भारत चाहिए। हमें पुराने सांस्कृतिक भारत की पुनरावृत्ति नहीं करनी है लेकिन नैतिकता आधारित भय जो हमारे जीवन मूल्य रहे हैं, उनका होना जरूरी है। लोकतंत्र को हमने जरूर अपनाया है, लेकिन हमें विदेशी लोकतंत्र की नकल नहीं करनी है। आधुनिक दृष्टि के साथ भारतीय सांस्कृतिक जीवन मूल्यों वाला लोकतंत्र हमारे लिए जरूरी है। इस वैचारिक आधार पर संसदीय लोकतंत्र की संस्थाओं का भी निर्माण होना

चाहिए।

हाल के दिनों में जो बदलाव हुआ है, खासतौर पर राजनीतिक तौर पर....उससे कई लोगों की उम्मीदें जगी हैं लेकिन हमें मान लेना चाहिए कि ऐसे बदलाव से एकदम से परिवर्तन नजर नहीं आएगा बल्कि बदलाव की दिशा में इससे संकेत जरूर मिल सकते हैं। मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि सपनों का भारत हासिल करना अभी आसान नहीं है लेकिन स्वाधीन भारत में पहली बार इस दिशा में सही परिवर्तन के संकेत मिल रहे हैं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

प्रस्तुति- उमेश चतुर्वेदी

●

भारतीय दृष्टि से बदलाव की जरूरत

रामबहादुर राय

मौजूदा भारत को लेकर सोचते वक्त कई बातें सामने आती हैं। पहली तो यह कि आजाद भारत में कई धाराओं-कई बातों का ना सिर्फ घालमेल हो गया है, बल्कि वर्तमान परिस्थिति में कई धाराओं के बीच टकराव भी बढ़ा है। इसकी बड़ी वजह है आजादी की लड़ाई के दौरान ही यह तय नहीं होना कि हमारी दिशा क्या होगी 1945 में ही लार्ड एटली के ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बनते ही तय हो गया था कि भारत की आजादी नजदीक है। उसी वक्त होना यह चाहिए था कि हमारे नेता यह तय करते कि आजाद भारत की दिशा क्या होगी। उस वक्त गांधीजी ने पंडित जवाहर लाल नेहरू से भारत की भावी दिशा को लेकर विचार-विमर्श किया था। कुछ सुझाव भी दिए थे लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। भारत की आजादी की पूरी लड़ाई की चेतना राष्ट्रीय थी। उसमें स्वराज की अवधारणा थी। गांव केंद्रित राज व्यवस्था का खाका था। गांधीजी ने हिंद स्वराज में दरअसल उसे ही स्वराज कहा है लेकिन आजाद भारत ने इस दिशा में आगे बढ़ना स्वीकार नहीं किया गया। इतिहास और संस्कृति को लेकर स्पष्ट धारणा तक नहीं बनाई गई। मेरी समझ से मौजूदा भारत की यह पहली बड़ी दुर्घटना है। दूसरी दुर्घटना देश का बंटवारा है। अभी तक यह रहस्य बना हुआ है कि भारत का बंटवारा क्यों हुआ। सवाल यह है कि क्या देश का बंटवारा 1937 में की गई जवाहरलाल नेहरू की गलती की वजह से हुआ। क्या बंटवारे की नींव उसी वक्त पड़ गई, जब उन्होंने करार के बावजूद संयुक्त प्रांत, जिसे अब उत्तर प्रदेश कहा जाता है, उसकी सत्ता में मुस्लिम लीग को भागीदारी नहीं दी। इस सवाल का भी अब तक जवाब नहीं मिला है कि क्या ब्रिटिश सरकार की योजना से देश बंटा। खाड़ी के देशों पर नजर डालने के बाद तो यह शक भी बढ़ता है। मेरी समझ से आधुनिक भारत की तीसरी बड़ी दुर्घटना गांधीजी की 30 जनवरी 1948 को हुई हत्या है। गांधीजी ने अपनी हत्या से काफी पहले ही वर्धा में वरिष्ठ गांधीवादियों के पांच दिनों का सम्मेलन आयोजित करने को सोच रखा था। इस सम्मेलन में गांधीजी आजाद भारत की दिशा तय करने को लेकर विचार करने वाले थे। गांधीजी के दुनिया से चले जाने के बाद इस सम्मेलन की जिम्मेदारी राजेंद्र बाबू ने संभाली। इस सम्मेलन में आचार्य जेबी कृपलानी, कुमारप्पा, विनोबा भावे, नेहरू आए। पांच दिनों तक बातचीत चली उसमें गांधीजी के बताए रास्ते पर विचार हुआ। उस बैठक में हुई चर्चा

बरसों तक बक्से में बंद रही। उस पर गोपाल कृष्ण गांधी ने दो साल पहले किताब लिखी है। इस किताब को पढ़ने के बाद लगता है कि गांधीजनों ने ही आजाद भारत में गांधी की हत्या कर दी। इसके लिए सबसे ज्यादा दोषी जवाहर लाल नेहरू और विनोबा भावे हैं। नेहरू ने अपनी राह चुनी और विनोबा ने सत्ता की सहयोगी संस्था के तौर पर अपनी भूमिका चुन ली।

आधुनिक भारत में चौथी बड़ी दुर्घटना 1998-99 में हुई। देश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी, लोकतंत्र की वापसी हुई। पहली बार गैर कांग्रेसी धारा का प्रधानमंत्री बना। 1977 में जनता पार्टी से जो उम्मीदें थीं, उसे उसने पूरा नहीं किया। नया कुछ नहीं किया। लेकिन 1998 में पहली बार सचमुच का गैर कांग्रेसी व्यक्ति प्रधानमंत्री बना। इसे आप इतिहास का निर्णायक मोड़ कह सकते हैं। लोगों को इस सरकार से 1947 के बाद पहली बार उम्मीदें थीं, कि यह सरकार कुछ अलग, भारतीयता के मुताबिक करेगी। लेकिन इस सरकार ने भी नया कुछ नहीं किया। जो पहले से चला आ रहा था, उसी का विस्तार किया। इससे भ्रम बढ़ा। यह सवाल भी खड़ा हुआ कि इसी राज व्यवस्था को बनाए रखते हुए। हम अपना उद्देश्य हासिल कर क्या सकते हैं जबकि भारत को भारत बनाने के लिए ग्रामीण व्यवस्था का विकास जरूरी है। 1954 में जयप्रकाश नारायण ने नेहरू को पत्र लिखकर भारत की विकास व्यवस्था को उल्टा पिरामिड कहा था। उन्होंने तब कहा था कि भारत की राज व्यवस्था औपनिवेशिक है। इसमें तंत्र मजबूत हो रहा है, जबकि आम आदमी कमजोर हो रहा है। इस राज व्यवस्था की कमजोरी यही है कि इसमें वैचारिक आग्रह अतीत की बात होती गई और सत्ता मजबूत होती गई।

जहां तक अपने देश और समाज की संस्थाओं की बात है तो अपने देश में संस्थाएं तो हैं लेकिन वे भारतीयता का असल विस्तार और भारतीय मूल्यों के मुताबिक तभी काम कर सकती हैं या चुनौतियों का मुकाबला कर सकती हैं, जब उन्हें भारत के स्वभाव के अनुरूप ढाल सकें। मेरा मानना है कि अगर वे भारत की आत्मा के मुताबिक काम करें तो उनमें शक्ति आ जाएगी। वैसे भी मेरा मानना है कि आधुनिक भारत की ज्यादातर संस्थाएं हमारी बनाई हुई नहीं हैं लेकिन हम उन्हें ढोने के लिए अभिशप्त हैं। संविधान और समाज से निकली दोनों ही तरह की संस्थाएं काम कर रही हैं और अपने-अपने ढंग से काम कर रही हैं। यह बात और है कि उनमें भी स्पष्टता नहीं है। वर्ण और जाति व्यवस्था की काफी बात की जाती है। माना जाता है कि हिंदू समाज का अपना कानून मनुस्मृति है। लेकिन वह मनुस्मृति भी कौन है और उसके क्या कानून हैं। मैंने कहीं पढ़ा था कि वारेन हेस्टिंग के जमाने में हाईकोर्ट के एक जज के सामने हिंदू समाज का एक मामला आया तो उसने हिंदू कानून समझने के लिए वाराणसी के पंडितों को बुलाया। उन्होंने अपनी संस्कृत भाषा में हिंदू कानून समझाया। उसका फारसी में अनुवाद हुआ और फारसी से अनूदित होकर अंग्रेजी में जज के सामने पहुंचा और हिंदू कानून को लेकर एक अवधारणा बन गई। अब इस पूरी अनुवाद प्रक्रिया में कितनी प्रामाणिकता रही, इस पर विचार होना चाहिए। आज कई समस्याओं को असल पारंपरिक ग्रंथों के दृष्टांतों से सुलझाया जा सकता है। इसमें सरकार और सुप्रीम कोर्ट मदद कर सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश

मौजूदा तंत्र में न तो सरकार की प्राथमिकता में ये विषय हैं और ना ही सुप्रीम कोर्ट के। आजाद भारत में संस्कृत के मूल शास्त्रों को डिकोड करने की कोशिश ही नहीं हुई। पश्चिम से जो कुछ आया है, हमने अपने ही शास्त्रों के बारे में उन्हीं के जरिए राय बना ली है। मेरा मानना यह है कि संस्कृत में लिखे गणित के शास्त्र को डिकोड वह व्यक्ति करे जो गणित जानता हो और संस्कृत भी समझता हो। इसी तरह विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के विषयों का भी किया जाना चाहिए। पश्चिम का आधुनिक विज्ञान तो इन तथ्यों को लेकर उलझता ही रहेगा और उलझाएगा। लेकिन अगर भारतीय नजरिए से काम हो तो भारतीय शास्त्र भारत को समझने-समझाने का अच्छा माध्यम बन सकते हैं। अपने शास्त्रों को छोड़िए, अंग्रेजी राज के दौरान वायसराय के साथ रजवाड़ों और रियासतों से क्या पत्राचार हुआ, वह भी अभी देश नहीं जानता है। अभी जाकर सयाजीराव गायकवाड़ ने बड़ौदा रियासत के साथ हुए पत्राचार के बक्से को खोला है। बहरहाल मुझे लगता है कि आधुनिक भारत के इक्के-दुक्के विद्वानों ने ही भारत को सही परिप्रेक्ष्य में समझा है। इस श्रेणी में महात्मा गांधी, दीनदयाल उपाध्याय और धर्मपाल को रख सकते हैं। धर्मपाल ने तो यूरोप और गांधी के साथ ही भारत को सही मायने में समझने की कोशिश की है।

जहां तक मेरे सपनों के भारत का सवाल है तो मेरी प्राथमिक सोच यह है कि नई भारतीय व्यवस्था पर विचार के लिए पहले तो नई संविधान सभा बननी चाहिए। वह संविधान सभा विचार करे कि भारतीय संस्कृति और आत्मा का शासन में प्रक्षेपण कैसे हो। अभी जो राज व्यवस्था है, उसे आप 1776 में स्थापित अंग्रेज राजव्यवस्था से लेकर 1935 तक के कानूनों के विकास की परिणति कह सकते हैं। भारत सरकार अधिनियम 1935 को एक तरह से संपूर्ण रूप में भारतीय संविधान में स्वीकार कर लिया गया। लेकिन यह संविधान कैसा है, इसका अंदाज इस बात से ही लगाया जा सकता है कि उसकी प्रस्तावना तक में संशोधन कर दिया गया। संविधान का 42वां संशोधन संसद के दो तिहाई बहुमत से बदल दिया गया। हालांकि उसमें बदलाव संविधान के 44वें और 45वें संशोधन के जरिए किया गया और उसका कुछ हिस्सा ही बदला गया, जैसे तानाशाही और मूल अधिकार। संविधान का जो मूल स्वीकार किया गया, उसे 122 बार तोड़-मरोड़ दिया गया। हर जागृत समाज का फर्ज है कि वह अपने लिए अपनी संस्कृति आधारित व्यवस्था को स्वीकार करे। अगर कोई शुरुआत होनी है तो यहां से करना चाहिए। मेरा मानना है कि मौजूदा दौर में अगर हालात बदलने हैं तो राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों में शामिल कर दिया जाय। हालात और व्यवस्था बदलते देर नहीं लगेगी। नीति निर्देशक तत्व का जो 48वां विषय है, उसे भी बदलना चाहिए और गोरक्षा को राष्ट्रीय स्तर का कानून बनाकर लागू करना चाहिए। सदियों तक गो, गांव और कृषि का अपना अंतर्संबंध रहा है वह फिर से बहाल होना चाहिए। राज्य के नीति निर्देशक तत्व संविधान की पच्चीकारी हैं। संविधान बन गया था। तब गांधीजी को गोवध पर रोक के लिए किसी ने पोस्टकार्ड लिखा था। फाइनल ड्राफ्ट में गोवध का जिक्र नहीं था। गांधीजी ने वह पोस्टकार्ड

राजेंद्र प्रसाद को दिया था। राजेंद्र बाबू ने शायद जून 1949 में संविधान सभा में यह बात उठाई। तब अलादि कृष्णा स्वामी ने एक संशोधन पेश किया लेकिन अंबेडकर ने उसे स्वीकार नहीं किया। दरअसल अंबेडकर की अवधारणा में गांव सच नहीं था लेकिन बाद में उन्होंने वह संशोधन स्वीकार किया और नीति निर्देशक तत्व की बात निकली जिसे संविधान में स्वीकार किया गया। इससे संविधान में पैबंद लगाने की हालत दिखती है। बहरहाल राजेंद्र बाबू गांधीजी की भावना को समझते थे इसलिए अंतरिम सरकार के खाद्य मंत्री के तौर पर उन्होंने सर दातार सिंह की समिति बनाई थी। जिसने गोवध पर रोक लगाने की सिफारिश की थी।

मेरी समझ से समानता, स्वतंत्रता, समता सिर्फ लोकतंत्र ही नहीं, भारत के जीवन मूल्य हैं। वयस्क मतदान का अधिकार अपने नागरिकों को देने में अमेरिका जैसे देश को 150 साल लगे। लेकिन हमने शुरुआत से ही अपने नागरिकों को यह अधिकार दिया। हो यह रहा है कि हम ब्रिटेन और यूरोप के ही चश्मे से भारत को देखते हैं। लेकिन मेरा मानना है कि हमें ब्रिटेन और यूरोप के चश्मे से भारत को देखना-परखना बंद कर देना चाहिए। हमारे स्वभाव में ही लोकतंत्र है। यह सदियों से बार-बार साबित हुआ है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमने उस स्वभाव के अनुरूप अपनी व्यवस्था बनाने या बदलने की कोशिश नहीं की।

रही बात यह कि आजाद भारत में अब किन-किन विषयों पर फोकस करने की जरूरत है तो इस पर विचार करने से पहले एक बार फिर यह मान लेना चाहिए कि हमने बदलाव लाते वक्त कभी-भी अपने मूल्यों का ध्यान नहीं रखा। 1993 में नरसिंह राव सरकार ने संविधान का 73वां और 74वां संशोधन पेश किया। जिसके तहत स्थानीय निकाय व्यवस्था बनाने का संवैधानिक इंतजाम किया गया। मेरा मानना है कि ये संविधान संशोधन अगर अपनी ग्राम व्यवस्था का अध्ययन करके लाए गए होते तो बेहतर होता। इन संशोधनों में स्थानीय निकायों के जिम्मे 29 विषयों को रखा गया है। लेकिन जिला अधिकारी या डीएम को पूरे अधिकार दे दिए गए। इस व्यवस्था को सत्ता का विकेंद्रण कहा जाता है। लेकिन हकीकत में ऐसा नहीं है। रही बात शिक्षण व्यवस्था की तो अगर हम अपनी विश्व स्तरीय शिक्षण संस्थाएं बना सकें तो कई चीजें वक्त के साथ अपने-आप भारतीय मूल्यों और आत्मा के अनुरूप बदल जाएंगी। इसका असर यह होगा कि बदलाव आएगा। अभी लोग अमेरिका या ब्रिटेन पढ़ने जा रहे हैं, उसके उलट होगा, लोग हमारे यहां आने लगेंगे। वैसे आज की अपनी शिक्षा व्यवस्था दुनिया के ताकतवर देशों की शिक्षा व्यवस्था की नकल भर है। हमारे लिए अभी जरूरी है कि अपनी हीनता ग्रंथि से कैसे निकलें। यह काम अपनी खालिस शिक्षा व्यवस्था से पूरा किया जा सकता है। अगर विश्वस्तरीय शिक्षण संस्थाएं हम अपनी बना सकें तो बहुत बदलाव आ जाएगा। यहीं पर याद आता है आधुनिक नालंदा और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा। कई साल तक कुछ लोग दिल्ली से इन विश्वविद्यालयों को चलाते रहे। मेरा मानना है कि अपनी शिक्षण व्यवस्था बनाने के लिए मालवीयजी की दृष्टि को लागू करना बेहतर होगा। मदन मोहन मालवीय ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय बनाया जिसमें उन्होंने आधुनिक और भारतीय शिक्षा

व्यवस्था में समन्वय का सिद्धांत रखा। मुझे लगता है कि मौजूदा केंद्र सरकार उसी दिशा की तरफ बढ़ रही है। यह बात और है कि तंत्र साथ नहीं दे रहा है। इसी कड़ी में दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के योग संस्थान से समझौते को रखा जा सकता है। एक अत्याधुनिक और एक सांस्कृतिक ज्ञान केंद्र के बीच ऐसा समझौता होना बड़ी बात है। आयुर्वेद और योग हमारी बड़ी ताकत हैं। मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दुनिया में इस ताकत को स्वीकार कराया है। मुझे लगता है कि आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ सुश्रुत संहिता का जो भाष्य हो सकता है या होना चाहिए, उसमें अभी वक्त लगेगा। यह काम जर्मनी का एक संस्थान कर रहा है। यहां सवाल यह है कि यह काम हम क्यों नहीं कर सकते। जो विज्ञान और संस्कृत जानता हो, जो मेडिकल और संस्कृत जानता हो, वह ऐसे ज्ञान अनुशासनों का आधुनिक संदर्भ में बेहतर भाष्य कर सकता है। मेरा मानना है कि अगर हम सिर्फ 20 ऐसे स्कॉलर पैदा कर दें तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था आमूल-चूल बदल जाएगी। मुझे लगता है कि यह महत्वपूर्ण कार्य केंद्र कर सकता है। मौजूदा प्रधानमंत्री के पास इसकी दृष्टि है और उनसे ऐसे काम की कामयाबी की उम्मीद की जा सकती है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष हैं। यह आलेख उनसे बातचीत के आधार पर युवा पत्रकार उमेश चतुर्वेदी ने लिखा है)

●

राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य

दादूराम शर्मा

भारतीय अवधारणा में राजा शासक या स्वामी नहीं जनता का विनम्र सेवक मात्र है। 'लोकरंजन' के कारण वह राजा कहलाता है- 'राजा प्रकृतिरंजनात्'। रंजन के तीन अर्थ हैं- शिक्षण, रक्षण और पोषण। राजा शिक्षा की समुचित व्यवस्था करके जनता (प्रजा) को योग्य और संस्कारित करके उसमें मानवीय गुणों का विकास करता था। सेना और प्रशासन की समुचित व्यवस्था करके बाह्य आक्रमणकारियों और चोर-लुटेरे आदि आंतरिक शत्रुओं से जनता की रक्षा करते हुए राज्य में शांति-व्यवस्था स्थापित करता था और उसके लिए आजीविका के संसाधन एवं निर्बाध अवसर उपलब्ध कराता था इसलिए राजा को प्रजा का वास्तविक पिता माना गया है-

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि। स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥' (कालिदास रघुवंश महाकाव्य) 'अथर्ववेद' ने उसे जितेंद्रिय तथा शास्त्र और शस्त्र में पारंगत, तपस्वी एवं लोकरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है- 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति'। भारतीय राजनीति के प्रखर विचारक चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजनीतिक चिंतन का नवनीत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि जनता (प्रजा) के उत्थान (सुख-समृद्धि) और कल्याण में ही राजा का उत्थान और कल्याण निहित है। उसका व्यक्तिगत कुछ भी नहीं। जो कुछ है, प्रजा का है।

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्
नात्मप्रियं सुखं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

वह लोक कल्याण के लिए जनता से कर लेता था, 'प्रजानामेव भूत्यर्थंस ताभ्यो बलिमग्रहीत्। श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण और महाभारत ने पृथु को प्रथम लोकरंजक राजा के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसने-

1. जगह-जगह भूमि का समतलीकरण कराकर उसे कृषि योग्य बनाया।
2. विभिन्न खाद्यान्नों का दोहन किया और कृषि कर्म प्रारंभ कराया। उन्होंने पृथ्वी को उर्वरा और शस्य-शालिनी बनाकर प्राण प्रदान किए इसीलिए पृथ्वी को पृथु की पुत्री कहा जाता है।[1]

3. उन्होंने जगह-जगह जल संग्रहण क्षेत्र भी बनवाए ताकि वर्षा का जल व्यर्थ न बह जाए और भूमि में अवशोषित होकर भूमिगत जल का पर्याप्त भंडारण होता रहे जिससे कुएं बावड़ी आदि के जल स्त्रोत समाप्त न हो पाएं।
4. उन्होंने कूपों, वापियों और जलाशयों का खनन और सेतुओं (बांधों) का निर्माण कराकर कृषि हेतु सिंचाई की समुचित व्यवस्था करके वर्षा पर जनता की निर्भरता को समाप्त कर दिया था और धरती को 'अकृष्टपच्या' (बिना जोते फसलें पैदा करने वाली) के साथ-साथ अकृष्टपच्या (सरलता से अन्न उपजाने वाली) अदेवमातृका (सिंचाई की व्यवस्था के कारण जो वर्षा पर निर्भर न हो) एवं शस्यशालिनी (फसलों से हरी-भरी) बना दिया था।
5. गुप्तचरों द्वारा वह राज्य की बाहरी सीमाओं, राज कर्मचारियों और प्रजाजनों की गतिविधियों पर पैनी नजर रखता था।
6. उसके राज्य में अपराधी दंड पाने से बच नहीं पाते थे और निरपराध कभी दंडित नहीं होते थे। न्याय व्यवस्था निष्पक्ष थी।

महाभारत में मानवीय विकास के उषाकाल में ऐसे राजारहित शासक-विहीन आदर्श समाज की परिकल्पना की गई है, जिसमें न तो राज्य जैसी कोई व्यवस्था थी, न कोई राजा या शासक था, न कोई दंड विधान था, न कोई दंडाधिकारी क्योंकि उस समय सर्वत्र धर्म का स्वतः संचालित शासन था, प्रजा धर्मानुशासित थी और एक दूसरे की सुरक्षा और संरक्षा में स्वयमेव प्रवृत्त थी क्योंकि तब उसके मन में न तो महत्वाकांक्षा थी न अधिकार-लिप्सा। धीरे-धीरे एकरसता से ऊबे हुए जनों के मन में सर्वप्रथम मोह- 'अयं निजः परो वेति' का क्षुद्र मनोविकार जागृत हुआ फिर मोह ने लोभ (अधिकार-लिप्सा) का रूप ले लिया और लोभ काम (विषयैषणा, महत्वाकांक्षा, अनंत लालसाओं) में परिणत हो गया। सर्वत्र छीना-झपटी मच गई।[2] बेन का धर्म (मानवता) विरोध शासन ऐसा ही अराजक (सुव्यवस्थाविहीन) हो गया था। तब समाज के व्यवस्थापक ऋषियों ने मंत्रपूत कुशओं से अभिचार क्रिया द्वारा उसका काम-तमाम करके और उसकी दाहिनी भुजा का मंथन करके पृथु को उत्पन्न किया।

ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में समष्टि (मानव समाज) की पुरुष रूप में परिकल्पना की गई है। ब्राह्मणों (चिंतक, विचारक, व्यवस्थापक, विधायक, ऋषि-मुनियों) को उसका मुख माना गया है। उसे आंतरिक और बाह्य शत्रुओं से बचाने वाले 'क्षत्रिय' (राजन्य) को भुजा कहा गया। जीविकोपार्जन और भरण-पोषण के व्यवस्थापक वैश्य जंघा या पेट एवं समाज को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर ले जाने वाले सतत् श्रमरत शूद्र चरण कहलाए।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥

व्यवस्थापकों द्वारा बेन के दक्षिण बाहु के मंथन का प्रतीकार्थ है- समष्टि को संरक्षित और सुरक्षित रखने योग्य जनों में से योग्यतम जन का संधान करके उसे राज्य-संचालन का सर्वोपरि

उत्तरादायित्व सौंपना- 'बाहू राजन्यः कृतः। भारतीय संस्कृति के अनन्य उद्‌गाता विश्वकवि कालिदास के शब्दों में- समस्त आपदा- विपदाओं और घात-प्रतिघातों से समष्टि का रक्षक होने के कारण ही क्षत्रिय (राजन्य) विश्व में विख्यात है-

क्षतात् किलत्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ़ः। (रघुवंश) 'राज्य' उसके लिए भोग की भूमि नहीं, त्याग की भूमा है, कर्तव्य का विस्तृत क्षेत्र है। यश को वह प्राणों से भी मूल्यवान और यशःशरीर को अमर मानता है- राज्येन किंतद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरूपक्रोशमलीमसैवा। ऋषियों ने ऐसे ही क्षत्रिय-श्रेष्ठ पृथु को मूर्धाभिषिक्त करके 'राजत्व' का महनीय उत्तराधिकार सौंपा था। जनाकांक्षाओं पर खरा उतरने और लोकरंजक होने के कारण वह 'राजा' कहलाया- 'राजा' प्रकृतिरंजनात्। चिंतक चाणक्य ने भी समष्टि के योग-क्षेम का वहन करने वाले राजा को तपस्वी के रूप में मानकर उसे 'राजर्षि' की संज्ञा दी है और उसके लिए निश्चित 'आचारसंहिता (कोड ऑफ कंडक्ट) प्रस्तुत की है- (1) वह काम-क्रोधादि षड्‌विकारों को त्यागकर जितेन्द्रिय बने। (2) ज्ञान वृद्धों के संयोग से बुद्धि का विकास करे। (3) गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र के सूक्ष्म वृत्तों से अवगत होता रहे। (4) राष्ट्र को समृद्ध बनाने वाले उद्योग-धंधों का विस्तार करे। (5) शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा जनता को शिक्षित और संस्कारित करे। (6) योग्यजनों को पुरस्कारादि से सम्मानित और प्रोत्साहित करे। (7) सचिवों और अमात्यों की मंत्रणा लेकर ही कार्य करें।[3]

रघुवंश शिरोमणि राम को पाकर तो भारत का सर्वश्रेष्ठ मानव और आदर्श राजा का संधान ही पूर्ण हो गया। या यों कहें कि उसने नर राम के रूप में जैसे नारायण को ही पा लिया। वे नारायण के अवतार माने गए या उन्हें देखकर ही हमने परिकल्पना की कि यदि ब्रह्मसाकार रूप ले ले तो हमारा राम ही होगा, उससे भिन्न नहीं। राम भारत की दीर्घकालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन की चिरंतन, मूर्तिमान, जीवंत, देदीप्यमान, सस्फूर्त और प्रेरक समग्रता है।

महर्षि वाल्मीकि ने राम के बाह्य और आभ्यंतर व्यक्तित्व की बड़ी ही आकर्षक और भव्य झांकी प्रस्तुत की है- राम के उन्नत ललाट, सुंदर ग्रीवा, विशाल नेत्र, पीनवक्ष (चौड़ी छाती) आजानुलंबित भुजाएं और मनमोहक चाल थी। वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत थे। सागर की तरह गंभीर, हिमालय के समान धैर्यवान, विष्णु के समान बलवान, चंद्र के समान प्रियदर्शन, क्रोध में कालाग्नि के समान, किंतु क्षमाशीलता और सहिष्णुता में पृथ्वी के समान थे और धर्म के तो वे साक्षात् रूप थे- रामो विग्रवान् धर्मः।[4] उनके शस्त्रग्रहण करने पर दीन-दुखियों का करुण क्रंदन नहीं सुनाई देता था। उनके राज्य में सर्वत्र सुख-समृद्धि, सुकाल, आरोग्य, मुक्तातंकता, शांति और व्यवस्था थी। समाज दैविक, भौतिक और मानवी आपदाओं से मुक्त था।[5] राम के राज्य में उन्हीं की तरह सभी एकपत्नीव्रती थे। वे गुप्तचरों द्वारा राजकर्मचारियों की गतिविधियों, प्रजाननों की दशा, दिशा, विचारों और प्रशासन के अपेक्षाओं का नियमित विवरण प्राप्त किया करते थे। गुप्तचरों से ही उन्हें साम्राज्ञी सीता-विषयक प्रवाद की जानकारी मिली थी।

तुलसी के राम

तुलसी के राम महामानव पहले हैं, महान राजा बाद में। वाल्मीकि के राम की दृष्टि में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' है तो तुलसी के राम अपनी जन्मभूमि अयोध्या को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ मानते हैं। और उस राज्य के नागरिक तो उन्हें सर्वाधिक प्रिय है।[7] राम सर्वथा निरहंकार और विनम्र हैं। त्रिलोकजयी रावण को जीतने पर भी वीरता का अहंकार अथवा विजयमद उनका स्पर्श भी नहीं कर पाता क्योंकि विवेक को उन्होंने विप्रपादाब्जचिह्न (भृगु का चरण चिह्न) जो उनकी सहिष्णुता, विनम्रता और क्षमाशीलता का परिचायक है, के रूप में स्थायी रूप से हृदय में जो धारण कर रखा है। अविवेक ही तो अहंकार का जनक है। जो ज्ञानोपासक होगा वह अहंकारी कैसे हो सकता है? जहां विनम्रता होगी वहां अहंकार का प्रवेश कहां? विजयाभियान करके लंका से लौटे राम अपने ज्ञान से उत्स गुरुजनों से किस तरह मिलते हैं देखिए- उन्होंने विजय के उपकरणों को धरती पर रख दिया और दौड़कर गुरु वसिष्ठ के चरण पकड़ लिए 'धाई धरे गुरु चरन सरोरूह' और अपनी विजय और सकुशल वापसी का कारण गुरुकृपा को बतलाया।

राम सहज हैं अतः सहृदय हैं, उदाराशय और विशालहृदय भी हैं। वे जिस स्नेह से भरत से मिलते हैं उसी स्नेह से अयोध्या के साधारणजन से भी मिलते हैं। विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जो भी उनसे मिलता है, वह उन्हें अपना ही समझता है।

राम का हृदय अपने दुःखों को झेलने के लिए जहां वज्र से भी कठोर है वहां दूसरों के दुःख पर उनका अत्यधिक संवेदनशील हृदय कुसुम से भी कोमल हो जाता है-

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चितखगेश रामकर समुझि परइकहु काहि॥

भारतीय संस्कृति में गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ आश्रम का विधान है किंतु राम ने अपने जीवन में इस क्रम को उलट दिया। उन्होंने पहले वानप्रस्थ को स्वीकार किया। क्यों? इसलिए कि जिन पर शासन करना है उन साधारण जनों से उन दीन-हीन विपन्नजनों से और उनके अभावग्रस्त जीवन से वे पूरी तरह परिचित हो लें।

राजकीय सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े राजपुत्र के रूप में वे आम आदमी के अभावों और दुःख-दर्दों को कैसे समझ सकते थे? भूमि, जन, संस्कृति और प्रभुसत्ता का समाहार राष्ट्र कहलाता है। वानप्रस्थी राम ने भूमि को मुक्तांक किया, जिसका शुभारंभ वे राजकुमार के रूप में विश्वामित्र के निर्देशन में ताड़का-मारीच-सुबाहु जैसे समाजोत्पीड़कों के दलन के साथ ही कर चुके थे। राज्य का त्याग और वनवास को अंगीकार करके उन्होंने भोग से त्याग की और सत्ता से जन-सेवा की सर्वोपरिता सिद्ध कर दी। उन्होंने निषादों को, कोल-किरात, भील आदि जनजातियों को सभ्य बनाया संस्कार दिए, संगठित किया। अर्द्धसभ्य वानर जाति को संगठित और प्रशिक्षित करके उनकी सहायता से सभ्यता, शक्ति और सत्ता के शीर्ष पर प्रतिष्ठित आतंकी निरंकुश रावण का समूल उन्मूलन करके लोकतंत्रात्मक 'रामराज्य' की आधारशिला रखी।

रामराज्य

विश्व के राजनीतिक इतिहास में 'रामराज्य' पूर्णतः लोककल्याणकारी आदर्श राज्य के रूप में प्रतिष्ठित है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में उसकी बड़ी ही भव्य झांकी प्रस्तुत की है। राजतंत्र होते हुए भी रामराज्य वास्तव में लोकतंत्र था क्योंकि स्वयं राजा राम, उनके सभी राज्याधिकारी और राजकर्मचारी दिन-रात जनता के योग-क्षेम में लगे रहने वाले सच्चे लोकसेवक थे। जनता भी 'यथाराजा तथा प्रजाः' उक्ति को चरितार्थ करती हुई आत्मानुशासित, चरित्रवान और कर्तव्यपरायण थी। राम के परिवार की तरह जनों में भी कर्तव्यपालन की प्रेरक प्रतिस्पर्धा तो थी किंतु अधिकारों का त्रासद द्वंद्व नहीं।

विषमता- मुक्त मैत्री-भावपूर्ण समाज

राम ने अपने वनवास काल में ही निषादों को, कोल-किरात-भीलों को गले लगाकर, गीध, जटायु की पितृवत् अंतेष्टि करके, अर्ध सभ्य वानर जाति से मित्रता करके और उनकी सहायता से रावण की आततायी महाशक्ति का उन्मूलन करके राजा-रंक, धनी-गरीब, पंडित-मूर्ख, ऊंच-नीच, सबल-निर्बल आदि की युगों से चली आ रही सामाजिक विषमता को मिटा डाला था। राजा बनने से पहले ही उन्होंने अपने त्याग, कर्तव्यपालन, तप, चरित्र और लोक संग्रह द्वारा जन-जन के हृदय पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। राम का समाज शक्ति-पूजक नहीं, चरित्रोपासक समाज था। जिस समाज में सामाजिक विषमता नहीं होगी, अधिकारों का द्वंद्व नहीं होगा, वहां बैर-विरोध कैसे पनप सकता है-

'वयरू न कर काहू सन कोई
वहां तो सब नर करहिं परस्पर प्रीती'

वर्णाश्रमधर्मपरिपालक समाज

भारत की प्राचीन वर्ण व्यवस्था जन्म या जाति पर नहीं, समाज में कर्म और श्रम के समुचित विभाजन पर आधारित थी। व्यवस्थापन (नीति निर्धारण एवं न्याय व्यवस्था) एवं शिक्षण का दायित्व संभालने वाले ब्राह्मण, समाज का रक्षण एवं शासन-संचालन करने वाले क्षत्रिय, वस्त्र-अन्नादि जीवनोपयोगी वस्तुओं का समाज में वितरण करने वाले वैश्य तथा उत्पादन और विविध निर्माण कार्यों में सतत संलग्न श्रमजीवी वर्ग शूद्र कहलाता था। सभी का समाज में समुचित सम्मान था। मानव के व्यक्तित्व-निर्माण और अवस्था-परिवर्तन के साथ-साथ उसके उत्तरदायित्वों के परिवर्तन पर आधारित थी आश्रम व्यवस्था।

ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्म (ज्ञान) की साधना करके व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता था। गृहस्थ आश्रम में विवाह करके पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह किया जाता था। वानप्रस्थ में व्यक्ति और परिवार की सीमा से निकलकर विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाता था और आत्मोद्धार के लिए था सन्यास आश्रम। रामराज्य में सभी वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। सभी को जीविकोपार्जन के निर्बाध अवसर उपलब्ध थे। किसी को दूसरे के द्वारा जीविका छिनने या शोषण किए जाने का शोक अथवा धन, जीविका या जीवन छीने जाने

का भय नहीं था और युक्ताहार- विहार के कारण सभी नागरिक निरोग थे।[9]

बहुपत्नी प्रथा की समाप्ति

राम ने बहुपत्नी प्रथा के कारण अपने पिता के करुण अवसान और पारिवारिक विघटन के संकट को झेला था। अतः उन्होंने एक पत्नीव्रत ग्रहण किया और सभी प्रजाजनों ने उनके आदर्श का अनुसरण किया, तब पत्नियों का भी पतिव्रता और पतिपरायणा होना स्वाभाविक था।

एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥ -7/21/4

पारिवारिक सौमनस्य और संतुलन

रामराज्य में गुरुजनों का समुचित सम्मान और सेवा होती है साम्राज्ञी सीता भी विनम्र भाव से अपनी सासुओं की सेवा करती हैं और उनके स्नेहाशीषों से अभिसिंचित होती हैं। राम और उनके भाइयों की परस्पर प्रीति तो देखते ही बनती है। रामराज्य में समाज में सर्वत्र पारिवारिक स्नेह और सोमनस्य की निर्मलधारा प्रवाहित हो रही थी। सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राम और उनके भाइयों का परिवार आज के 'हम दो हमारे दो' की तर्ज पर संतुलित और आदर्श परिवार था 'दुई सुत सुंदर सीता जाए' तथा 'दुइ दुई सुत सब भ्रातन्ह केरे, निश्चय ही, संतुलित परिवार के इस आदर्श को प्रजाजनों ने भी आत्मसात् किया होगा।

शिक्षा व्यवस्था

'राम राज्य' में शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। फलतः कोई अबुध (मूर्ख, अपढ़, बुद्धिहीन) नहीं था। सभी बुद्धिमान, गुणवान और ज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान को अपने आचरण में उतार लिया था इसलिए वे दंभ, कपट और पाखंड से मुक्त थे, कृतज्ञ, उदार और परोपकारी थे।[10]

चिकित्सा व्यवस्था

रामराज्य में चिकित्सा की समुचित व्यवस्था थी, इसलिए किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। स्त्री-पुरुष, हृष्ट-पुष्ट, सुंदर और सुदर्शन थे।[11] उनकी मृत्यु स्वाभाविक रूप से होती थी, वृद्धावस्था-जन्य दौर्बल्य के कारण नहीं। वास्तव में रामराज्य के नागरिक सौ वर्ष का कर्ममय जीवन (पूर्णायु) जीकर मृत्यु का वरण करते थे। नारियों के प्रसव की भी समुचित व्यवस्था थी। न तो उन्हें प्रसव पीड़ा होती थी और न प्रसव के कारण उनकी असमय मृत्यु 'अरोगप्रसवानार्यो' (वा.रा.7/41/19)

भेदभाव रहित शासन और आतंकमुक्त सदाचारी समाज

रामराज्य में भाई-भतीजावाद नहीं था। प्रशासन स्वच्छ, निष्पक्ष और भेदभाव रहित था। समग्र आर्यावर्त से ताड़का-मारीच-सुबाहु विराध, कबन्ध, सेनासहित खरदूषणादि का समूलोन्मूलन करके राम ने पहले ही समाज को आतंकमुक्त कर दिया था। राज्यारोहण के बाद राम के लोकातिशायी चारित्रिक प्रभाव के कारण समाज में विद्यमान आततायियों-आग लगाने वालों,[12] विष देने वालों, शस्त्र से हत्या करने वालों, लुटेरों, परस्त्री का अपहरण करने वालों का या तो हृदय परिवर्तन हो गया था या राजदंड के भय से उन्होंने दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग कर दिया

था। अतः वहां जब अपराधी ही नहीं थे तो दंड किसे दिया जाता। वृद्ध भी मृत्युपर्यंत रोगमुक्त, पुष्ट और बलिष्ठ रहते थे अतः उन्हें दंड की- डंडे की, लाठी टेककर चलने की जरूरत नहीं थी। दंड केवल यतियों-संन्यासियों के पास होता था। राजनीति में शत्रुओं पर विजय पाने के लिए साम, दाम, दंड, भेद ये चार उपाय किए जाते हैं। राम राज्य में कोई शत्रु ही नहीं था, तो ये उपाय वहां बेमानी हो गए थे। भेद यदि कहीं था तो वह नर्तकों के नृत्यों के सुर-ताल में रह गया था और 'जीतो' केवल मन को जीतने के लिए ही कहा जाता था-

दंड जतिन्ह कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस रामचंद्र के राज ॥ - 6/22

त्रितापमुक्त समृद्ध समाज

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं व्यापा ॥ -7/20/1

रामराज्य के नागरिक युक्ताहार-विहार और समुचित चिकित्सा व्यवस्था के कारण दैहिक ताप से मुक्त थे। अग्नि, प्रकोप, आंधी-तूफान आदि वायु प्रकोप, अतिवृष्टि-जन्य, बाढ़ अनावृष्टिजन्य सूखा और अकाल, तडित्पात, महामारी आदि वैदिक ताप भी नहीं थे। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे अतः समुद्री तूफानों से जन-धन की हानि का प्रश्न ही नहीं उठता था। भूतों- (हिंसक पशुओं, नीलगायों, टिड्डियों आदि) से धन-धान्य और जीवन की हानि नहीं होती थी। सूर्य भी आवश्यकतानुसार तपता था। मेघ भी यथासमय यथानुकूल वर्षा करते थे- मांगे वारिद देहिं जल रामचंद्र के राज। खेतों में सदैव फसलें लहलहाती रहती थीं- 'सस संपन्न सदा रह धरनी' अर्थात सिंचाई की समुचित व्यवस्था होने के कारण खेत कभी खाली नहीं रहते थे, एक फसल कटती थी तो तुरंत दूसरी बो दी जाती थी। समाज पूर्णतः धन-धान्य संपन्न था।

समस्त वन अभयारण्य थे

रामराज्य में वृक्ष-वन सदैव फूलते-फलते रहते थे जिनसे प्रचुर वनोपज प्राप्त होती थी, मनमाना मधु मिलता था, गोचर भूमि की प्रचुरता होने से दूध की नदियां बहती थीं राम-राज्य में आखेट वर्जित था अतः वन्यप्राणी वनों में निर्भय और सानन्द विचरण करते थे। राम के ऋषि व्यक्तित्व के प्रबल प्रभाव से पशु-पक्षियों में भी जन्मजात बैर-भाव को मिटा दिया था और परस्पर प्रेमभाव बढ़ा दिया था। जिससे हाथी और सिंह भी एक साथ रह रहे थे सभी वन अभयारण्य ही नहीं, तपोवन में भी परिणत हो गए थे जहां अहिंसा, निर्वैरता और मैत्री का सर्वत्र साम्राज्य था।[13] रामराज्य पर्यावरण के संरक्षण और समृद्धि का अन्यतम उदाहरण है।

राजा राम का सार्वजनिक अभिभाषण

राज्यारोहण के उपरांत अपने प्रथम सार्वजनिक अभिभाषण में राम ने राजा, शासन और जनता सभी के लिए एक 'आदर्श' आचरण संहिता प्रस्तुत की है, जिसमें राजाज्ञा नहीं, आत्मानुशासन के प्रयोग की पूरी छूट दी गई है और शासन और उनकी नीतियों से असहमति व्यक्त करने की स्वतंत्रता भी। इससे सिद्ध होता है कि 'रामराज्य' में अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी।[14]

वास्तव में रामराज्य न्यूनतम राजकीय हस्तक्षेप वाला आत्मानुशासित और सदाचारी नागरिकों का स्वतः संचालित लोकतंत्र था इसलिए राष्ट्रपिता ने भारतीय लोकतंत्र को रामराज्य में परिणत करने की व्यावहारिक योजना बनाई थी। 'ग्राम स्वराज्य' उसी का प्रथम सोपान था। काश! करालकाल बापू के राम-राज्य के दिव्य स्वप्न को साकार हो जाने देता!

संदर्भ :

1. प्राणप्रदाता स पृथुः यस्माद् भूमेरभूत पिता। ततस्तु पृथिवीं संज्ञामवापाखिलधारिणी॥ श्रीमद्भागवत् 1/13/89
2. न वै राज्य न राजासीन्न च दंडो न च दांडिक। धर्मेणैव प्रजाः सर्वारक्षन्तिस्मपरस्परम्॥ पाल्यमानास्तथान्योन्यं नरा धर्मेण भारत। खेदं परमुमाजग्मुस्तान् मोह आविशत॥ आदि महाभारत शांतिपर्व 59/14/15
3. अरिषड्वर्गत्यागेनेंद्रियजयं कुर्वीत्। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेणचक्षुरूत्थानेन योग-क्षेम-साधनम्।
   विनयंविद्योपदेशेन, लोप्रियत्वमर्थसंयोगेन। धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। कुर्वीत् सचिवांस्तस्मात् तेषां श्रृणुयान्मतम्। कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रकरण 3 अध्याय 6 राजर्षिवृत्तम्।
4. महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिन्दमः। आजानुबाहुः सुशिराः सुलालाटः सुविक्रमः॥ समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्। पीनवक्षाः विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ 1/1/1-14
   रक्षिता जीवलोकस्यधर्मस्य च परिरक्षिता। वेदवेदांग-तत्वज्ञो धनुर्वेदेच निष्ठितः॥ वही 1/1/12-14
   कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः। धनदेन समस्त्यागे सत्येधर्म इवापरः॥ वही 1/1/17-19
5. पृहष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः। निराभयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।
   न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्तिजन्तवः। न वातजं भयं किंचिन्नापिज्वर- कृतं तथा।
   न क्षुद्भयंतत्र न तस्कर भयं तथा। नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च॥ वही 1/1/90-93
6. एक-पत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः। स्वधर्म गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥ श्रीमद्भागवत् 9/10/55
   न सीतां परां भार्या वव्रे स रघुनंदनः। यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थ जानकी कांचनाभवत्॥ वा. रा. 7/08
7. जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जगुजाना॥
   अवधपुरी समप्रिय नहिं सोऊ।- रामचरितमानस वही 7/3/2

अतिप्रिय मोहिं इहां के वासी। वही 7/3/4

8. दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
   कर जोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता॥ वही 5/19/3-4
9. वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
   चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय शोक न रोग। 7/20 तथा 'सब सुंदर सब विरूज सरीरा' 7/20/3
10. न कोउ अबुध न लच्छन हीना। 7/20/3
    सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
    सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥ 7/20/4
11. अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब विरूज सरीरा॥ राम.मा. 7/20/3
12. 'शुक्रनीति' में छः आततायी बतलाये गए हैं- क. अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रोन्मत्तो धनापहः। क्षेत्र-दार-हरश्चैतान् षड् विद्यादाततायिनः॥ ख. तुलसी के शब्दों में आततायी और निशाचर ये हैं- पर द्रोही परदाररत परधन पर अपवाद। ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद॥ मानस 7/39/9
13. देखिए रामचरितमानस 7/22/1,2,3
14. देखिए रामचरितमानस 7/42/2 से 7/46 तक

(लेखक सुपरिचित साहित्यकार हैं)

●

राष्ट्र चिति और संस्कृति

प्रमोद कुमार दुबे

राष्ट्र चिति की सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही राष्ट्र की समग्र सांस्कृतिक चेतना कही जाती है। काल के मानदंड पर राष्ट्र चिति की सृजनात्मक अभिव्यक्ति से शाश्वत, युगीन और क्षणिक तीन संस्कृति श्रेणियां निर्मित होती हैं। ये संस्कृति भेद प्राणिक स्तर की भिन्नता अर्थात रुचि भिन्नता के कारण बनते हैं, परंतु इनका मूल उद्‌गम एकात्म है।

चूंकि जीव का आश्रय प्राण है, प्राण का आश्रय देह और देह आवश्यकताओं के अधीन है, दैहिक आवश्यकताओं पर वाणिज्य तंत्र का अधिकार हो जाने से प्राणी शासित और शोषित होने लगता है। इस दृष्टि से स्वतंत्रता और स्वराज के चिंतकों ने राज्य और वाणिज्य की व्यवस्थाओं पर गहराई से विचार किया। इसके समानांतर हमें शाश्वत संस्कृति के आलोक में राज्य और वाणिज्य की शक्तियों से सृजित होनेवाली युगीन और क्षणिक संस्कृति भेदों पर विचार करना चाहिए।

संस्कृति की शाश्वत धारा का निर्माण बाल्मीकि, व्यास, नानक, कबीर, सूर, तुलसी, निराला, रवीन्द्र, भारती, जे. शंकर कुरूप जैसे महाकवियों, मनीषी-चिंतकों और आध्यात्मिक पुरुषों से होता है। यह सत्वगुणी भावधारा है। इन व्यक्तियों की प्राणशक्ति सांसारिक सुख-सुविधाओं के अधीन होकर व्यय नहीं होती, अपितु ये सत्वधर्मी ध्रुवास्मृति में रहते हुए अत्यल्प साधनों से राष्ट्र की चिति को शाश्वत काल के स्तर पर पोषित करते हैं। इनके संकल्प और सृजन से लोकमानस में उच्चतम जीवनादर्शों की स्थापना होती है। इन पर बाह्य जगत का शासन नहीं चल सकता, किसी राजनीति या आर्थिक व्यवस्था को इन्हीं की अनुरूपता स्वीकार करनी पड़ती है। सर्वोचित राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाएं शाश्वत का अनुपालन करती हैं, तभी वे सार्थक हो पाती हैं। अतः युगीन (समकालीन) संस्कृति और क्षणिक संस्कृति (उपभोक्ता या अपसंस्कृति) को भी आत्मघात से बचने के लिए शाश्वत संस्कृति का अनुसरण करना उचित होता है। तभी वह राष्ट्र चिति की अभिव्यक्ति बनकर लोकग्राह्य हो सकती हैं और मंगलकारी बन सकती हैं।

राष्ट्र चिति से विचलित साहित्य-संस्कृति अथवा कोई अन्य रचना भी लोकमानस से उपेक्षित हो जाती है। नब्बे के दशक में इसका उदाहरण मुझे काशी में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ की एक संगोष्ठी में प्राप्त हुआ था। वैचारिक विरोध होने के बावजूद मैं इस संगोष्ठी

में सामान्य श्रोता की हैसियत से पहुंचा था। वहां एक मार्क्स मार्गी विद्वान प्राध्यापक बोल रहे थे। वह प्राध्यापक हिंदी के नहीं, अंग्रेजी के थे और केरल के निवासी थे। वह बतला रहे थे कि जब केरल में कम्युनिस्ट सरकार बनी, उसने विचार किया कि प्रदेश के हर घर में कम्युनिस्ट विचार के साहित्य पर्याप्त मात्रा में पहुंचा देना चाहिए। यह काम किया गया। लेकिन परिणाम उलटा हुआ। मनोनुकूल साहित्य नहीं मिलने के कारण लोगों ने सस्ते मनोरंजन की फिल्मी पत्रिकाएं पढ़नी शुरू कर दी, इन्हीं दिनों मनोरमा नाम की फिल्मी पत्रिका का प्रसार बढ़ गया और मार्क्स मार्गी साहित्य के प्रति तीव्रता से अरुचि बढ़ती चली गई। प्राध्यापक इस घटना को सुनाकर कम्युनिस्ट विचार से प्रेरित साहित्यकारों को यह बताना चाहते थे कि उन्हें नरम रुख अपनाना चाहिए ताकि पाठक हाथ से निकल न भागें। मुझे इस प्रसंग को सुनकर मन ही मन हंसी आई। मार्क्स मार्गी साहित्य की विफल पठनीयता पर विचार करने की कोशिश मैं क्यों करता। परंतु यह विषय करने योग्य था।

वस्तुतः राष्ट्र चिति से विचलित साहित्य कभी भी स्थाई लोक स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकता। हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी साहित्य के प्रति पाठकों की अरुचि का कारण खोजा जाए तो दिखाई यह देगा कि इसके मूल में बड़ा कारण मार्क्सवादी विचारों को बलात् लोकमानस पर थोपने के दशकों तक किया गया प्रयास ही है। कोई भी पाठक अपना मूल्यवान समय और मानसिक उर्जा इसलिए व्यय नहीं करना चाहता कि वह किसी खास विचारधारा का शिष्यत्व ग्रहण कर ले। पाठक तो बस अपने आपको लेखक की कृति में तलाश करता है। यदि उसकी चिति से कृति का तादात्म्य नहीं बैठता, वह पढ़ना नहीं चाहता। सृजित संस्कृति को सम्प्रेषित होना जरूरी है और संप्रेषित होने के लिए राष्ट्र चिति की अनुरूपता होनी चाहिए। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि 'हेडली चेइज' को इतना क्यों पढ़ा जाता है? उसमें कौन-सी राष्ट्र चिति है? इसका उत्तर होगा, आहार, निद्रा, भय, मैथुन की पशु प्रकृति ही उसकी पठनीयता का कारण है। इस विशेषता को कुछ मार्क्सवादी लेखकों ने भी अपनाया, लेकिन नग्नता को मसाले की तरह प्रयोग करने के बाद भी उनके पाठकों की संख्या नहीं बढ़ी। देखा यह गया कि लोकमानस से साहित्य की दूरी तब से बढ़ती चली गई है जब से मार्क्सवादी साहित्य का अवतरण शुरू हुआ। साहित्यकार की प्रतिष्ठा में भी काफी गिरावट आई।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का कथन है कि 'समाज की संस्कृति की दिशा चिति निर्धारित करती है अर्थात् जो चिति के अनुकूल होती है वह संस्कृति में सम्मिलित कर ली जाती है। चिति वह मानदंड है जिससे हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। यही राष्ट्र की आत्मा है।' पंडितजी द्वारा स्थापित 'चिति' शब्द के तात्पर्य की खोज करते हुए जब हम शास्त्र की ओर देखते हैं, इस शब्द की अर्थ-सत्ता अत्यंत विराट दिखती है, इतना विराट जिससे सारी विसंगतियों को आत्मसात किया जा सकता है और युगानुरूप सृजन किया जा सकता है। यह भारतीय मनीषा की अतुलनीय बौद्धिक खोज है। इसने भारत को शाश्वत राष्ट्र होने का गर्व दिया है। आगम शास्त्र का कथन है- चितिः स्वतंत्रता विश्व सिद्धि हेतुः। चिति स्वाधीन, शाश्वत, अनाहत

और सर्वव्याप्त सत्ता है। इस से संपूर्ण विश्व को एकात्म किया जा सकता है।

यह दुखद ही है कि स्वतंत्र भारत में राष्ट्र चिति की अभिव्यक्ति करने वाली संस्कृति धारा को विरोधी शक्तियों ने प्रताड़ित और अपमानित किया और ऐसा संस्कृति-बोध और इतिहास बनाने का प्रयास किया जिसकी जड़ें भारत की धरती में नहीं बल्कि पश्चिमी देशों में हैं। इस दोष को दूर करने के लिए अथक परिश्रम करने के बाद भी कम्युनिस्टों को सफलता नहीं मिली। फिर भी हमें इनको वर्गीकृत करना पड़ सकता है। इनकी कोटि निर्धारित करनी पड़ सकती है। क्योंकि मार्क्सवाद के प्रभाव में सृजन शक्ति व्यय हुई है। आज हम इसे समकालीन साहित्य कहते हैं। यह युगीन संस्कृति श्रेणी का एक प्रकार है। निश्चय ही इसमें राजनीतिक एवं आर्थिक स्पंदन होंगे। यह शाश्वत श्रेणी का साहित्य नहीं है। इसके समानांतर अन्य कला विधाओं में भी समकालीन संस्कृति के रूप दिखाई पड़ते हैं। इनका मुख्य प्रहार व्यवस्था पर होता है, इनमें पर्याप्त राजनीतिक चेतना होती है, इनके रचनाकार राजनीति शक्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं फिर भी 'आवतजात पहनिया टूटी बिसर गयो हरिनाम' की पीड़ा इनमें कहां होगी और वह साहस भी कहां होगा कि मुगलों के सर्वाधिक शक्तिशाली काल में अकबर महान के मुंह पर बिल्कुल सामने खड़ा होकर यह कहकर तमाचा मारे कि 'जाके मुख देखत दुख उपजत तिनको करनी पड़ी प्रणाम' (कुम्भन दास)।

यदि सदी बदल गई - सत्ता सिंहासन का सवार बदल गया तो इनकी सृजन चेतना भी बदल जाएगी। नया शक्ति-समीकरण तैयार होगा तो इनके मानस में हर्ष-विषाद के ज्वार-भाटे भी अवश्य उठेंगे। क्योंकि इनके लिए कोई शाश्वत तत्व आस्था का विषय नहीं होता। राष्ट्र चिति इन्हें नहीं समझ आती। ध्रुवास्मृति से राष्ट्र की संप्रभुता का घना संबंध इन्हें समझ में नहीं आता। ये सत्ता और इतिहास के संघर्ष को जरूर समझ जाते हैं। लेकिन इन मार्क्स मार्गियों की समझदारी की खास पृष्ठभूमि यह होती है कि ये सच्चे ग्लोबल होते हैं, इनकी स्मृति की पंछी डाल छोड़ पहले उड़ जाता है। भारत छोड़ कर दुनिया दूसरे मुल्कों में, पुरानी कहावत में कहें तो दूर की कौड़ी छान लाने के लिए- वह कौड़ी बड़ी कीमती होगी- विदेशी होने के कारण। फिर उसे ही देशी दिमाग पर पटका मारा जाता है। नमूना पेश है; सुधीश पचौरी जनसत्ता में 23 दिसंबर 1999 को आगत नई शती या सहस्राब्दी की नई विशेषताओं को रेखांकित करते हुए सत्तर के दशक में ले जाते हैं और जॉन बार्थ नामक लेखक के कथन- 'द लिटरेचर ऑफ एग्जॉशन' का उल्लेख करते हुए बताना चाहते हैं कि यही परिस्थिति हमारे सिर पर आ गई है अर्थात् 'सदा ही उत्तेजित और विरोध की राजनीति करने वाला लेखक विषय विहिन हो गया है'- यानी कि 'शिथिल'। इसके बावजूद कि खतरा है, खतरे की घंटी को बादशाह बजा रहा है। मतलब - इन दिनों हिंदी साहित्य में तीन नई परंपराएं उत्पन्न हो गई हैं - रॉयल चैलेंज के चुनिंदा चेहरों की परंपरा, भाजपा की साहित्य परंपरा और सुलभ साहित्य अकादमी की परंपरा और 'साहित्य की उक्त तीन परंपराएं इस उत्तराधुनिक परिदृश्य का मनभावन प्रतिबिंब नजर आती हैं।' इसके आगे अपने लेख में सुधीश पचौरी ने उल्लेखित साहित्य परंपराओं के विषय

में विस्तार से बताया है।

उत्तराधुनिक विचारक पचौरीजी चिंतित क्यों हैं? जब उन्हें भूमंडलीकृत मल्टीकल्चर से परहेज नहीं, यह वैश्विक विकास के लिए जरूरी है तो सब कुछ जरूरी है चाहे किसी का साहित्य हो, सबके सब आधुनिक तो नहीं हुए, मार्क्स मार्गी भी नहीं हुए उत्तराधुनिक भी नहीं होंगे। यही मानकर कोई विचार सदा सामयिक बना रहता है।

'मल्टीकल्चर' को मैंने गायत्री चक्रवर्ती के मुंह से पहली बार सुना था, यदि मैं कन्युजिया नहीं गया होऊं तो उन विदुषीजी के नाम के आगे या पीछे 'एस.पी.वाक' लगा हुआ था, उनका पूरा नाम सुन और बुढ़ापे में उनका लैट हेयर कटिंग देखकर मैं सोचने-समझने पर विवश हुआ था कि किसी कल्पित एलियन नामक अंतरिक्ष मानव की तरह आने वाले दिनों में भूमंडलीकृत मानव का रूप हो जाए तो आश्चर्य नहीं। मैं भगवद्गीता का भक्त हूं, मुझ जैसों को बार-बार गीता याद आती है। गीता में श्रीकृष्ण ने वर्ण संकरण से उत्पन्न होने वाले संकट की चर्चा की है, दुनिया में इस समय कुछ संकट संकर बीजों से उठ खड़े हुए हैं, ऐसा ही संकट विचार संकरण से भी पैदा होते होंगे। तब मैंने मल्टीकल्चर को इसी रूप में अनुभव किया था। लेकिन आज संकरण के समाहारक चिति की एकात्म सत्ता को समझने का प्रयास कर रहा हूं। संकरण और गहरी अंतर्क्रिया के बाद जीत किसकी होती है, कौन बीज और कौन खाद बन जाता है? राष्ट्र चिति के अनुकूल तत्व बीज और प्रतिकूल तत्व खाद बन जाते हैं।

मल्टीकल्चर के कचड़े को कंपोस्ट-खाद में परिवर्तित करने के लिए किस प्रकार का प्लांट बनाना होगा? इस विषय पर स्वदेशी के 'सोशल इंजिनियर' अवश्य विचार करेंगे। जहां तक उत्तराधुनिकता की कतार से अलग साहित्य और साहित्याचरण के आगमन का प्रश्न है और इससे किन्हीं अराजकताओं के पैदा हो जाने का खतरा है तो इसके समाधान के लिए सुगम मार्ग मेरे जानते यही होगा कि उत्तराधुनिक आचार्यों को धैर्य और सहनशीलता का परिचय देना होगा। जिस प्रकार मार्क्स मार्गी विचारों के विश्व साहित्य रूपी भूंमंडलीकरण को राष्ट्र चिति ने देखा और जब उत्तराधुनिकता की शहनाई भी बिना आधुनिक हुए ही गूंज उठेगी इसे भी राष्ट्र चिति ही निर्णित करेगी। इस तरह जब पेंटिंग के क्षेत्र में आधुनिकता की पाश्चात्य धारा की नकल भारतीय चित्रकारों ने की, उन्हें विश्व के कला समीक्षक और कला बाजार ने दुत्कार दिया था। उन्हें विवश होकर भारतीय प्रतीकों की ओर भागना पड़ा था। इसी विवशता से हुसैन को भारत के देवी-देवता याद आए और उन्होंने निजी कारणों से तोड़-फोड़ भी की थी, उन्होंने यह तर्क भी दिया कि माइकल एंजेलो की कला कृतियों की अगली ऐतिहासिक कड़ी पिकासो ने इसी ढंग से बनाई थी।

जैसे तब भारतीय कला सृजन के क्षेत्र की आधुनिकता को अपना निजी स्वरूप लेना पड़ा था, उत्तराधुनिक विकास को भी निजी स्वरूप ग्रहण करना होगा, कहीं का ईंट-पत्थर उठाकर भानुमती का कुनबा बनाने से राष्ट्र चिति की स्वीकृति हासिल नहीं होगी। फिलवख्त भारत की संस्कृति सृजन की शक्ति अपना केंद्र तय करने का प्रयत्न कर रही है, इसमें जो भी स्वाभाविक

गति से हो रहा है उसे न तो मार्क्स मार्गी भूमंडलीकरण के पक्षपातियों को मारना चाहिए और न पूंजीवादी उपभोक्तावादी बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्रचालित भूमंडलीकरण को ही मारना चाहिए। इस प्रसंग में मार्क्स मार्गी भूमंडलीकृत विचार युद्ध का दृश्य देखा जाना चाहिए जिसमें 'मल्टीकल्चर' को स्वीकृति और उत्तर आधुनिकता की पक्षधरता प्रवेश कर रही है। दूसरे भूमंडलीकरण अर्थात् पूंजीवादी भूमंडलीकरण एक वकील हैं स्वामीनाथन एस. अंकलेसरिया अय्यर। इनके नाम की संरचना में 'अंकलेसरिया' की उपस्थिति से मैं विशेष प्रभावित हुआ। प्रभावित इसलिए हुआ कि एक जमाने में मेरा स्वदेशी मन 'अंकल' संबोधन सुनकर चिढ़ जाता था, चाहे यह संबोधन मेरे सिर पर गिरे या दूसरे के सिर पर। एक बार नहीं, कई बार मैंने इस संबोधन का विरोध किया, कारण कि चाचा शब्द का लोप हो रहा था। यदि आज जवाहरलाल नेहरू होते तो वह नेहरू अंकल होते और तब लोकमानस पर उनकी छवि का गहरी छाप नहीं पड़ती, इन्हीं व्यर्थ की चिंताओं में रहने के कारण तब मैं 'अंकल' संबोधन से चिढ़ता था। पर, एक दिन मेरी चिढ़ समाप्त हो गई। गुजरात में एक स्थान है- अंकलेश्वर। पता लगा कि अंकलेश्वर कोई दूसरा नहीं, स्वयं महादेव शिव ही हैं जो अंक में ले, गोद में उठा ले, उसे अंकल कहा जाता है। अंक का यह भारतीय अर्थ जानने के बाद मैंने अंकल शब्द को सिर आंखों पर बैठा लिया। 'अंकलेश्वर शब्द से ही संभवतः 'अंकलेसरिया' शब्द बना है अर्थात् हमारे आलोच्य लेखक में विदेशज शब्द को देशज बना लेने की शक्ति विद्यमान है, फिर भी इस अंग्रेजी लेखक को अपनी स्वदेशी शक्ति की अनुभूति नहीं है। इस लेखक को बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बढ़ाई जा रही विकृत उपभोक्ता प्रवृत्ति का पक्ष लेने में संकोच नहीं है और बिना जाने समझे भारतीय संस्कृति के उन संदर्भों का मनमाना उल्लेख करने में भी संकोच नहीं, जिससे पूंजीवादी भूमंडलीकरण को बढ़ावा मिलता प्रतीत होता है। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को लांक्षनित करने से भी बाज नहीं आते। उनका कहना है कि 'आर.एस.एस. लोगों में डर क्यों पैदा कर रहा है? बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा ऐसा कुछ नहीं किया जा रहा जो हमारी संस्कृति को विकृत करे- भारतीय संस्कृति और पूंजीवादी भूमंडलीकरण की संस्कृति सहजात है, भारतीय संस्कृति इनसे बहुत आगे है और प्रभावकारी भी।' इस लेखक के पाठक अर्थात् इकोनॉमिक टाइम्स के पाठक विश्वास कर लें कि उनका कोई अहित बहुराष्ट्रीय कंपनियां नहीं करेंगी और मान लें कि बिला वजह आर.एस.एस. के लोग उपभोक्ताओं को सुख से वंचित करना चाहते हैं।

मैं स्पष्ट कर दूं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने राष्ट्र के लिए कटिबद्ध है, राष्ट्रहित में लिए गए किसी भी निर्णय को देशवासी शिरोधार्य करेंगे। राष्ट्रहित को स्वीकारने में किसी भी देशवासी को पीछे नहीं हटना चाहिए। चाहे पूंजीवादी भूमंडलीकृत संस्कृति हो अथवा साम्यवादी भूमंडलीकृत संस्कृति, इन्हें तो राष्ट्र चिति पर ही अधिकार करने के युद्ध लड़ने होंगे और राष्ट्रभक्त शक्तियां ही इनको शत्रु दिखेगी। ऐसे में 'तेरा वैभव अमर रहे मां - हम दिन चार रहें या न रहें'- गाने वालों के साथ ही भारत माता की संतानें रहेंगी, चाहे वे कोई भी ईश्वरीय मत मतांतर मानती हों, चाहे किसी भी राजनीतिक दल से संबंधित हों, देशवासियों को इस

महाभारत की रणभूमि में सब कुछ भूलाकर राष्ट्र के हित के लिए खड़ा होना ही पड़ेगा।

आहार-विहार, साहित्य-कला संस्कृति के क्षेत्रों में जितनी भी सामयिक चेष्टाएं हैं उनके उचित-अनुचित का निर्णय राष्ट्र चिति ही करेगी और सदा से करती आ रही है। राष्ट्र की प्रकृति के प्रतिकूल विषयों का अनुसरण करने से लाभ नहीं मिलता, यह घोषित है। राष्ट्रव्यापी प्रकृति की सूक्ष्म अंतर्प्रकृति में ही राष्ट्र चिति होती है, यह राष्ट्र की आत्मसत्ता है। यह सदा स्वतंत्र रहती है। इसकी अनुकूलता में सृजित संस्कृति को ही 'आत्म संस्कृतिर्वाव शिल्पानी' कहा गया है। राष्ट्र चिति की अनुकूलता में सृजित संस्कृति राष्ट्र के अभ्युदय में सहभागी होती है। यह भ्रांत धारणा है कि राजसत्ता ही संस्कृति सृजन का कारक होती है, समकालीनता ही एकमात्र साहित्य सृजन का प्रेरक होती है। शाश्वत काल की भूमिका नहीं समझने के कारण यह भ्रांति उत्पन्न हुई है, भारत की आध्यात्मिक सत्ता को इतिहास में उचित स्थान नहीं देकर मार्क्स मार्गियों ने यह भ्रांति उत्पन्न की है। अन्यथा राष्ट्र चिति की समझ अकादमिक विमर्शों में उपस्थिति होती और साहित्य-संस्कृति की आलोचना करते हुए त्रिघा दिक्काल को आधार बनाया जाता, जिसमें राजसत्ता से प्रेरित समकालीन प्रवृत्तियों और बाजार से प्रेरित उपभोक्ता प्रवृत्तियों के पहले अध्यात्म से प्रेरित शाश्वत प्रवृत्तियों को स्थान दिया जाता, लोकोत्तर साहित्य की भूमि भारत में राष्ट्र चिति का बोध नियामक भूमिका में होती और राष्ट्र की एकात्मता सजग और सक्रिय होती। आज राष्ट्र चिति और संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा और सामयिक संवर्धन परम आवश्यक है, इसके पोषण और संवर्धन का दायित्व हम सब के कंधे पर ठीक वैसे ही है जैसे देश की सुरक्षा का दायित्व।

(लेखक एनसीईआरटी में सहायक प्रोफेसर हैं)

●

मेरे सपनों का भारत : उषा काल के सूरज की सतरंगी किरणों जैसा है

देवी प्रसाद त्रिपाठी

यों तो गांधीजी के सपनों का भारत यानी आज का भारत कैसा है? इसे देखकर; गांधीजी अगर आज जिंदा होते तो शायद स्वयं ही जीने की इच्छा त्याग देते। हालांकि आजादी के बाद बीते करीब साढ़े छह दशकों में देश ने विकास की जो ऊंचाई प्राप्त की है उसे एकदम झुठलाया नहीं जा सकता लेकिन इसे गांधी के सपनों का भारत कहना भी बेईमानी होगी। इन दोनों बातों के मद्देनजर भारतीय लोकतंत्र के भावी स्वरूप को लेकर प्रख्यात बुद्धिजीवी एवं राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के महासचिव-राज्यसभा सदस्य देवीप्रसाद त्रिपाठी कहते हैं कि :

आज से पंद्रह कम सौ साल पहले अपने सपनों के भारत का चित्र खींचते हुए 10 सितंबर, 1931 के 'यंग इंडिया' में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण लेख में महात्मा गांधी ने लिखा था : 'मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूंगा, जो भारत को हर तरह कि गुलामी और परावलंबन से मुक्त कर दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि यह उनका देश है- जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा जिसमे ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेल-जोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता (छुआछूत) या शराब और दूसरी नशीली चीजों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई वरोध नहीं है पूरा सम्मान किया जाएगा, फिर वे हित चाहे देशी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी ख सकता हूं कि मैं देशी-विदेशी के से नफरत करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत!....इससे भिन्न किसी चीज (व्यवस्था) से मुझे संतोष न होगा।'

इक्कीसवीं सदी के भारत की सबसे बड़ी ताकत यहां की युवा जनसंख्या है। देश की 70 प्रतिशत आबादी की उम्र 35 बरस से नीचे की है। इतनी विशाल मानवीय श्रमशक्ति अन्य किसी भी देश के पास नहीं है। ऐसे में अगर आप मेरे सपनों के भारत के बारे में जानना चाहते हैं तो मैं यही कहूंगा

कि मेरे सपनों का भारत सभी क्षेत्रों में शक्ति संपन्न युवा वर्ग का भारत होना चाहिए। 1914 के चुनाव में भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था और राजनीति में एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण परिवर्तन आया, जिसे दुर्भाग्यवश लोगों ने लक्ष्य नहीं किया और लक्ष्य नहीं किया तो विश्लेषण नहीं किया।

पहली बार भारतीय राजनीति में, विशेषकर आजादी के बाद पैदा हुई पीढ़ी आई। अब तक जितने भी प्रधानमंत्री और प्रमुख दलों के नेता भारत में हुए उनका आजादी के पहले हुआ था, यानी वे गुलामी के दिनों में धरती पर आए थे। इसीलिए यह नया परिवर्तन विशेष उल्लेखनीय है। एक खूबसूरत जुमले में कहूं तो 'मेरे सपनों का भारत' उषा काल के सूरज की सतरंगी किरणों जैसा है।

भारत में अब तक की व्यवस्था की सबसे बड़ी कमी विषमता और विपन्नता है, इसलिए शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में हम अपेक्षित प्रगति नहीं कर सके। मेरी मान्यता है कि बिना महिला शिक्षा के सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण भारत का केरल राज्य है। शिक्षा के और खास कर नारी-शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार से आर्थिक क्षेत्र में केरल में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। यह आश्चर्य की बात नहीं कि विकास के कई क्षेत्रों में केरल की उपलब्धियां चीन से भी आगे हैं। इसी तरह महाराष्ट्र का उदाहरण लें, समाज सुधार आंदोलनों और शोषण के विरुद्ध संघर्ष के कारण यह भारत का अग्रणी राज्य बन सका है। गुजरात का विकास भी सराहनीय है।

पिछले वर्षों में भारत ने आर्थिक प्रगति तो की है, दुनिया में हमारी प्रतिष्ठा भी बढ़ी है, लेकिन बेरोजगारी और गरीबी का मुकाबला करना आज भी देश के सामने विद्यमान सबसे बड़ी चुनौती है।

अगले दशकों में मैं भारत राष्ट्र को समग्र रूप से समृद्ध देखना चाहता हूं। यह समृद्धि कुछ छोटे समूहों/घरानों तक सीमित न रहे, इस नीति से काम नहीं चलेगा। भविष्य का भारत विज्ञान और तकनीक के व्यापक प्रयोग से वैकल्पिक ऊर्जा और सह-अस्तित्व वाला देश बन सके, इसकी लगातार कोशिश करनी पड़ेगी। यह काम सिर्फ सरकारों के भरोसे नहीं होगा। सभी को मनसा-वाचा-कर्मणा इसमें लगना होगा। मैं समझता हूं लोकतंत्र साधारण की असाधारणता है। जन-साधारण की इस असाधारणता को पूरी ताकत से जागृत करना होगा। इस आधार पर आने वाले दशकों में देश का समूचा चित्र सकारात्मक रूप से बदले, यही हमारी अपेक्षा है।

देश में चल रही योजनाएं भावी विकास के लिए उपयोगी हैं भी, और नहीं भी हैं। मैं एक बहुत ही छोटे तथ्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं; जो अपने आप में भारत की बड़ी समस्या है। भारत में दुनिया की 17 प्रतिशत से कुछ ज्यादा ही आबादी रहती है लेकिन हमारे पास जिंदगी और विकास के लिए सबसे पहली प्राथमिकता रखने वाला पानी दुनिया में उपलब्ध पानी का केवल चार प्रतिशत ही है। इस भीषण समस्या का हल तो युद्ध स्तर पर करना होगा।... जैसा कि मनुष्य ही नहीं प्राणी-मात्र के जीवन में पानी की महत्ता और आवश्यकता को महसूस करते हुए 'जल ही जीवन है' तक कहा गया है।

सैकड़ों साल पहले भक्त कवि रहीम ने हमें 'रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून/पानी बिना ऊबरे मोती मानुस चून।' का सूत्र बताकर चेताया था लेकिन हमारी आंख नहीं खुली। नतीजा हमारे सामने है कि धरती और उस पर, उसकी उपजों से जीवन-निर्वाह करने वाले मानव समेत सभी प्राणी आज बूंद-बूंद पानी को तरस रहे हैं।

विज्ञान और कृषि विज्ञान के क्षेत्र में हमने सीमित संसाधनों के बावजूद बहुत उल्लेखनीय प्रगति की है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में अतीत कभी व्यतीत नहीं होता और वर्तमान से संघर्ष करते हुए निरंतर अनागत को आगत में बदलना पड़ता है। कल के भारत को सकल का भारत बनना होगा। इसलिए हमें विशेषकर शिक्षा-स्वास्थ्य-समानता आदि का धरातलीय विकास करना होगा। नोबेल पुरस्कार प्राप्त भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने भी कहा है- 'देश की जमीनी खुशहाली ही, किसी देश की असली शक्ति होती है। विफल और रोता हुआ राष्ट्र ठीक से सोता भी नहीं।'

किसी भी विकासशील देश के लिए पूंजी अर्थात धन की गहन आवश्यकता पड़ती है। लेकिन देश में या उसे चलाने वाली व्यवस्था के खजाने और कुछ लोगों के पास धन एकत्र होने मात्र से उस देश और देश की आम जनता का समुचित विकास संभव नहीं है। ऐसे में महात्मा गांधी का राष्ट्रीय कोष या सार्वजनिक कोष के बारे में पारिभाषिक विचार यहां विशेष उल्लेखनीय होगा। बापू ने 'मेरे सपनों का भारत' में एक जगह कहा है- 'सार्वजनिक धन भारत की उस गरीब जनता का है जिससे ज्यादा गरीब इस दुनिया में और कोई नहीं है। इस धन के उपयोग में हमें बहुत ज्यादा सावधान तथा सजग रहना चाहिए और जनता से हमें जो भी पैसा (विभिन्न रूपों कर आदि में) मिलता है उसकी पाई-पाई (एक-एक पैसे) का हिसाब देने के लिए तैयार रहना चाहिए। -गांधीजी ने तत्कालीन व्यवस्था और भावी भारत के जिम्मेदार लोगों को सचेत करते हुए जो बात कही, उसमें सार्वजनिक धन के समुचित और समान वितरण तथा 'जनता का पैसा जनता के हित में' का संकेत निहित है। लेकिन आजादी के बाद जिन कथित काले अंग्रेजों की कांग्रेस ने सत्ता संभाली वह भी पूरी तरह 'जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता की सरकार' नहीं बन पाई और नेहरू के पंचशील और सरदार पटेल की रियासत भंग नीति के बावजूद गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता चला गया जबकि राष्ट्रपिता की परिकल्पना आजादी को लेकर कुछ इस तरह थीः- यदि मैं अपने देश के लिए आजादी चाहता हूं, तो मुझे यह मानना ही चाहिए कि प्रत्येक दूसरी सबल या निर्बल जाति का भी उस आजादी का वैसा ही (जैसा कि हम अपने लिए समझते हैं) मौलिक अधिकार है।'

'भारत दुर्दशा' के लेखक भारतेंदु हरिश्चंद के 'सब धन बिदेस चलि जात इहै दुःख भारी' की चिंता ने आज अत्यंत विकराल रूप धारण कर 'स्विस बैंक में हजारों करोड़ काला धन' के रूप में सामने आया है। जिसकी क्रूर परिणति भूख से रही मौतों और बुरी तरह कर्ज के बोझ से दबे हताश-निराश हजारों किसानों की आत्महत्या की त्रासद व भयावह शक्ल में हुई है। अंत में वे कहते हैं कि जब गांधी और अमर्त्य सेन की सोच को समाहित किया जाएगा और समकालीनता से जोड़ा जाएगा तब ही जाकर कल का भारत विश्वपटल पर अपना विकसित चेहरा दिखा पाएगा, जब वह सही अर्थों में सकल का भारत बनेगा।

(लेखक राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के महासचिव और राज्यसभा सदस्य हैं)

प्रस्तुति : सत्येन्द्र प्रकाश

●

पुराना सपना छूट न जाए

पुष्पेश पंत

हम सब सपने देखते हैं- बच्चे, जवान, बूढ़े, औरत, मर्द, अमीर और गरीब। सपनों के बिना शायद हम जिन्दा ही नहीं रह सकते। क्रांतिकारी पंजाबी कवि पाश की मार्मिक पंक्ति है- 'सबसे खतरनाक होता है, हमारे सपनों का मर जाना, यह सच भी है यदि सपने ही शेष नहीं रहे तो फिर जिंदगी में बचता ही क्या है? मनुष्य अपनी जिंदगी को होशो-हवास संभालने के साथ ही अपने सपनों के अनुसार अर्थ देता है और उसे संवारने की रंगों से भरने की कोशिश में लगा रहता है बाकी जिंदगी बिताता है। कुछ सपने होते हैं खुशहाली के और कुछ दूसरे सपने होते हैं अभाव में भी खुशी तलाशने के- प्यार के, रोमांस के, किसी साथी के साथ कंधे से कंधा मिला अपनी और दूसरों की जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष करने के लिए।

कुछ सपने बिलकुल व्यक्तिगत निजी होते हैं जीवनसाथी और घर-परिवार से जुड़े और कुछ सपने ऐसे होते हैं जो साझेदारी के बाद ही सार्थक होते हैं। हमारी आजादी की लड़ाई के दौरान और दुनिया की तमाम मशहूर क्रांतियों की कामयाबी उन सपनों की साझेदारी से ही संभव हो सकी जो कुछ महापुरुषों ने देखे थे और इनकी साझेदारी से लाखों- करोड़ों लोगों को उत्पीड़न और अन्याय से छुटकारा पाने के लिए प्रेरित किया था। राष्ट्रपिता बापू ने जाने कितनी बार अपने सपनों के भारत की बात की। उनका सपना था हर आंख से हर आंसू को पोंछने का। उन्होंने जो तिलिस्म अपने अनुयाइयों को सौंपा था वह दरिद्र नारायण के कष्ट को दूर करने वाला था। बापू के सपनों में और बहुत सारी चीजें शामिल थी यह सपना भारत को आर्थिक रूप से स्वालंबी बनाने का था और सामाजिक विषमता पैदा करने वाली तमाम कुरीतियों से छुटकारा दिलाने के संकल्प का सपना था। बापू के सपनों के भारत में न तो किसी भी तरह के सांप्रदायिक वैमनस्य की जगह थी और ना ही जाति-व्यवस्था के जहर की। स्त्री और पुरुष के रिश्तों में समानता ही न्यायसंगत हो सकती है ऐसा बापू का मानना था।

अपने लड़कपन में जब मैंने पहले-पहल 'मेरे सपनों का भारत' नामक मुहावरा सुना तो कई बार ऐसा लगता था कि बापू के सपनों के भारत में और उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू के सपनों के भारत में बहुत बड़ा अंतर है। नेहरू के सपनों का भारत वैज्ञानिक सोच वाला आधुनिक और बड़े-बड़े उद्योग धंधों वाला भारत था। जबकि गांधी के सपनों का

भारत देहाती, पंचायती राज के माध्यम से सत्ता के विकेंद्रीकरण के मॉडल वाला चरखे-हथकरघे वाला, भजन-कीर्तन और प्रार्थना सभा के माध्यम से सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने वाला पारंपरिक और शायद पितृसत्तात्मक समाज को पोषित करने वाला भारत नजर आता था। जाहिर है कि तरुणाई में जब नेहरू का करिश्माई नेतृत्व अपने निखार पर था महात्मा की तुलना में नेहरू के सपने ज्यादा आकर्षक लगते थे- शहरी, तरक्की पसंद धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी। बापू का सपना रामराज का था तो नेहरू का समाजवाद का। इन्हीं दिनों एक दूसरा मुहावरा प्रचलित था- मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। अर्थात गांधी के सपनों की साझेदारी सिर्फ कमजोर लाचार ही कर सकता था।

यहां एक और महत्वपूर्ण बात रेखांकित करने की जरूरत है। बापू के सपनों का अनिवार्य अंग अहिंसा और सत्याग्रह है। नेहरू ने अहिंसा को सैद्धांतिक रूप में स्वीकार तो किया पर उस तरह की 'हठधर्मी' के साथ नहीं जो बापू के लिए जीवन-मरण का प्रश्न थे। आजादी के बाद जनतांत्रिक गणराज्य ने नेहरू की नजर में सत्याग्रह का कोई खास स्थान नहीं था। संवैधानिक व्यवस्था में बुनियादी अधिकारों को न्यायपालिका का संरक्षण प्राप्त था और आमरण अनशन, धरने-हड़ताल आदि की गुंजाइश नहीं थी। 1950 और 1960 के दशक के मध्य तक यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी कि नेहरू के सपनों के भारत में सत्याग्रह करने वाले प्रतिपक्षी को विरोधी ही समझा जाता था। इसकी मिसाल सिविल नाफरमानी का आह्वान करने वाले डॉक्टर लोहिया के साथ हुए सरकारी बर्ताव से मिलती है और सर्वोदय तथा भूदान आंदोलन का सूत्रपात करने वाले लोकनायक जयप्रकाश नारायण को विधिवत् हाशिए पर पहुंचाने के प्रयासों से।

दो-तीन और बातें ध्यान देने लायक है। बापू के जीवनकाल में ही और आजादी की लड़ाई के दौरान ही कुछ ऐसे दूसरे नेता रहे हैं जिनके सपनों का भारत गांधी के सपनों के भारत से बहुत भिन्न था। शहीद भगत सिंह से लेकर नेताजी सुभाष बोस तक एक लंबी शृंखला उन देश प्रेमियों की है जिनका मोहभंग बहुत पहले ही अहिंसा से हो चुका था और जो भारत की आजादी के लिए और समतापूर्ण समाज की स्थापना के लिए शस्त्र उठाने को अनिवार्य मानते थे। सुधारवादी और क्रांतिकारी सपनों का अंतर हर देशकाल में विश्व में सर्वत्र देखने को मिलता है। फ्रांस हो या रूस चीन हो या वियतनाम और क्यूबा देर-सवेर किसी एक पक्ष का पलड़ा भारी होता है और उसी विचारधारा के अनुसार घटनाक्रम संपादित होता है। आज जीवनयात्रा के सात दशक पूरा कर लेने के बाद यह बात समझ आती है कि तरुणाई के सपने अधेड़ उमर में या बुढ़ापे की ढलान में अक्षत नहीं रह सकते। मीनू मसानी ने कभी यह बात जरा से परिहास के पुट के साथ ही कही थी कि अगर कोई व्यक्ति नौजवानी में साम्यवादी नहीं तो समझो कहीं कुछ गडबड़ है और अगर अधेड़ उम्र में भी वह साम्यवादी ही बना रहता है तो फिर समझ लो कि जरूर उसके साथ कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है!

आज जब में पलटकर अपने सपनों के भारत के बारे में सोचता हूं तो मुझे यह महसूस होता है कि अपने देश के बारे में मेरे सपने उन पुराने सपनों से काफी फर्क है। मगर ऐसा भी

नहीं है कि उन नादान सपनों से आज के बुढ़ाते सपनों का कोई रिश्ता ही नहीं है। यह बात भूलना व्यक्ति और समाज के लिए आत्मघातक ही सिद्ध हो सकता है कि पीढ़ियों के बीच सपनों की साझेदारी के बिना परंपरा निर्जीव हो जाती है और हमारी बुनियादी पहचान ही नष्ट हो सकती है। कुछ बातें ऐसी है जो हर उस सपने का हिस्सा होती है जिसकी साझेदारी दूसरों के साथ की जा सकती है। सपना गूंगे के हाथ लगा गुड़ नहीं जिसका रस 'अंतर्गत' ही लिया जा सकता है। मिल बांटकर ही अपने सपनों को साकार किया जा सकता है अगर स्वार्थ की कसौटी ही हाथ लिए हम सपनों को कसते रहेंगे तो इनके दुःस्वप्न में बदलने में देर नहीं लगेगी।

मेरे सपनों का भारत निश्चय ही खुशहाल भारत है। यहां तत्काल यह जोड़ने की जरूरत है कि खुशहाल भारत का अर्थ अमीर भारत नहीं। शायद भारत जैसी बड़ी आबादी वाला देश उस तरह की अमीरी का सपना पाल ही नहीं सकता- फिजूलखर्च और उपभोगवादी विलासी अपसंस्कृति का सपना जो अमेरिका या पश्चिमी यूरोप के किसी और संपन्न देश का यथार्थ है। यह जगह इस विश्लेषण की नहीं कि जीवनयापन का वह स्तर प्राप्त करने के लिए उतना समय लग सकता है और तब तक यह लोग कहां पहुंच चुके होंगे? एक दूसरा जटिल सवाल यह है कि अमेरिका और यूरोप की प्रगति और अमीरी के लिए कौन ऐतिहासिक कारण जिम्मेदार रहे हैं? बहरहाल जो बात समझने की है वह यह कि भारत की खुशहाली में सभी का साझा बराबरी का होना चाहिए। सामाजिक विषमता आज बेहद दर्दनाक है। एक तरफ भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि उदीयमान महाशक्ति जैसी है तो दूसरी ओर आजादी के 70 साल बाद भी देश की आबादी का लगभग दो तिहाई हिस्सा 20-30 रुपये में जिंदगी बसर करने को मजबूर है। देश की खुशहाली सिर्फ इस पैमाने से नहीं आंकी जा सकती कि वहां के कितने नागरिक अरबपति या खरबपति है जिनका शुमार दुनिया के सबसे अमीर देशों के लोगों में होता है। उन आंकड़ों को अनदेखा नहीं कर सकते जो यह दर्दनाक सच्चाई सामने लाते हैं कि भारत में गरीबी अफ्रीका के कुछ सबसे गरीब देशों से भी अधिक दर्दनाक है। आज टैक्नोलॉजी के उपयोग से यह संभव है कि वंचितों और उत्पीड़ितों की जिंदगी बेहतर बनाई जा सके। मेरे सपनों के भारत में सभी नागरिकों के लिए समान शिक्षा और समान चिकित्सा के अवसर होने चाहिए। अपने अनुभव से मैं यह गवाही दे सकता हूं कि आज भारत का औसत आदमी 1947 की तुलना में कहीं बेहतर खाता-पहनता है। उसे इस बात का भाव है कि वह आजाद है और अदालत में देर भले ही हो अँधेर नहीं है। मगर इसके साथ ही यह जोड़ने की जरूरत है कि आज के हिंदुस्तान में कानून के सामने समानता का अधिकार सभी के लिए एक जैसा लागू नहीं होता। अमीर और ताकतवर अभियुक्त अकसर कानून के शिकंजे से निकलने में सफल होता है या मुकदमे की सुनवाई में इतनी देर लगती है कि फैसला आने तक आहत व्यक्ति और अभियुक्त दोनों की ही जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। मेरे सपनों के भारत में न्यायिक प्रणाली में देर की कोई जगह नहीं होगी। विवादों के निपटारे के लिए लोक अदालतें और पंचाट की व्यवस्था को प्राथमिकता देनी होगी।

यहां तक जितनी बातें हम कर रहे हैं वह कई पाठकों को दिवास्वप्न लग सकती है- ख्याली पुलाव। आखिर इन सपनों को साकार कैसे किया जा सकता है? यही व्यक्तिगत और साझे के राष्ट्र विषयक सपनों के बीच पुल बनाने की अनिवार्यता है। गांधी हों या नेहरू, भगत सिंह हों या सुभाष बोस, सावरकर हों या अरबिंदो- रवि ठाकुर हों या विवेकानंद इन सभी की उपलब्धि यह रही है।

ऐसा नहीं कि अपने भारत के बारे में सपने सिर्फ आजादी की लड़ाई के परवानों ने या राजनेताओं ने ही देखे हैं। वैज्ञानिकों और कलाकारों ने भी अपनी-अपनी मौलिक प्रतिभा और रचनाधर्मिता के क्षेत्र में ऐसे सपने देखे हैं जिन्होंने राजनैतिक जीवन के अधूरेपन को भरकर उन्हें पूरा किया है। यह मात्र संयोग नहीं कि महात्मा गांधी और गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर एक-दूसरे के आलोचक और प्रशंसक एक साथ रहे थे। मतभेदों को उन्होंने अपने बीच खाई कभी नहीं बनने दिया। यही बात उन वैज्ञानिकों के संदर्भ में भी उजागर होती है जिनका वर्ग-चरित्र, विरासत एक-दूसरे से बहुत भिन्न था और वह एक-दूसरे के विपरीत ध्रुव ही समझे जा सकते हैं। मेघनाथ शाह और होमी जहांगीर भाभा अथवा विक्रम सारा भाई के चुनिंदा उदाहरण इसके लिए काफी है। इससे पहले पीढ़ी में आचार्य पीसी रे और प्रोफेसर जगदीशचंद्र बसु के नाम भी उल्लेखनीय है। इस सूची को जितना चाहे उतना लंबा कर सकते हैं। कही नंदलाल बोस और अवनी ठाकुर याद आते हैं तो कहीं जामिनी राय, मकबूल फिदा हुसैन और रामकिंकर बैज। इन सभी के कृतित्व ने मुझे बरसों से खुली आंखों से सपने दिखाए हैं और आभारी मैं उन सभी लेखकों का भी हूं जिन्होंने रूप-रेखा में रंग भरे हैं। उन्हें स्वर से संवारने वाले संगीतकार कम है क्या?

हाल के वर्षों में कला और राजनीति की दुनिया का द्वंद्व विस्फोटक बनता रहा है। जो कलाकार राजनैतिक पक्षधरता के अनुसार अपने को देश-प्रेमी अथवा धर्मनिरपेक्ष साबित नहीं कर सकता उसे न सिर्फ देशद्रोही समझा जाता है बल्कि लोग उसे कलाकार तक मानने से इनकार कर सकते हैं। मेरे सपनों के भारत में इस तरह की संकुचित, संकीर्ण, सांप्रदायिक, मानसिकता के लिए रत्ती भर जगह नहीं। इस बात को भी अनदेखा करना कम बड़े जोखिम का काम नहीं कि पिछले कुछ वर्षों में हमारी पारंपरिक सहनशीलता का तेजी से क्षय हुआ है व्यक्तिगत-पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन में असहिष्णुता निरंतर बढ़ी है। इस कारण संविधान में असंरक्षित नागरिक के बुनियादी अधिकारों का न्यायालय के संरक्षण के बावजूद बेरहमी से उल्लंघन होता रहा है। मेरे सपनों के भारत में सिर्फ एक पवित्र किताब के लिए यह स्थान है और वह भारत का संविधान है।

मगर साथ-साथ मैं यह भी जोड़ना चाहता हूं कि इस किताब को पत्थर की लकीर मानने वाला कोई कट्टरपंथी मूर्ख ही हो सकता है। बदलते समय के अनुसार और विज्ञान तथा टैक्नॉलॉजी की प्रगति के मद्दे नजर संविधान में संशोधन परमावश्यक है। आज अगर बारंबार संवैधानिक संकट पैदा होता है तो इसका कारण संविधान के कुछ प्रावधानों का पौराणिक बन

जाना है। सर्वोच्च न्यायालय भले ही यह फैसला सुना चुका है कि संविधान के बुनियादी ढांचे में संशोधन नहीं किया जा सकता पर उसकी इस स्थापना को भी सर्वोच्च न्यायालय की कोई दूसरी पीठ खारिज कर सकती है। मेरा एक सपना यह भी है कि देर-सवेर एक नई संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया जाए और आज की उस नौजवान पीढ़ी की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं के अनुसार उस सामाजिक अनुबंध का निर्माण हो सके जो समाज को हिंसक उथल-पुथल और राजनीति को अराजकता की ओर ले जाने वाली अस्थिरता से बचा सके।

यहां एक बार फिर अपने सपनों का जिक्र करते वक्त फिर बापू और नेहरू के साथ-साथ लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि के सपनों की याद बरबस आ जाती है खास कर विदेशनीति के संदर्भ में। क्या 21वीं सदी के भारत में मेरा कोई भी सपना पूरा हो सकता है जब हमारे पड़ोस का माहौल हिंसक, आक्रामक और विस्फोटक हो? क्या मैं आज यह कल्पना कर सकता हूं कि अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य ऐसा है कि भारत वास्तव में स्वाधीन-स्वावलंबी आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होता निरापद रह सकता है? क्या भूमंडलीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव से और अंतरराष्ट्रीय कट्टरपंथी आतंकवाद की संक्रामक महामारी के संकट से लापरवाह हम अपने सपनों में गाफिल रह सकते हैं? हमारे सामने जो सबसे विकट चुनौती है वह सामरिक संकट समाधान के लिए और सामाजिक न्याय के लिए प्रस्तावित नीतियों और कार्यक्रमों को अहिंसक रूप से लागू करने का कौशल अर्जित करने की है। अहिंसक और हिंसक उपकरणों औजारों और प्रणालियों के बारे में आज इतनी आसानी से फैसला करना संभव नहीं जितना महायुद्ध की विभीषिका और बंटवारे का रक्तपात झेलने के बाद की वेला में था। मेरे सपनों का भारत ताकतवर तो होना चाहिए पर डरावना नहीं। वह वास्तव में जनतांत्रिक हो जिसमें असहमति को स्वीकार करने का साहस होना चाहिए और अपनी पहचान के साथ-साथ दूसरों की विविधता, फर्क, पहचान का सम्मान करने का आत्मविश्वास भी।

(लेखक प्रख्यात राजनीतिक विश्लेषक हैं)

●

एक खुशहाल और शांत भारत

एस.एन.सुब्बाराव

वर्धा में सेवाग्राम एक दशक से अधिक समय के लिए गांधीजी का निवास स्थान रहा हालांकि भारत के राष्ट्रपिता को चूंकि भारत के सभी हिस्सों में जाना पड़ता था अतः वे बहुत दिनों तक सेवाग्राम से बाहर रहे। लेकिन उनके संदेश उन लोगों को प्रभावित करते रहे जो सेवाग्राम आए और जिन्होंने बापू कुटी को देखा।

आज भी वहां पर वह पुरानी लालटेन रखी है जिसका गांधीजी व्यवहार किया करते थे। ये बात हमें क्या बताती है? क्या गांधी जी बिजली के खिलाफ थे। बिल्कुल नहीं। फिर वे बिजली का इस्तेमाल क्यों नहीं करते थे? संदेश सीधा सा है। मेरी झोपड़ी में बिजली तभी आएगी जब सबसे गरीब आदमी की झोपड़ी बिजली से रोशन होगी तभी पूरा भारत प्रसन्न होगा।

सन 1950 में अमेरिका ने भारत में एक अत्यंत संवेदनशील और विद्वान राजदूत को भेजा। मैं उनसे मिला क्योंकि उन्हें मैं उनके द्वारा लिखी गई किताब के लिए बधाई देना चाहता था। वे तब बहुत खुश हुए जब मैंने एक सार्थक वाक्य उद्धृत किया जो कि राजदूत चेस्टर बाउल द्वारा लिखा गया था- 'भारत में किसी राजनेता के लिए मार्ग लैग केबिन से व्हाइट हाउस तक नहीं जाता बल्कि राजमहल से मिट्टी की झोंपड़ी तक जाता है। बाउल ने यह वाक्य राजघाट में महात्मा गांधी की समाधि के सामने खड़े होकर कहा था।

उनकी प्रतिक्रिया यह थी कि उनके देश अमेरिका में अब्राहम लिंकन आदर्श हैं और हजारों लोग, अमेरिकी और अन्य भी लिंकन मेमोरियल की मूर्ति देखकर प्रेरित होते हैं और लिंकन की कहानी यह है कि वे एक गरीब घर में पैदा हुए थे लेकिन अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रपतियों में से एक थे। जबकि इससे बिल्कुल विपरीत मोहनदास करमचंद गांधी एक संपन्न परिवार में पैदा हुए लेकिन उन्होंने खुद मिट्टी की झोपड़ी में रहने का निर्णय किया और भारतीय व अन्य लोग उनसे सादा जीवन उचच विचार की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तथापि हम भारतीयों को विचार करना चाहिए कि क्या सचमुच हमने गांधीजी से प्रेरणा प्राप्त की और लाभान्वित हुए?

आध्यात्मिक रूप से समृद्ध भारत

जब मदर टेरेसा अमेरिका गईं तब उनके सम्मान में अनेक भोज आयोजित किए गए। उनमें से एक अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा व्हाइट हाउस में दिया गया था। मदर टेरेसा अपनी सस्ती सी साड़ी में वहां गई थीं जबकि अन्य सारे मेहमान सबसे मंहगे कपड़े पहनकर वहां आए थे।

जब मदर टेरेसा के बोलने की बारी आई तो उन्होंने कहा 'मैं अपने अमीर देश भारत से आपके गरीब देश अमेरिका में आई हूं।' अमेरिका..... गरीब?

मदर टेरेसा ने आगे कहा- 'मैंने यहां गगनचुंबी इमारतें, चौड़ी चौड़ी सड़कें और चारों ओर सुख सुविधाएं देखीं लेकिन आपकी इन सारी भौतिक सुख सुविधाओं के बीच मैंने अनुभव किया कि आपका देश आध्यात्मिक रूप से कंगाल है। इसीलिए मैंने इसे गरीब कहा।'

मदर टेरेसा कोई राजनेता नहीं थीं, न ही कोई बड़ी व्यवसायी, न किसी कंपनी की प्रमुख। उनका व्यक्तित्व तो सेवाभाव से निर्मित हुआ था। इसी वजह से सारे लोग उन्हें ध्यान से सुन रहे थे।

क्या इससे हम भारतीयों को कोई संदेश मिलता है? हममें से प्रत्येक भारतीय विशेषकर युवाओं को इस बारे में सोचना चाहिए कि क्या सचमुच आज हमारा देश आध्यात्मिक रूप से धनी है?

इस आध्यात्मिक समृद्धि को जानने के लिए हमें विवेकानंद के पास जाना होगा जो कहते थे कि आध्यात्मिक की मांग यह है कि हमारे देश में यदि कोई श्वान भी भूखा है तो हम पहले उसके लिए रोटी की व्यवस्था करें।

श्वान ही नहीं भारत में तो लाखों स्त्री, पुरुष और बच्चे भूखे हैं। हमें उनके लिए खाने की व्यवस्था करनी चाहिए। महात्मा गांधी का सोचना था कि हम गरीबों को इतना सशक्त बना दें कि वे अपने लिए खुद भोजन जुटा सकें। हमें उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएं जैसे कपड़े, साबुन, तेल, कागज आदि खरीदनी चाहिए। इससे वे अपनी आजीविका के साधन जुटा सकेंगे।

बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी सन 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। वे 1917 में चंपारन पहुंचे और गरीबों के हितों के लिए लड़े। भारत ने अहिंसा और सत्याग्रह के जादू का प्रत्यक्ष अनुभव किया। भारत ने उस महान आत्मा को महात्मा कहा।

सन 1920 में लोकमान्य तिलक का देहावसान हुआ। देश ने महात्मा गांधी को नेतृत्व सौंपा। तब उन्होंने कहा- 'आप सब सकारात्मक काम कीजिए और देश स्वतंत्र हो जाएगा। सन् 1920 में गांधीजी ने चार रचनात्मक काम सुझाए। वे काम थे

1. सांप्रदायिक सद्भाव। अहिंसा मुक्त भारत।
2. अस्पृश्यता जैसी बुराई का समापन।
3. शराबबंदी और नशामुक्त भारत।
4. खादी ग्रामोद्योग : गरीबी और बेरोजगारी से मुक्त भारत।

ये चार आधारभूत रचनात्मक कार्यक्रम थे। इनकी संख्या बढ़ते बढ़ते 18 हो गई। यदि हम सब न्याय पर आधारित शांतिपूर्ण भारत देखना चाहते हैं तो हमें इन चारों कार्यक्रमों को लागू करना होगा।

हम सब चाहते हैं कि हमारे बच्चे एक बेहतर भारत में रहें और इसके लिए हम सबको एक खुशहाल भारत बनाने के लिए योगदान देना होगा। प्रत्येक नागरिक को सोचना होगा कि 'मैं भारत का गौरवशाली नागरिक हूं और एक गौरवशाली भारत के निर्माण में योगदान दे रहा हूं। मैं कानून के भय के कारण ईमानदार नहीं हूं बल्कि इसलिए ईमानदार हूं कि एक यही रास्ता है जिससे कि हमारे बच्चे एक खुशहाल और शांतिपूर्ण जिंदगी जी सकेंगे।

मेरे सपनों का भारत है एक खुशहाल और शांत भारत जो न्याय की भावभूमि पर अवस्थित हो।

(लेखक प्रख्यात समाजसेवी हैं)

●

सपनों को साकार करने की जरूरत

कमल नयन काबरा

जागी आंखों के सचेतन सपने चेतन-अर्द्धचेतन की ऊहापोह से बाहर निकलकर, निजता की सीमाओं को लांघकर, निजता-परता के विभेद से ऊपर उठकर ही सर्वजनीयता की ओर अग्रसर हो सकते हैं। इन खाइयों-खंदकों से पार पाने की मानसिकता, बौद्धिक क्षमता, और नैतिक संकल्पों पर अनेक सवालिया चिह्न आए हैं। न ऐसे प्रयासों की नैतिकता न सारगर्भिता और खासतौर पर न ही उनके साकार होने की संभावनाएं स्वतः सिद्ध हैं। यदि कोई अपने ऐसे सपनों को आम इनसान और हमारे संदर्भ में आम भारतीय का चोला पहन कर देखें तथा प्रस्तुत करें तो इसमें बड़बोलेपन का भाव भी लिपटा नजर आएगा। ऐसे ख्वाबों का वर्णन इन्हें मन की चारदीवारी से बाहर लाकर आपस में हमसफरों में बांटना कहां तक निजता-परता के बंधनों को तोड़ पाता है? कहां तक या कतई असली, सारवान, वैधता की सामाजिक, नैतिक, कसौटियों पर अपने को खरा साबित कर पाता है? और कहां तक व्यावहारिकता, ठोस यथार्थ में परिणित करने के अभियानों द्वारा हाथोंहाथ लिया जा सकता है? ऐसे सवाल और संशय स्वाभाविक हैं। इससे भी आगे, ऐसे एक खास किस्म के विमर्श का, भविष्य में झांकने और उन दिशाओं, दिक्कतों, और उनकी पक्षधर प्रवृत्तियों पर गंभीर चिंतन का आगाज अवश्य करा सकते हैं। ऐसे भविष्य के सपनों और आज के यथार्थ के बीच का फासला स्वयं सामाजिक चुनौतियों, गवेषणाओं, संघर्षों और संभावनाओं का, एक या ऐसे अनेक विशाल क्षेत्रों में, द्वार खोल सकता है।

ऐसे ही कुछ अर्थों में, ऐसी ही कुछ आशाओं और भरोसे के साथ साझे, सामाजिक, आम आदमी की जिन्दगी से उपजे या उपज सकने वाले सपनों को टटोलने के, प्रयासों की जरूरत नजर आ रही है। सच है कटु यथार्थ के कांटे और चट्टानें सपनों पर बंदिशें लगा रहे हैं। सत्तासीनों की अनंत किंतु अतिसंकीर्ण और स्वार्थी-भौंडी महत्वाकांक्षाएं उसको घेरती आम आदमी के वर्तमान, निरंतर जारी प्रतिकूलन की प्रक्रियाओं के द्वारा उसके सपनों को कुछ अंशों में बाधित अवरोधित हीं नहीं भ्रष्ट तक कर देती हैं। इन विसंगतियों का बवंडर अकल्पनीय सा बनता जा रहा है। सपनों पर बंधन लगाना, उनको कटु यथार्थ का कटुतर संस्करण बनाना, सपने की क्षमता और इच्छा तक को कुंद करना, साफ-साफ संकेत है कैसे हमारी सारी

गौरवकारी उपलब्धियां कुछ के लिए वरदान और शेष सभी के लिए बनती जा रही है। जीते-जागते ठोस को बदलने के अपने क्रम को नए-नए रूपों, आयामों और उनसे उबर पाने के सपनों जैसे भ्रमजालों में अटकाती जा रही है। हां, यदा-कदा, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर वास्तविक, जगती अँधेरी रातों में प्रकाशमान, खिलखिलाते सपनों का संगीत बिखरता है। किंतु फिर वही ठंडी-कंपकंपाती रातों का आगोश अपने थपेड़ों में आम भारतीय की जीजीविषा उसके सारे सकारात्मक सांस्कृतिक तथा संघर्षमय ठोस लम्हों के साथ, एक नया अध्याय शुरू कर देती है।

स्पष्ट है अपने जागते, कार्यरत समय की जितनी यादें, अपने अनुभवों और विरासत का सरमाया अपने मानस पटल पर हम आम लोग स्पष्ट, सटीक, संतुलित रूपों में अंकित कर पाते हैं, वे सपने और उन्हें संवारने-सकारने के पाथेय बन सकते हैं। बशर्ते, हम बढ़ते रहें और चलते-चलते चलकर राह बनाते, एक बड़ा कारवां बनने के प्रयास करें। जिस एक अबोध-अकिंचन, बेसुध चैतन्य की बात की जाती है, वह आशाओं, विश्वासों और संभावनाओं की नई मंजिलों और बाधा-दौड़ जैसी रूकावटों के जंजाल से अपने को छुड़ाकर सपनों को सच करने में जुट सकता है।

भारत का इतिहास अपनी ऊंची-नीची, उबड़-खाबड़ पगडंडियों, जनपथों और राजपथों पर आम भारतीय के संघर्षों और सुनहरे सपनों के लिए खून, आंसू और पसीने बहाने की गाथा भी है। नायकों और महानायकों के बीच, उनके केंद्र में वह सर्वव्यापी साधारण इनसान अपनी निरंतरता बनाए हुए है। अदृश्य, अनाम पर सदा-सर्वदा सर्वत्र हाजिर! हमें आलेख मिल सकते हैं महापुरुष मानी जाने वाली हस्तियों के सपनों के किंतु जितने, जहां तक, जिस रूप में, जितनी लागत और उपलब्धियों के साथ परिवर्तन की अजस्र प्रवाहमान धारा ने रूप, आकार, दिशा, गति आदि बदले हैं उनका असली 'हीरो', उनका कर्ता-धर्ता केंद्र-बिंदु आम आदमी ही था, है, और रहेगा। परिवर्तनों के शाश्वत, इतिहास का अपरिर्वतनीय केंद्र बिंदु। बहु-विध प्रतिकूलन के भंवर में फंसा-धंसा आम आदमी।

आज अपनी संभावनाओं को ठोस सकारात्मक स्तर पर साकार करने में नाकामी का शिकार नहीं माना जा सकता है। वह ऐलानिया तौर पर चरेवेति-चरेवेति के मंत्र का अनुसरण कर रहा है। सपनों के संसार में उलझने वाला नहीं है, बल्कि गिरते-पड़ते, उठते-संभलते साथ में आम आदमी एक दूजे को संबल देते, प्रतिकूलन के आयामों, दायरों, गहराई आदि को घटाते, क्रमशः आपदाओं के पहाड़ों को लांघने के उपाय करते, नवाचार के सृष्टा, साधारण जन निराशा के बीहड़ के बीच से अपरिभाषित से किंतु सारवान दिशाबोध रचते हैं चाहे उनका स्पष्ट बयान बहरहाल नहीं हो पाए।

साधारणजन- अपनी संभावित अंतर्निहित शक्ति, भूमिका तथा किन्हीं भी सर्वमान्य मानवीय कालातीत मूल्यों पर अहम भूमिका को यदा-कदा ही निर्णायक बना पाए हैं। भारत ही नहीं, पूरे संसार में। अनेक संभावनाओं के पट खोलने के बाद भी, उच्चस्थ तबकों की संकीर्ण

अहमान्यता अपने विविध प्रकट निजामों के चलते जुगनू सी चमक दिखाकर किसी न किसी किस्म के चलते, एक बार फिर से पुराने ढर्रों के नए संस्करण ले आती है। भारत के संदर्भ में, हमारे घोषित मूल्यों और उनकी उदात्त मनमोहिनी अभिव्यक्ति के विलोम हमारे अभिजात तबकों के व्यवहार कुल मिलाकर प्रतिकूल समावेशनकारी ही बने रहे। एक सतही प्रचलित कथन भारत को विरोधाभासों का, किसी भी अपवाद रहित तथ्यों के अभाव का देश बताता है। इस कथन के पूरी तरह विपरीत है हमारे पूरे परिदृश्य के स्तर पर लगातार जारी बहुमुखी, गहराती गैर-बराबरी का आलम। आम आदमी के सपनों को इस विषमता का नागपाश लगातार कसता रहता है। हमारे अतीत, अस्तित्व और आगत में आम आदमी के अरमानों की अभिव्यक्ति को ये असमानताएं एक अंधकूप में ढकेलती रही हैं।

किंतु असमानताओं के सामने आत्म-समर्पण किसी भी जीवंत, समाज, उसके आम आदमी का अधिकतम एक अस्थायी भाव या तात्कालिक पड़ाव हो सकता है। वैसे आम आदमी भी अनेक विविधताओं को अपने में समेटे हैं। उनमें एकरूपता नहीं शीर्षस्थ, सत्तासीन तबकों के बरक्स विपरीतार्थकता होती है। अतः उनके सपनों की भी सापेक्षिकता होती है। एक आजीविका-संसाधनों- सामान्य सुविधाओं से विहीन साधारण नागरिक के लिए तो यह कहना भी शायद आंशिक सच ही हो कौन कहता है कि सपनों को न आने दे हृदय में। देखते सब हैं इन्हें अपनी उमर, अपने समय में।' इन सपनों में एक अच्छा, भरपूर मिलने वाला भोज तो हो सकता है, किंतु अनेक को ऐसा भोज मिल सके यह किसी प्राप्ति के अवसर पर अभिजातों द्वारा भले ही हो, आमंत्रित आयोजन उसे एक यथार्थ परक सपने के रूप में देखना शायद एक बड़ा अपवाद ही हो। वास्तव में जन साधारण अपनी निजता मात्र के आधार पर शायद ही कभी बड़े सपने, समय, समष्टि और समग्रता को अपने में समेटते सपनों देखे। उनके सपने तभी जागृत यथार्थ में मायने ग्रहण कर सकते हैं। जब उनकी सामुदायिकता या सामाजिकता प्रबल हो। सामूहिकता-सामुदायिकता की कोई एक नैसर्गिक स्वयं अपने आपको परिभाषित, संगठित और सक्रिय करने वाली एकल इकाई के रूप में इतिहास के पक्षों में शायद ही नजर आए। इनकी निर्मिति की अनेक प्रक्रियाएं देखी गयी हैं। सामूहिकता को अनेक आधारों की जरूरत होती है। उदाहरणार्थ, पुरानी बसावटों वाले प्रदेशों और लोगों के इतिहास की विरासतें- सकारात्मक और नकारात्मक दोनों- अपनी सारी विविधताओं, जटिलताओं के साथ अपने वर्तमान भौतिक, बाहरी संसार और वैचारिक-मानसिक दृश्य-अदृश्य आदि सतहों पर काम करती देखी गई हैं। इन सब साझीदारियों का कोई एक व्यक्ति अपने स्तर पर अनुमान भर लगा सकता है।

आम स्त्री-पुरुष या नागरिक के सरोकारों, संघर्षों और सपनों के संसार का कयास लगाना एक लंबी वैचारिक-काल्पनिक छलांग भर होते हैं। कल्पनाओं, विचारों तथा फंतासियों के मिले-जुले रूपों के बारे में बस इतना भर कहा जा सकता है कि ऐसे प्रयासों के नतीजों के माध्यम से ही उन्हें जांचा-परखा जा सकता है।

सामूहिकता का एहसास होना, उसके आयामों की पहचान और उनको मानस पटल से सपनों तक पहुंचाना ऐसे मसले हैं जिन पर स्पष्ट धारणाओं का आम तौर पर अभाव होता है। संभवतः ये प्रक्रियाएं भी कम समझी-बूझी जाती रही हैं। सपने की सचेतन खोज, उनकी अभिव्यक्ति हमेशा आगत के चित्र उकेरे यह जरूरी नहीं है। हमारा प्रयास सपनों को आने वाले वक्त से जोड़ना, उनसे प्रेरणा, दिशा-बोध पाना है। बीते कल के सपने शायद उन पलों की आज और आगत के लिए याददाश्त का काम करे। क्या ऐसे सपने आगत के लिए सबक पेश कर सकते हैं, यह जागी आंखों की बहु-विधि क्षमताओं का मामला है।

मुख्य बात है विषमताओं के जाल में, कर्ता-धर्ताओं, शक्ति-क्षमता और वैधता पर काबिज लोगों के चक्रव्यूह में आम पिछड़े-प्रताड़ित-प्रतिकूलित तबकों के सपनों तक पहुंचाना और उन तक पहुंचना। यहां एक दूसरा, विषमता से जुड़ा और उस जैसा पहलू सामने आता है : विविधता विषमता और विधिता बहुरूपी, बहु-स्तरीय होने के साथ-साथ सरलता से सामान्यीकृत विशेषताओं को भी उजागर नहीं कर पाती है। भारत में इन दोनों के घालमेल ने सामाजिक कल्पना, चेतना और समझ के लिए कठोर चुनौतियां पैदा की हैं। इनके परदे उठाकर उन्हें देख-परखकर व्यावहारिक स्तर पर साझी कार्यप्रणाली बनाकर समझाने से आगे बढ़ना बहुत दुष्कर काम हैं। अनेक सामाजिक ज्ञान धाराओं ने इन जटिलताओं के सागर का मंथन किया है। इस सागर-मंथन से जितनी रोशनी, ऊर्जा और प्रेरणा मिली है, उसी प्रकार उनकी वैधता और परिपूर्णता, उनकी सर्वकालिक सार्थकता के बड़े-बड़े परस्पर टकराहटकारी दावों को भी जन्म दिया है। अनेक और ज्यादा प्रभावशाली और प्रचलित ज्ञानपीठों ने बहुधा आम आदमी को सारथी नहीं, सवारी बताया है और सारथियों की जमात के प्रवक्ता बन गए हैं- उनके सपनों को साकार करने के लिए एक खास साधन के रूप में। सवारियां निष्क्रिय, सारथियों पर निर्भर?

इन सब प्रक्रियाओं द्वारा इतिहास रचा जाता है उसमें नई निर्मितियां जोड़-तोड़ कर। परिवर्तन की इन शाश्वत प्रक्रियाओं में आम आदमी के सपनों का एक सहायक तबका मध्यम वर्ग के रूप में, अनेक कारणों से, अनेक मायनों में, अनेक भूमिकाओं और साथ में अपनी खुद का एजेंडा लेकर पैदा होता है। इस जटिलताओं भरे, मध्यम अवस्थिति वाले समूह की साधारण आदमी के जागी आंखों के सपनों के संदर्भ में क्या भूमिका हो सकती है यह काफी विचारणीय, विवादित किंतु व्यावहारिक सवाल रहा है। समाज या किसी भी राष्ट्र की अनिवारणीय व्यापकता, विविधता आदि की ओर हमने संकेत किया था। पूरे राष्ट्र या समाज न तो निजता-परता की दो फांकों में बांटकर समझे जा सकते हैं और न ही एकपक्षीय निजता परता विभाजन के तहत दोनों धड़ों में बंटे बड़े समूह द्वारा एक-दूसरे को अंगीकृत करके किसी भी सारवान विमर्श की आधारशिला नहीं पेश नहीं कर सकते हैं क्योंकि सच्चाई में अन्य धड़ें और विभाजन भी मौजूद रहते हैं। मध्यम तबकों की जिम्मेदारी है संवाद, संतुलन और समरसता बढ़ाना ताकि अनुकूलनकारी ताकतों को बल मिले।

वास्तव में विषमता-विविधता में बीज छिपे रहते हैं प्रतिकूलन के शीर्ष का जड़ों से

एकतरफा रिश्ता जो जड़ों से रस, जीवन तत्व खींचता है, किंतु उन्हें वाजिब और मानवीय यानी एक ही व्यवस्था के परस्पर जुड़े, अन्योन्याश्रित संबंधों से उपजी पारस्परिकतामय मानवीय अधिकारों, रिश्तों और हिस्सों से वंचित रखते हैं। एकलपक्षीय दुराग्रह और उनके अनुभव शक्तियों का वंचना, उपेक्षा, न्यायविहीन इस्तेमाल पारस्परिकता को प्रतिकूलन में बदल देता है। इस विविधतामय विषमता में शिखर और जड़ों के बीच अपनी खुद की विषमता-विविधता के कई अंग होते हैं। उनकी भूमिका अनेक प्रकार की शिखर-पक्षीय और तृणमूल अनुरागी होने के साथ-साथ पूरी समग्रता के बीच समन्वय संतुलन-सहकार आदि की न्यायपूर्ण, मधुरतामय संबंधों को परिभाषित करने से लेकर उनकी स्थापन और संचालन सहायक हो सकती है। क्या सुखद सपनों और दुस्वप्नों के बीच का फासला सपनेतर संसार तक ही सिमटा रह सकता है? ऐसे संबंध, ऐसी पुनर्रचना बहुत कष्टसाध्य, संघर्षमय का होना भी जरूरी हो सकते हैं। सर्वसमभावी सहभागिता की स्थापना प्रतिकूलन को घटाने और अनकूलन को बढ़ाने में अहम योगदान कर सकती है। ऐसे प्रयास स्वतः स्फूर्त हो यह जरूरी नहीं है। उन्हें अनेक प्रकार की बाधाएं पार कर दिशा, गति देकर गंतव्य की ओर अग्रसर करने में इन मध्यम तबकों की भूमिका सपनों को साकार करने में सहायक होती है।

मध्य वर्ग के सपनों के संदर्भ में बहुमुखी भूमिका हमेशा जमीनी तबकों के पक्ष में और शिखरों से टक्कर लेने के लिए ही खड़ी हो यह कोई अनिवार्य स्वाभाविकता नहीं है। देखा जाए तो शिखरकर्ता की शक्ति क्षमता जिन आधारों पर टिकी होती है, उनकी स्थापना और संचालन जिन हाथों, कंधों और दिमागों के बलबूते होता है, वे स्वयं अपनी पहचान बना लेते हैं। अपना मुकाम तय करके। तात्कालिक लाभ, सम्मान के साथ उनकी लालसाएं और महत्वाकांक्षाएं कई बार लंबी, ऊंची छलांग लगाने में सफल होकर शिखर पर काबिज भी हो जाते हैं। कैसे, कैसे यह होता आया है, इनको महज बड़े सपने लेने की सीख और प्रेरणा देने वाले तत्व बहुधा नजरअंदाज कर बैठते हैं। मध्यम तबका स्वयं शीर्षस्थ बन जाए यह रूपांतरण की त्रासदी है जो कई क्रांतियों और क्रांतिकारियों को प्रतिक्रांतिकारी बनाती आयी है। वे सपनों और खयाली पुलावों में भेद नहीं कर पाते या नहीं करना चाहते। तब शायद उन्हें मुंगेरी लाल के हसीन सपनों का ढ़िढोरची या सौदागर कहना अनुपयुक्त नहीं होगा।

सपनों का रिश्ता किसी न किसी रूप और स्तर पर जी गई-भोगी गई जिंदगी से होता है। बैलगाड़ी या गांव की टूटी-फूटी सड़क पर चलने वाला हवाई यात्रा का सपना, ऐसी फैंटेसी की उड़ान, शायद ही कभी ले। किंतु उनकी नींद अनेक डरावने-बुरे सपनों से अवश्य उचटती रहती है। इन दुःस्वप्नों के जाल-जंजाल से बच पाना, अपने आप में सुकून देता है। किंतु क्या हमारे लोकतंत्र में कानूनी समानता से नवाजे गए आमजन अच्छी जिंदगी पाने की जद्दोजहद में अपनी सक्रिय, सफलता की ओर बढ़ती लड़ाईयां या उसमें जहर घोलती बदसलूकियों, भ्रांतियों के विरुद्ध प्रतिरोध के सपने भी संजोते हैं? आज की सच्चाइयों, अन्याय, प्रतिकूलन, प्रताड़ना आदि की चारों ओर लगातार जारी घटनाओं तथा प्रक्रियाओं और उनके नतीजों के बारे में

जानकारियां बढ़ रही हैं। सफल या सफलता की ओर बढ़ती अनेक घटनाओं, परिदृश्य और उनके चलाने-बढ़ाने वाले लोगों, उनके नाटकों, दोमुंहेपन और धोखेबाजी के वाक में भी काफी चर्चा में रहते हैं। फिर भी सुंदर सपनों के संसार को रचने और उन्हें हकीकत में उतारने के लिए आवश्यक तौर-तरीकों के बारे में हमारे 'विद्वानों' को समझ से बढ़ती, सुघड़ होती, सटीक समझ और संवेदना तो शायद फैल रही हो, किंतु उन्हें संगठित सुव्यवस्थित रूप से भुनाने के प्रयास अभी पीछे छूटे हुए ही हैं।

अभी तक हम आगत के लिए संजोए सपनों की विषय-वस्तु, उनके थीम आदि पर कुछ विचार नहीं कर पाए हैं। यह एक अनछुआ एजेंडा ही है, आम आदमी के नजरिए से। आजादी के लिए व्यापक दीर्घकाल तक चले विभिन्न आंदोलनों के पीछे भी आजाद, लोकतांत्रिक, न्याय, एकता और भाईचारे के तत्वों भरे स्व-संचालित स्वराज और सुराज, एक नए रामराज्य के जागी-आंखों के, व्यक्तिगत तथा संस्थागत सपनों को ठोस कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं और बदलावों का रूप दिया था। सबके साझे स्वाधीनता संग्राम के हिस्से बने बिना भी कई निहित स्वार्थ (जैसे देसी रियासतों के राजा-महाराजा, नौकरशाही, अंग्रेजी हुकूमत में ऊंचे पदों पर आसीन तबके) अपने लिए और भावी भारत के लिए सपनों का वितान बुनते थे। कई सपने एक पुण्य-पुरातन संस्कृति के कण-कण की पुनर्रचना की कामना लेकर भी संगठित हो रहे थे बिना परदेशी, निरंकुश शासन-तंत्र और उनके देशी पिठ्ठू टोडी बच्चों की खिलाफत में लामबंद हुए तो भी क्या यह अतीत का पुनर्जीवन का सपना साकार होना संभव था? इसी दौरान चैंबर ऑफ प्रिंसेज के सदस्य भी अपनी शानो-शौकत और निरंकुशता को बदस्तूर बनाए रखने की जुगत में जुटे थे। किंतु जमाने की हवा, समय की गति और सारे संसार में न्याय, समता, समरसता, वैज्ञानिक सोच, अंध-विश्वास निवारण के लिए प्रतिबद्ध विचारों और संगठनों, खोजों, अनुसंधानों का आत्मसात् कर, उनको हमारी स्थितियों के अनुरूप ढालने के विभिन्न स्तरीय प्रयासों आदि के द्वारा नव-जागरण, नव-चेतना, नव-निर्माण के सपनों को साकार करने के संकल्पों के साथ भी आगे बढ़ रहे थे। चाहे अपर्याप्त हो किंतु स्पष्ट दिशा और सामाजिक-साझे कर्तव्य-बोध पनप रहे थे। अरबिंदो घोष की किताब 'हमारी स्वतंत्रता कैसी हो' में एक बानगी देखी जा सकती है। दूसरी ओर, पिछड़ेपन में डूबे, गैर-बराबरी के एक स्तंभवणिक वर्ग के व्यक्तिगत उदाहरण भर ही नहीं उनके नए सामूहिक संगठनों में भी नए सपनों के संकेत मिलते हैं। बनिया वर्ग के एक घटक महेश्वरियों के अखिल भारतीय अधिवेशन के सत्र के अध्यक्षीय भाषण में इन समूहों को जमाने का रुख समझकर, यहां तक कि उस दौरान सोवियत संघ में हो रहे रूपांतरणों से सीखने का संदेश भी दिया गया है।

नई सोच, तथा सपनों का मजदूर वर्ग और साम्यवादी-समाजवादी विचारधाराओं की साम्राज्यवाद विरोधी जन आंदोलनों की कांग्रेस और गांधीजी के नेतृत्ववादी मुख्यधारा में भागीदारी और कुछ व्यवसायी वर्ग संस्थाओं द्वारा आजादी के आंदोलन का समर्थन आजाद भारत की राजनीतिक चेतना और नव निर्माण के सपनों की दिशाओं के संकेत दे रहे थे। इनमें

ग्रामीण भारत और भूमि-संबंधों की न्यायपूर्ण पुनर्रचना के सपने भी आम भारतीय के हितों के प्रतिबिंब बन रहे थे। किंतु भारतीय समाज के सबसे ज्यादा प्रताड़ित, शोषित और रंगभेद जैसे अन्याय के शिकार दलित वर्ग (जो कई स्वयं में असमानताकारी जाति व्यवस्था के नासूर के प्रसार का नतीजा था) के सपनों को राष्ट्रीय मानवीय एजेंडे का भाग डॉ. अंबेडकर, पेरियार जैसे नेताओं ने न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उसकी उपेक्षा के कुछ दुष्टतापूर्ण अध्यायों का पटाक्षेप भी कर दिया। काश! देश की मुख्य धाराएं, दलितों के खिलाफ अत्याचार को वर्ग, वर्ण और जाति व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में देखकर मानवीयता से ओत-प्रोत भारत के आमजन के सपनों में रूप-रंग भरतीं।

आज भी वोटों के गणित के प्रलोभन से ग्रस्त मुख्यधारा राजनीति जाति प्रथा और महिलाओं की दुष्प्रभावित (वलनरेविलिटी) के दुःस्वप्न से निजात दिलाने वाले सच्चे समतावादी सपनों को तत्कालिक, सतही लोकलुभावनवाद की अनुचरी भर बना रहे हैं। स्वयं दलितों के बीच एक छोटे अभिजात वर्ग का निर्माण करके उसके आत्मसात् अथवा को-ओप्ट करती हुई। दलितपंथी जातिगत राजनीति के संकीर्ण, निजी पारिवारिक स्वार्थों की साधना के कई मॉडल और संगठन चल निकले हैं। चुनावी गणित और छल-बल, धन-बल, बाहुबल की राजनीति द्वारा आम आदमी के सात्विक सच्ची सामुदायिकता-सामाजिकता का विलय हो रहा है। लोकतंत्र को धनिकतंत्र और याराना पूंजीवाद नवउदारवादी के रूप में संचालित किया जा रहा है। आम भारतीयों के सपनों की, यहां तक कि सबाल्टर्न यानी जमीनी स्तर तथा मध्यम वर्ग को भी अंध, भोगवाद तथा संग्रहणकारी तुच्छ-क्षणिक आनंदवाद के सपनों और बलवती ललक में लटकाया जा रहा है।

ज्ञान, संचार, साहित्य और संस्कृति भी जो सामान्यतः सच्चे सपनों का समुच्चय होते आए हैं या तो निरी कपोल कल्पनाओं, थोथी, सतही वैज्ञानिकता, निपट सांप्रदायिकता, वैश्विक अंधानुकरण तथा हिंसक आतंकवादी हिंसा, प्रतिहिंसा के विनाशकारी दुष्चक्र के उपादान बना दिए जा रहे हैं। इन सबके पीछे कंपनी क्षेत्र के नेतृत्व के साथ राजनीतिक दलों का व्यवहार स्तर पर एकीकरण विश्वव्यापी विषमता को गहरा रहे हैं। आम आदमी और उसके सपनों को गरीबी निवारण जैसे लोक लुभाऊ यथास्थिति को बदतर बनाने वाले सपनों में उलझाया जा रहा है उसकी आत्म-पहचान और सपनों को भ्रामक परदों में ढांपकर। हर तरह के संसाधनों, शक्ति, क्षमता पर बढ़ता अल्पाधिकारी शिकंजा गहराती गैर-बराबरियों का दूसरा नाम है। आम आदमी के आज के अस्तित्व और भविष्य के सपनों पर आक्रमण, उसके अधिकारों के अतिक्रमण और उसके अस्तित्व पर अजगरी कुंडली जमाने का आधार यह चतुर्दिक छाया हुआ अल्पाधिकारी शिकंजा है। इन सबके नतीजे और सहायक के रूप में सूचना और ज्ञान-तंत्र असत्य और अज्ञान का सर्जक, प्रचारक और आम जन विरोधी दुरूपयोगकर्ता बना दिया जाता है। इसका भारत के आम नागरिक के दृष्टिकोण से बहुत खतरनाक और बहुप्रचलित, मुख्यधारा विकास, विमर्श बन चुका है। इसमें हमारा रूप, भागीदार बनकर पश्चिमी देशों की अधिशासी

व्यवस्था भी जन-विकास विचलन के लिए जिम्मेदार मानी जा सकती है। इस विमर्श के अंतर्गत गरीबी, बेरोजगारी, पिछड़ेपन आदि का समाधान जीडीपी के ऊंचे स्तर और उसकी अनवरत वृद्धि में बताया जा रहा है। ऐसी वृद्धि ने अभूतपूर्व ऊंचाइयां पार की है, किंतु कष्ट, विषमता, विसंगतियों और अन्याय की त्रासदियां लगातार बनी हुई हैं, बढ़ रही हैं। यथा स्थितिबर्द्धक आर्थिक वृद्धि को मूलमंत्र मानते हुए नियमित बाजारों, पूंजी निवेश, मुक्त व्यापार को खुली सीमाओं के तहत राज्य द्वारा वैधता प्रदान निजी कंपनियों को पाल-पोस कर 'विकास' के सपने बेचे जा रहे हैं। नतीजे इन वादों के बिल्कुल विपरीत मिले हैं।

इस प्रकार विकास-विमर्श की विकृति तथा विफलता करोड़ों भारतीय परिवारों की कष्टमय जीवन यात्रा के पग-पग पर देखी जा सकती है। हम इस सोच और उसके क्रियान्वयन को दो तरह से आंक और देख सकते हैं। जब भारत से अंग्रेजी राज की विदाई तयशुदा हो चुकी थी, भावी विकास के बारे में कुछ सोच-विचार भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की मुहिम के अग्रिम दस्ते उस दौरान गांधीजी के नेतृत्व में पनपी सर्व समावेशी राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के साथ-साथ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में आगे बढ़ती आधुनिक आर्थिक वृद्धि के सबसे ज्यादा संगठित निजी कंपनी क्षेत्र की शीर्षस्थ हस्तियों ने बाकायदा प्रकाशित किए। उनमें आम आदमी के सपनों की अभिव्यक्ति रूपी एक बड़ा बिंदु बहुत उल्लेखनीय नजर आता है। दोनों ने एक आम भारतीय परिवार की कुछ मूलभूत आवश्यकताओं को चीन्हा और विकास का लक्ष्य उनकी पूर्ति करने को माना। ये बेसिक या मूलभूत जरूरतें ही, अपने पूरे सरंजाम के साथ आर्थिक विकास का ठोस रूप, या कहिए सच्चा सपना माना गया। ध्यान दीजिए, आर्थिक वृद्धि की दर और गति को ठोस मूलभूत बहुमुखी मानवीय आवश्यकताओं से जोड़कर, उनके संदर्भ में परिभाषित किया गया। इसी सपने को एक दूसरी अभिव्यक्ति मिली प्रत्येक व्यक्ति को स्व-चयनित जीवन की ओर बढ़ने में सहायक उपायों के रूप में।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरुआती पृष्ठों पर विकास की समस्या को सचमुच उसकी प्रभावी समग्रता में समझा गया किंतु ये विचार महज शाब्दिक माया जाल बना रह गया। व्यावहारिक सपनों या प्रश्नों की ओर बढ़ने से पहले योजना आयोग के इस दस्तावेज ने बीसवीं सदी के तीसरी दुनिया के लिए विरोध रूप से प्रस्तावित-प्रचारित विचारधारा के तहत पूरी तरह आर्थिक तत्वों को प्रमुखता देने वाले सोच और रणनीति, उद्देश्य पूर्व शर्त और एजेंडा को जीडीपी वृद्धि और विकास को समानार्थक घोषित करते हुए मान लिया। अच्छे जीवन के सपनों को विद्यमान स्थिति के गुब्बारे में ज्यादा हवा भरने तक बांध दिया गया। कहा गया व्यवहारिकता, क्रियान्यवन संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए कमोबेस विद्यमान आर्थिक ढांचे और प्रक्रियाओं द्वारा, उनमें राजकीय सक्रियता और आर्थिक-वित्तीय नेतृत्व का पुट जोड़कर, सकल राष्ट्रीय आय की वृद्धि के द्वारा हम विकास पथ पर अग्रसर होते रहेंगे। यह एक ऐतिहासिक समझौता, कठिन चुनौतियों से मुंह मोड़कर, यथास्थितिवादी, पलायनवादी कदम था। इसने भारतीय सदृश्य सात्विक विकास पर ग्रहण लगा दिया।

जीडीपी अब विकास का इस कदर बहुप्रचलित पर्याय, पूर्वशर्त, उद्देश्य तथा साध्य और साधन का एकमेव हुआ रूप बनकर हमारी विकास चर्चाओं में एक स्वयं-सिद्ध और सर्वमान्य रूप धारण कर चुका है। बचत और निवेश इस उत्पादन वृद्धि रथ के सबल इंजन मान लिए गए हैं। भारत को साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी शिकंजे से राजनीतिक रूप से मुक्त की मजबूरी के बाद पश्चिम ने अपनी आर्थिक व्यवस्था को आर्थिक वृद्धि और विकास की समानार्थकता हमसे 'स्वैच्छिक' रूप से मनवा कर हमारे पूरे राष्ट्रीय, स्व निर्धारित भावी जीवन पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। हमारी आंखों से, हमारे मानस पर उन जैसा बनने के सपनों का ताना-बाना बन गया। हमने पिछले करीब पांच सौ साल के वैश्विक मूलभूत दूरगामी बदलावों के सतही तथा संकीर्ण स्वार्थ प्रेरित इतिहास के गलत निष्कर्षों को अपना सपना बना लिया। जीडीपी वृद्धि रूपी विकास स्वप्न किस तरह तीसरी दुनिया के लिए अभिशाप साबित हुआ है, एक दुःस्वप्न की भांति यह विश्वव्यापी विषमताओं, तीसरी दुनिया के पश्चिम की अंधी, विवेकहीन नकल बनाने के महंगे और अनिष्टकारी पराश्रित परिणामों में नजर आता है। अब तो जीडीपी वृद्धि आधारित विकास स्वप्न की दुखद गाथा बहुत व्यापक मान्यता पा चुकी है। 1950 के दशक से शुरू होकर अनेक अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों ने जीडीपी वृद्धि के दुस्वप्न की अनखुली परतें उघाड़कर रख दी हैं। हम यहां इस विमर्श के इन महत्वपूर्ण तथा जगजाहिर खामियों और भारी बहुमुखी लागत की चर्चा नहीं करेंगे।

इस कदर हमने आंखों पर पट्टी बांधकर, अपनी सर्वग्राही सामाजिक, सांस्कृतिक संवेदनाओं और मूल्यों को तिलांजलि देकर जीडीपी वृद्धि के तिलस्म में अपने को डूबो लिया उसका केवल एक प्रमाण यहां पेश करेंगे। जीडीपी वृद्धि की गणना अनेक तकनीकी व्यावहारिक आपत्तियों, दिक्कतों, कृत्रिमताओं और आरबीट्रेरी पूर्वकल्पनाओं की शिकार है। उसका सही और सच्चा अनुमान बहुत कुछ हमारी मनमानी तर्कहीन तदर्थ परिकल्पनाओं पर टिका रहता है। अतः विभिन्न देशों और समय-अवधियों की जीडीपी के अनुमानों की आपस में सही और व्यावहारिक गणना संभव नहीं हो पाती है। इसके मनमाने, कृत्रिम आंकड़े राजनीति के हाथ के खिलौने बन गए हैं। एक उदाहरण हमारे मंतव्य को सटीक रूप में प्रकट कर सकता है। जीडीपी यानी सकल राष्ट्रीय आय किसी अवधि विशेष की चालू बाजार कीमतों के रूप में व्यक्त की जा सकती है। ऐसा करने पर उसका अतीत की राष्ट्रीय आय से तुलना संभव नहीं रह जाती है क्योंकि किसी भी गतिमान अर्थव्यवस्था में स्थिर, अपरिवर्तित कीमतों की परिकल्पना तरल पदार्थों के एक स्थान पर जमे रहने के समान गलत होती है। इसलिए विकास विमर्श में जीडीपी गणना किसी एक वर्ण को आधार वर्ष मानकर उन्हीं कीमतों में प्रकट की जाती है। चालू कीमत आय को नोमिनल यानी मौद्रिक जीडीपी तथा स्थिर, आधार-वर्ष कीमतों पर प्रकट की गयी आय को वास्तविक जीडीपी कहा जाता है। इन आंकड़ों की अंतरराष्ट्रीय तुलनीयता और ज्यादा कठिन पूर्वकल्पनाओं का प्रतिफल तथा तदर्थतापूर्ण होती है। इसी तरह यह बहुधा स्पष्ट किया जा चुका है कि विकास महज उत्पादन की मात्रा के आधार पर जीवन

की गुणवत्ता, साख, टिकाऊपन, सामाजिक न्याय, जनकल्याण आदि को नहीं समझा जा सकता है। विकास वास्तव में एक पूरे मानवीय सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन की समग्रता को समझे बिना आधे अधूरे, लंगड़े, अँधे, अपाहिज जीवन का दोषपूर्ण और भ्रामक चित्र ही पेश कर सकता है। हम जिन जीती जागती, आंखों के सपनों की चर्चा कर रहे हैं, जो अन्यों की जिंदगी की चमक और रौनक से भौंचक बना दिए गए हैं उनका तो जीडीपी वृद्धि रूपी या उसके समानार्थक विकास से कोई दूर-दूर तक का समझने लायक और प्रकट करने लायक रिश्ता नहीं होता है। उसे स्वीकार करना, मान्य और स्थानीय मानना हो सरासर सोच के स्तर पर ही झूठे सपनों का वरण होता है। वास्तविक जीडीपी और नोमिनल या मौद्रिक जीडीपी तो अलग-अलग गति, दिशा और अंतर रचना पूर्ण होते ही हैं। एक परिवार या व्यक्ति का भला-बुरा तो वास्तविक आय पर निर्भर रहता है और मौद्रिक आय मात्र एक भ्रमजाल और वित्तीय मानसिकता को प्रकट करता है।

किंतु जीडीपी वृद्धि विचारधारा मौद्रिक आय को महत्व देती है। निवेशकों को प्रेरणा देने वाले तत्व के रूप में मौद्रिक आय और चालू कीमतों में प्रकट की गयी संपत्ति और परिसंपत्तियों की कीमत निवेशक की आर्थिक वित्तीय शक्ति और क्षमता तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक रूतबे का मानदंड होती है। किंतु न तो मौद्रिक आय विभिन्न अवधियों के उपभोग स्तर को प्रकट कर सकती है न उनकी संतुष्टि या कल्याण यानी लाभ को। स्पष्ट है विकास का माप दोनों ही प्रकार से आंकलित राष्ट्रीय आय नहीं कर सकती है, खासतौर पर दोनों किस्म के अनुमानों के अंतर और अलग-अलग दिशाओं के कारण। राष्ट्रीय आय के अनुमान इतनी विविधतापूर्ण और तदर्थ पूर्वकल्पनाओं की वजह से भी किसी वास्तविकता की घोतक नहीं हो पाती है।

भारत की मौद्रिक राष्ट्रीय आय 1950 से 2011 तक की वृद्धि आधिकारिक रूप से करीब-करीब एक हजार गुणा बढ़ी। दूसरी ओर, वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि 30 गुणा से भी कुछ कम। अब एक आम भारतीय जिसके पास अपनी अनप्रयुक्त अपूर्ण प्रयुक्त श्रमशक्ति ही आजीविका अर्जन का मुख्य साधन है, कैसे मौद्रिक या वास्तविक आय वृद्धि में अपने कल्याण और सुख-समृद्धि और नागरिक हकों की पालना के ख्वाब देखें? न तो यह उत्पादन वृद्धि उसे आजीविका के पुख्ता, पर्याप्त तथा निश्चित पूर्ण अवसर दे पाती है, न उसकी येन-केन प्रकारेण प्राप्त की गई मौद्रिक आय की वास्तविक क्रमशक्ति के स्थिर रहने या बढ़ने की पुखता गारंटी। उसके अन्य अनेक अनिवार्य दुष्परिणाम बिना लाभों में भागीदारी के उसके सिर पर मढ़ दिए जाते हैं। जाहिर है ऐसे आर्थिक बदलाव जो लाभों में हिस्सेदारी न दे या अनिश्चित और अपर्याप्त दे किसी भी अर्थ में सुविकास के सूचक नहीं हो सकते हैं।

सच है कि मन की धरती और मनोकाश के मध्य में स्थित कई स्तरों में सपनों का सृजन होता है। किंतु जागती आंखें और उनकी उद्वेलित चेतना ठोस सांसारिक साझे जीवन से जुड़े बिना नहीं सपना देख पाती हैं। भारत का इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दशकों के आम आदमी

का दैनिक-जीवन हर पल हर पहलू में अपने आसपास और काफी दूर तक एक छोर पर घिरा रहता है अति-संपन्न अतिशक्तिमान, अति-प्रतिष्ठित तबकों के अति प्रभुत्व के साए में दूसरी ओर 'लोकतंत्र मान्य अधिकारों तथा तथाकथित समावेशन-अनुकूलन के आश्वासनों का सहारा लेकर कई-कई किस्म के सपनों के सौदागर अपने हितों की सप्तरंगी चादर में लपेटकर अभिजात तबकों की चाकरी में नए-नए नारों वादों तथा ख्वाबों का बाजार तथा सदाव्रत चलाते हैं। वास्तव में वे आम आदमी की जागी आंखों के सपनों पर बेरहम बंदिशों की बेड़ियां जड़ देते हैं अथवा गाहे-बगाहे उन्हें जमीनी स्तर पर दुःस्वप्नों के अंधेरे में धकेल देते हैं। अपनी शक्ति-क्षमता और संपन्नता के जोर से उनके सपनों को 'अपने' ठोस यथार्थ-पथ का पाथेय बना लेते हैं। यह कहते हुए कि तुम्हारी गरीबी से मुक्ति की मनोकामना हमारी समृद्धि के निरंतर प्रसार द्वारा ही संभव है। समतामय समाज के अभाव में गरीबी-निवारण वास्तव में महज मृग-मरीचिका है इस सत्य को नकारते हुए कानूनी नागरिक रूतबे वाला आम आदमी व्यवहार में, सामाजिक निर्णय प्रक्रिया में मताधिकार विहीन रह जाता है। इस तरह के मायाजाल में कुछ संवेदी-सहिष्णु जन भी अलख जगाते रहते हैं जनाधिकारक सुहावने सपनों की। ये सपने आम आदमी के मन में भरोसे का उत्साह रगों में जोश भरकर सामाजिक व्यवहार को सबके विकास, सच्चे विकास की दिशा में मोड़ सकते हैं। इनकी संभावनाओं का रास्ता रोकने के प्रयास सपनों के सौदागर इन सपनों पर 'दिवा-स्वप्न' 'मजाक' 'भावनाओं का खिलवाड़' आदि भांति-भांति के तमगे टांग कर खोखला और इन सपनों को प्रभाव शून्य बनाने की कोशिशें करते हैं। इन सब बाधाओं के बावजूद इन दुष्चक्रों में फंसे आम आदमी की जागी आंखों में कभी ऊंघते तो कभी कौंधते सपने अपनी अहमियत रखते हैं। खास तौर पर जब ये सपने साझे सपनों का रूप और इस तरह प्राप्त ऊर्जा से अभियानों, आंदोलनों की शक्ल में जमीन पर उतरने लगते हैं।

साफ है ऐसे सपने विश्वास जगाते हैं, और गति, दिशा और ताकत देते हैं। इनको अटकाने और निष्क्रिय करने की कई मुहिमें चलाई गई हैं। याद कीजिए आम आदमी के कष्टों, बाधाओं से लड़ने-भिड़ने और आगे बढ़ते हुए रहकर सपनों को साकार करने की क्षमता और शासक वर्ग की चालबाजियों को दर्शाता अकबर-बीरबल का एक किस्सा। कड़ाके की सर्दी के मौसम में यमुना में खड़े रहकर रात गुजारने वाले गरीब के साथ बादशाह सलामत की बदसुलूकी की कहानी याद कीजिए उसका शाही इनाम पाने का सपना तोड़ा गया यह कहकर कि शाही महल के सुदूर चिराग की टिमटिमाती रोशनी की गरमी ने उसे सहारा दिया। आज के नवउदारवादी, पूंजी-परस्त आर्थिक प्रसार पोषक शासकों तथा कंपनियों का गठजोड़ तथा कथित गरीबी निवारण लोकरंजक कार्यक्रमों के तहत आज के आम आदमी के सपनों को अधोगामी विकास फलों की गर्मी से ठीक मुगलिया बादशाह के महल के चिराग की रोशनी की तरह। ठीक वैसे ही नक्शे कदम पर चलकर आज के जमाने के स्वप्न भंग कार्यक्रम चला रहे हैं ताकि उनकी फलती-फूलती सल्तनत बरकरार रहे।

इसके विपरीत एक सकारात्मक मानवता-सामाजिकतामय मानसिकता आम आदमी की

आम पहचान आम तौर पर देखी गई है। इस पूर्व कल्पना के आधार पर हम एक आदर्श कल्पनालोक के सपने के साथ आम आदमी के सपनों के भारत का चित्रण करके इस आलेख का समापन करेंगे। प्रकृति की गोद में इठलाते उसे संभालते संवारते भाईचारे के गहरे, अटूट रिश्तों द्वारा आपस में बंधे हमकदम भारतवासी अपनी साझी विरासत को जीते और पल्लवित करते नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के आधार पर मिल-जुलकर बराबर की भागीदारी से जीवनोपयोगी साजो-सामान बनाए, भोगे और आने वाले वक्त के प्रति भी उतने ही कर्मठ और कर्तव्यनिष्ठ रहें जितने आज के इस पल के लिए हैं ताकि एक सच्चा, यथार्थपरक सतयुग जमीन पर उतर आए हमें विश्वमानव का अभिन्न रूप बनाए रखते हुए।

'दिशि-दिशि में प्रेम-कथा प्रसार, हर भेदभाव का अँधकार हम पूरी अखंड मानवता के निश्छल, निष्काम प्रेमी बने रहे। इस सपने को देख-सुनकर कोई तथास्तु की आकाशवाणी नहीं होने वाली है। अतः हम अपनी जागी आंखों के ऐसे सपनों को साकार करने में स्वयंमेव ही जुट जाएं यही है ऐसे सपनों की सार्थकता सच करने का रास्ता।

(लेखक सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं)

●

सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्रचना के प्रश्न

विभांशु दिव्याल

मेरे सपनों का भारत कोई ऐसा यूटोपियाई भारत नहीं है जहां सभी संपन्न हों, सुखी हों, संतुष्ट हों और न तुलसी का वह राम राज्य है जिसमें दैहिक, दैविक, भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। ऐसा कोई मानव समाज न कभी रहा है न कभी होगा। इसलिए नहीं होगा कि प्रकृति में इस तरह के समाज की कोई व्यवस्था नहीं है। दूसरे शब्दों में, उस ईश्वर के पास भी जिसे आस्तिक समुदाय इस समूची सृष्टि का कर्ता-नियंता-विधाता मानता है इस तरह के समाज की कोई योजना नहीं है। लेकिन मेरे सपनों के भारत में एक ऐसे भारतीय समाज की परिकल्पना अवश्य निहित है जिसमें लोग मनुष्य की तरह जीवन जीने और जुटाने के लिए चेष्टारत रहते हों; इतिहास की गलतियों से सीखते हों और उन्हें दुरुस्त करने की बात सोचते हों; वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक आदि व्यवस्थाओं को निरंतर विवेक की कसौटी पर कसते हों और जहां भी उनमें गड़बड़ियां पैदा हो रही हों उनके निराकरण के उपाय करते हों; मानवीय जीवन को निरंतर बेहतर बनाने के स्वप्न को साकार करने के लिए दैवी कृपाओं की अपेक्षा मानवीय अनुभव, अध्ययन उद्यम और समझदारी पर ज्यादा भरोसा करते हों। सीधे शब्दों में, अतीत के अनुभवों के आधार पर वर्तमान को थोड़े बेहतर भविष्य की ओर बढ़ाना चाहते हों।

किसी भी अग्रगामी मानव समाज में यह एक सतत प्रक्रिया होती है जिसके अंतर्गत सामाजिक विवेक असद् का परित्याग करता है और सद् को अपनाता है यानी जो बृहतर समाज के अहित में है उसे छोड़ता जाता है और जो हित में है उसे अपनाता जाता है। भारत में भी यह प्रक्रिया चलती रही है लेकिन पिछले कुछ दशकों में एक जड़ ठहराव ज्यादा घनीभूत हुआ है। आजादी के दौर में पैदा हुई परिवर्तकारी प्रक्रियाएं जैसे अपनी ऊर्जा खोकर इस जड़ता का हिस्सा बन गयी हैं। परिणामतः वे समस्याएं भी जो कभी समाधेय प्रतीत होती थीं आज जैसे असमाधेय हो गयी हैं।

अपनी बात को मैं कुछ स्थितियों और प्रश्नों के साथ आगे बढ़ाना चाहूंगा। कुल चार-पांच वर्ष पहले जिस समय देश अन्नामय हो रहा था तब लगता था कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध यह एक निर्णायक लड़ाई है। जैसे ही अन्ना अपने समर्थन के बल पर सरकार को झुका लेंगे और

अपने लोकपाल विधेयक को विधि में परिवर्तित करा लेंगे तो भ्रष्टाचार पर एक निर्णायक प्रहार होगा। लेकिन हुआ क्या? देखते ही देखते समूचा आंदोलन बिखर गया और जो लोग भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई लड़ने अपने-अपने खेमों से निकलकर अन्ना से जुड़े थे वे वापस अपने-अपने खेमों में लौट गए। क्यों हुआ ऐसा? क्या इस देश के लोग भ्रष्टाचार से त्रस्त नहीं हैं? अगर लोग भ्रष्टाचार से त्रस्त हैं तो केंद्र और राज्यों की सरकारें लोगों को भ्रष्टाचार से मुक्त कराने की पहल क्यों नहीं करतीं? भ्रष्टाचार को खत्म करने में निर्वाचित लोकशाही की रूचि क्यों नहीं है और अगर है तो वह व्यवहार में दिखती क्यों नहीं है?

इसी से जुड़ी हुई परिघटना अरविंद केजरीवाल के अभ्युदय की है। अरविंद केजरीवाल ने भ्रष्टाचार से त्रस्त जनता को यह भरोसा दिलाया था कि बाकी राजनीतिक दलों के लोग जो चाहे सरकार में हो या सरकार से बाहर, भ्रष्ट हैं। वे काले धन के बल पर चुनाव जीतते हैं और चुनाव जीतने के बाद वे भ्रष्टाचार को संरक्षण देते हैं। यानी भ्रष्ट लोग अगर सरकार में रहेंगे तो भ्रष्टाचार नहीं मिटेगा इसलिए उनके जैसे ईमानदार व्यक्ति को और उनके द्वारा गठित ईमानदार व्यक्तियों की पार्टी को अगर सत्ता में ले आया जाए तो भ्रष्टाचार पर अंकुश लग जाएगा और लोगों के वास्तविक हित के रास्ते खुल सकेंगे। लोगों ने, खासकर दिल्ली के लोगों ने, अरविंद केजरीवाल की बात पर भरोसा किया, उन्हें अकल्पनीय बहुमत के साथ जिताया। वह मीडिया की चकाचौंध भरी रोशनी में जनता के आकाश गुंजाऊ शोर के बीच तमाम आाश्वासनों और वादों के साथ केंद्र शासित राज्य दिल्ली के मुख्यमंत्री पद पर आरूढ़ हुए। मात्र दो वर्षों के भीतर ही उनका क्या हश्र हुआ यह बच्चा-बच्चा जानता है। केजरीवाल संस्थागत भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनी मुहिम को आगे क्यों नहीं ले जा पाए और क्यों स्वयं उनके कई सिपहसालार भ्रष्टाचार की गिरफ्त में आ गए? केजरीवाल भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई न कर पाने के लिए अपने उपराज्यपाल और उपराज्यपाल के जरिए केंद्र की सरकार को दोषी ठहराते रहे। मान लें कि केजरीवाल पूरी तरह सच हैं तो फिर वह वास्तविक कारण क्या हैं जिनकी वजह से कोई भी सरकार किसी भी ऐसे व्यक्ति को सफल नहीं होने देना चाहती जो भ्रष्टाचार मिटाने की बात करता है या भ्रष्टाचार के विरुद्ध कोई कार्रवाई करता है? अगर सरकारें भ्रष्टाचार नहीं मिटाना चाहतीं तो क्या यह मान लिया जाए कि सरकार चलाने वाला हर व्यक्ति अपराधी है? ऐसा इसलिए नहीं माना जा सकता कि उसे विधायिका के अधिकार स्वयं जनता ने उसे निर्वाचित करके सौंपे हैं। तो क्या जनता मूर्ख है? अगर जनता ही भ्रष्टाचारियों को बागडोर सौंपना चाहती है और जनता ही भ्रष्टाचार को संरक्षण देना चाहती है तो फिर अन्ना हजारे या केजरीवाल जैसों की भूमिका की जरूरत ही क्या है?

भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव हमेशा चढ़ाव पर रहता है और इस तनाव की जड़ में है कश्मीर। भारत के लिए कश्मीर उसका अभिन्न अंग है और पाकिस्तान कश्मीर को अपना मानता है। कश्मीर के लोग भारतीय सुरक्षाबलों पर पत्थर फेंकते हैं। बुरहान बानी जैसे जिन लोगों को भारत आतंकवादी मानता है वे उसे अपना नायक मान लेते हैं। वे लोग संकेत देते

हैं कि वे भारत के साथ नहीं रहना चाहते। भारतीय राज्य व्यवस्था कश्मीर के इन लोगों को वे सारे अधिकार देती है जो भारत के अन्य लोगों को प्राप्त हैं। लेकिन कश्मीरियों को ये अधिकार अधूरे प्रतीत होते हैं। कश्मीर के जो लोग भारत के साथ नहीं रहना चाहते, आखिर क्यों नहीं रहना चाहते? वे भारत के दावे को क्यों स्वीकार नहीं करना चाहते? भारत की लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था उन्हें क्यों नहीं रास आती और भारत क्यों उन्हें अपनी व्यवस्था से जोड़ने में लगातार असफल होता रहा है? और क्या कश्मीर के हालात का कोई फौरी समाधान सामने दिखता है? क्या सचमुच लगता कि सेना की उपस्थिति कोई वास्तविक समाधान है?

कुछ दिन पहले बिहार का एक बाहुबली पूर्व सांसद जिस पर हत्या और अपहरण के कई मामले चल रहे हैं, जमानत पर जेल से रिहा क्या हुआ उसके स्वागत में जनता-सत्ता सब नतमस्तक हो गए। इतना जबर्दस्त स्वागत कि बड़े से बड़ा साधू-संत भी सकुचा जाए। जो जनता इस कथित अपराधी नेता के स्वागत और दर्शन हेतु उमड़ पड़ी थी क्या वह जनता अपराधी थी? यह सवाल भारतीय राजनीति के भोले सुधाराकांक्षियों को लगातार मथता रहा है कि आखिर किसी चुनाव क्षेत्र की जनता किसी हिंसक अपराधी को चुनाव जिताकर विधानसभा या लोकसभा में क्यों भेज देती है? अगर लोकतांत्रिक व्यवस्था का समूचा विवेक मतदाता की राय में निहित है तो फिर उसे किस बिना पर चुनौती दी जा सकती है? एक व्यक्ति के अपराधी होने और साथ ही उस अपराधी के जनता के बीच लोकप्रिय होने का रहस्य क्या है? अदालत या चुनाव आयोग जिस व्यक्ति को अपराधी ठहरा देते हैं जनता उस व्यक्ति को अपराधी मानने से इनकार क्यों कर देती है? कौन तय करे कि कौन गलत होता है- वह अदालत जो व्यक्ति को अपराधी ठहराती है या वह जनता जो उस अपराधी को अपना नायक मानती है?

हमारे देश का कानून एक बालिग लड़के और लड़की को यह अधिकार देता है कि वे मनचाहा प्रेम संबंध बना सकें और अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी कर सकें। लेकिन प्रायः होता यह है कि जब भी कोई लड़का या लड़की किसी विजातीय या विधर्मी लड़की या लड़के से इस तरह का संबंध बनाते हैं तो उन्हें अपने परिवार या अपनी बिरादरी से भारी लानत-मलामत झेलनी पड़ती है। कई बार तो उनका विरोध इतना उग्र होता है कि लड़की-लड़के को मौत के घाट उतार दिया जाता है। लड़के-लड़की का विरोध करने वाले लोग यह जानते हुए भी कि देश का कानून लड़के-लड़की को ऐसा करने की इजाजत देता है, उनका विरोध करते हैं और स्वयं हत्या जैसा अपराध कर डालते हैं। क्यों करते हैं वे ऐसा? क्यों तो वे कानून का सम्मान नहीं करते और क्यों वे हत्या जैसा अपराध करने में कानून का भय नहीं खाते? क्या है उनकी वह ग्रंथि जो उन्हें ऐसा जघन्य अपराध करने के लिए उकसाती है? और क्या कानून के पास इस ग्रंथि का निरोधक उपाय है?

अपवाद के तौर पर कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई बड़ा नेता, मंत्री, अधिकारी या

उद्योगपति आर्थिक कदाचार के लिए कानून की गिरफ्त में आ जाता है। आम तौर पर यह गिरफ्त जेल तक नहीं पहुंचती लेकिन कभी-कभी जेल तक पहुंच जाती है। पिछले कुछ सालों में कई मंत्री, अधिकारी, उद्योगपति जेल के अंदर दिखाई दिए लेकिन क्या उनकी जेल यात्रा ने किसी भी तरह के उनके सामाजिक संबंधों या सामाजिक रुतबे का क्षरण किया। जेल की अवधारणा अपराध निरोधक दंड की अवधारणा है। इसमें यह भी निहित है कि जो व्यक्ति कानून से दंडित होगा स्वाभाविक तौर पर उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रास होगा क्योंकि लोग उसे ऐसा अपराधी मानेंगे जिसके कृत्य समाज विरोधी हैं। लेकिन क्या वास्तविकता यही है? क्या भ्रष्टाचार के आरोप में निरुद्ध किसी भी नेता, अधिकारी या उद्योगपति की सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई कमी आती है? अगर नहीं आती तो उसे दिए गए दंड की सार्थकता क्या है? आखिर कानून जिसे अपराधी मानता है लोग उसे अपराधी मानने से इनकार क्यों कर देते हैं? और क्या ऐसी विसंगति के रहते विधिसम्मत व्यवस्था संभव है?

एक और स्थिति को उठाए लेते हैं और वह है देश में चल रहे स्वच्छता अभियान की। यह हर व्यक्ति का सामान्य अनुभव है कि इस देश के हर शहर-कस्बे का हर दूसरा मोहल्ला गंदगी से अटा पड़ा है। हर वह व्यक्ति जो हर रोज इस गंदगी से दो-चार होता है, कामना करता है कि यह गंदगी हटे। वह शहर के मेयर से लेकर सफाई कर्मचारी तक सबको कोस डालता है लेकिन उस गंदगी को दूर करने में अपनी कोई सीधी भूमिका नहीं तलाश करता। स्वच्छता अभियान की भारी और व्यापक स्वरावली के बावजूद, भले ही नेता और अधिकारी सड़क पर झाड़ू चलाते हुए बार-बार टेलीविजन के पर्दे पर दिखे हों, यह अभियान लोगों की दिनचर्या का हिस्सा नहीं बन पा रहा। यानी एक अत्यधिक जरूरी कार्य को लोग अपने व्यक्तिगत कार्य के रूप में स्वीकार नहीं कर पा रहे। आखिर जो कार्य सीधे-सीधे उनके स्वास्थ्य और परिवेशगत सौंदर्य से जुड़ा हुआ है उसे वे इतने भारी भरकम प्रचार के बावजूद अपनी दैनिकचर्या का हिस्सा क्यों नहीं बना पा रहे हैं? क्या कोई कानून उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य कर सकता है?

यहां जिन भी समस्यामूलक स्थितियों और परिघटनाओं का उल्लेख किया गया है वे और उनकी जैसी अनेक समस्याएं, परिघटनाएं जिन्हें हम केवल प्रशासन, कानून और अदालती कार्रवाईयों के नजरिए से देखने के आदी हो चले हैं और जिन्हें प्रायः कानून व्यवस्था का मसला मानकर सुलटाने का प्रयास करते हैं वे वस्तुतः सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएं हैं। जब कोई समस्या पहले से ही व्यक्ति की व्यवहार संस्कृति का हिस्सा होती है या बाद में उसकी व्यवहार संस्कृति का हिस्सा बन जाती है तो उसका हल सिर्फ कानून के सहारे नहीं निकाला जा सकता। अगर जातीय मानसिकता शताब्दियों से व्यक्ति की व्यवहार संस्कृति का हिस्सा रही है तो हम इसे सिर्फ कानून बनाकर ही आसानी से समाप्त नहीं कर सकते। भिन्न जाति के लड़के-लड़की के प्रेम प्रसंग के मामले में अगर परिजन हत्या जैसे अपराध पर उतर आते हैं और कानून की कोई चिंता नहीं करते तो ऐसा उनके परंपरागत सांस्कृतिक सोच के कारण होता है। यह एक ऐसी सांस्कृतिक समस्या है जिसका वास्तविक समाधान कानून में न होकर सांस्कृतिक परिवर्तन में है।

व्यापक भ्रष्टाचार के मामले में भी अन्ना हजारे और अरविंद केजरीवाल जैसे लोग यह नहीं समझ पाते कि भारतीय समाज का भ्रष्टाचार मात्र कुछ बेईमान व्यक्तियों का विचलन नहीं है बल्कि एक व्यापक सामाजिक विचलन का हिस्सा है। उस विचलन का जो सामाजिक संस्कृति में गुंथा हुआ है। भारतीय समाज में एक व्यक्ति का जीवन अनेक सांस्कृतिक अनुष्ठानों से जुड़ा हुआ है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति जितने भी सांस्कृतिक संस्कारों से गुजरता है वे सब अतिरिक्त धन की मांग करते हैं। अगर बेटे-बेटी के विवाह के लिए पैसे जुटाना व्यक्ति की प्राथमिकता है, जिससे उसका सामाजिक मान-सम्मान जुड़ा हुआ है, तो वह अतिरिक्त धन कमाने के लिए किसी भी कानून का पालन नहीं करेगा और क्योंकि यह एक व्यापक सामाजिक संस्कृति है इसलिए हर व्यक्ति कानून की कीमत पर अतिरिक्त धन तो चाहेगा लेकिन अतिरिक्त धन की कीमत पर कानून का पालन केवल अपवाद स्वरूप ही करेगा। विवाह अनुष्ठान पर अतिरिक्त धन की जरूरत प्राचीन सांस्कृतिक मूल्य के कारण होती है लेकिन प्रतिस्पर्धा वैश्वीकरण की दुनिया का आधुनिक मूल्य है जो नयी आचार संस्कृति का हिस्सा है। एक व्यक्ति स्वयं को दूसरे से बेहतर हैसियत वाला, बेहतर गाड़ी-बंगले वाला, बेहतर पद-प्रभुत्व वाला दिखाने के बाजारवादी सांस्कृतिक दबाव में किसी भी आर्थिक अनुशासन का पालन नहीं करेगा बल्कि हर आर्थिक अनुशासन को अपने पक्ष में झुकाने की कोशिश करेगा।

इसी तरह देश में जो चुनावी संस्कृति विकसित हुई है उसकी जड़ें धन में हैं। जब आप धन के बिना अपनी किसी भी राजनीतिक गतिविधि का संचालन नहीं कर सकते तो आप राजनीतिक गतिविधियों का परित्याग नहीं करेंगे बल्कि धन जुटाने की कोशिश करेंगे। देश की समूची राजनीतिक संस्कृति चुनावी जीत पर केंद्रित हो गयी है और जब जीत के लिए धन एकमात्र शर्त हो तो यह अपेक्षा करना कि यह धन हमेशा धवल ही होगा सिवाय बचकानी मूर्खता के और कुछ नहीं। चुनाव और काले धन का एक व्यापक सांस्कृतिक रिश्ता तैयार हो गया है जिसमें नीचे से लेकर ऊपर तक हर तरह के वे स्वार्थसाधक संबंध समाहित हो गए हैं जिन्हें भोली नैतिकता के पैमाने पर भले ही गलत मान लीजिए लेकिन वे सामान्य लोगों के लिए पूरी तरह सहज और स्वीकृत होते हैं। ये संबंध उनकी व्यवहार संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं इसीलिए वे राजनीति में सक्रिय या चुनाव में भाग लेने वाले किसी भी अपराधी को अपराधी नहीं मानते और काले धन को निर्मित करने वाले अथवा उसका उपयोग करने वाले को भी गलत नहीं मानते। उनका यह गलत न मानना एक सांस्कृतिक कारक है जिसका उपचार सिर्फ सांस्कृतिक बदलाव से ही संभव है। जो लोग यह सोचते हैं कि सिर्फ दो-चार नए कानून बना देने से, दो-चार लोगों को इधर-उधर कर देने से, दो-चार सरकारों को गिराने-हटाने से, एक लोकपाल बिठा देने से या चंद ईमानदार लोगों को मंत्री बना देने से भ्रष्टाचार पर लगाम लगा देंगे तो उनके सोच पर सिर्फ तरस ही खाया जा सकता है।

कश्मीर का मसला दो भिन्न संस्कृतियों के बीच टकराव का मसला है जिसका समाधान सेना और प्रशासन के बल पर न तो अभी तक निकला है और न आगे निकलेगा। पाकिस्तान

कश्मीर पर इसलिए दावा करता है क्योंकि उसकी संस्कृति की तरह कश्मीर की संस्कृति भी इस्लामी संस्कृति है। अगर कश्मीर मुस्लिम बहुल राज्य है तो उसे विभाजन के सास्कृतिक आधार की तर्ज पर पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए न कि भारत का। परंतु कश्मीर को राजनीतिक तौर पर अपना अभिन्न अंग मानने वाला भारत पाकिस्तान के या कश्मीर के अलगाववादी नेताओं के सांस्कृतिक तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन जब तक भारत सांस्कृतिक तौर पर यह सिद्ध नहीं करेगा कि उसकी बहुलतावादी या सर्व धर्म समभाव वाली लोकतांत्रिक संस्कृति इस्लामी अलगाववादी संस्कृति की तुलना में अधिक बेहतर है और कश्मीर के लोगों को बेहतर मानवीय जीवन उपलब्ध करा सकती है तब तक आप अलगाववादी विचार को और उससे जुड़े हिंसक व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर सकते। कश्मीर का मसला एक विराट सांस्कृतिक पहल की अपेक्षा करता है।

गतिशील भारत की ज्यादातर अवरोधक समस्याएं यहां के लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों से संबंधित हैं। इनका हल सिर्फ कानून, पुलिस, सेना या अदालतों के माध्यम से नहीं खोजा जा सकता। सेना या पुलिस फौरी समाधान तो दे सकते हैं लेकिन स्थायी या दीर्घकालिक समाधान नहीं। समस्याओं के दीर्घकालिक समाधान सांस्कृतिक समाधान होते हैं जिनकी हमने लगातार उपेक्षा की है। आजादी के संघर्ष के दौरान हमने बहुत से नए मानवीय जीवन मूल्य प्राप्त किए थे जो दुनियाभर में चले अग्रगामी संघर्षों की परिणति थे। समता और समानतावादी ये जीवन मूल्य हमने अपने संविधान में समाविष्ट किए और एक अर्थ में प्राचीन रूढ़ समाज की तुलना में हमने एक प्रगतिशील संविधान के माध्यम से एक बेहतर समाज की परिकल्पना की। लेकिन संविधान में जाति विरोधी, धर्मनिरपेक्षतावादी, सार्विक मताधिकार और स्त्री-पुरुष की समानता जैसे जो मूल्य समाविष्ट किए थे वे विधि के अनुसार तो स्थापित हो गए लेकिन बृहतर समाज में उनकी व्यापक स्वीकृति के लिए यानी लोगों की मानसिकता और उनके व्यवहार को संविधान में निहित मूल्यों की चेतनानुसार बदलने के लिए जो सांस्कृतिक पहल या पहलें की जानी थीं वे नहीं हुई। इसी का परिणाम है कि हमें भारत के विभिन्न पहचानगत समूहों का व्यवहार संविधान में निहित भावना के विपरीत दिखाई देता है और लगातार गंभीर समस्याएं खड़ी करता रहता है।

बिना सांस्कृतिक बदलाव के किसी भी समाज में स्थायी चरित्रगत बदलाव नहीं लाए जा सकते। बेहतर जीवन के लिए अगर आपने बेहतर जीवन मूल्यों का चुनाव किया है तो उन जीवन मूल्यों को आत्मसात करने वाला सांस्कृतिक व्यवहार भी चाहिए। सांस्कृतिक व्यवहार के संबंध में मोटे तौर पर तीन प्रक्रियाओं का सामना करना पड़ता है। एक अग्रगामी समाज उन जड़ सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहारों की पड़ताल करता है जो वर्तमान समय में निरर्थक हो गए हैं और लगातार बने रहकर केवल समस्याएं खड़ी करते हैं। उदाहरण के लिए, जातिवादी संस्कृति और श्रम विरोधी संस्कृति। श्रम विरोधी मूल्य सवर्णतावादी, जातिवादी संस्कृति का प्रतीक है। आज के युग में न हमें जाति की जरूरत है और न श्रम विरोधी मूल्य की। अगर हम सचेत

सांस्कृतिक प्रयासों के द्वारा जातिवादी मानसिकता का उन्मूलन करते और सामान्य जीवन में शारीरिक श्रम को आम व्यवहार की संस्कृति का हिस्सा बनाते तो शायद हमें आज अलग से सफाई अभियान चलाने की जरूरत नहीं होती।

हम परंपरागत संस्कृति में निहित अवांछित सांस्कृतिक व्यवहारों की तलाश करते हैं और उनके निराकरण का उपाय करते हैं। दूसरी स्थिति में हम उन नए सामाजिक मूल्यों की, उन सांस्कृतिक व्यवहारों की खोज करते हैं जो वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल हों और समाज की बेहतरी के लिए उपयोगी हों। उदाहरण के लिए, अगर हमने अपने संविधान में जातीय समानता का मूल्य प्रतिष्ठित किया है तो हमें समाज में ऐसे सांस्कृतिक व्यवहारों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए जिससे जातिवादी मानसिकता में बदलाव आए। विचार और साहित्य के स्तर पर ऐसा हुआ लेकिन हम ऐसे सर्वस्वीकृत सांस्कृतिक व्यवहारों को प्रचलन में नहीं ला पाए जिनके चलते विजातीय लड़के-लड़कियों को विवाह की सूरत में सामाजिक विरोध का सामना नहीं करना पड़ता। इस तरह के सांस्कृतिक व्यवहार सचेतन तौर पर स्थापित किए जाते हैं। तीसरी स्थिति है नए सांस्कृतिक व्यवहारों को स्थापित करने के तरीकों की। यहां अगर चीन का उदाहरण लें तो चीन में साम्यवादी सत्ता की स्थापना के एक दशक बाद ही यह महसूस किया जाने लगा था कि जिस तरह के राज्यतंत्र की परिकल्पना साम्यवादी अवधारणा के अंतर्गत की गयी है उसे तब तक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता जब तक कि पारंपरिक सांस्कृतिक ढांचों को न ढहा दिया जाए। चीन की सांस्कृतिक क्रांति के दौरान न केवल श्रम विरोधी संस्कृति को सचेतन तौर पर नष्ट किया गया बल्कि लोगों को विभिन्न धर्म, संप्रदायों में विभाजित करने वाली व्यवस्थाओं को भी नष्ट किया गया। परंपरावादी संस्कृति के पोषक तत्व, चाहे वे ग्रंथों में निहित रहे हों या फिर मंदिर-मस्जिद जैसी इमारतों में, सभी को ध्वस्त कर दिया गया। चीन की यह सांस्कृतिक क्रांति एक दौर में विश्वभर में निंदा का कारण बनी थी और इसे मानव स्वातंत्र्य पर एक बड़ा हमला माना गया था। लेकिन यह सच है कि अगर चीन में वह सांस्कृतिक क्रांति नहीं होती तो चीन वह नहीं होता जो आज वह है। इस सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से उसने स्वयं को ऐसी बहुत सी समस्याओं से मुक्त करा लिया था जिनका सामना आज भारत हर स्तर पर कर रहा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप में भी एक सांस्कृतिक क्रांति हुई थी। समूचे यूरोप के बुद्धिजीवी, रचनाकार, कलाकार युद्ध समर्थक मानसिकता के विरोध में उतर आए। युद्ध के विरोध में उठे सांस्कृतिक आंदोलन की लहर यूरोप के हर देश तक पहुंची और हर व्यक्ति तक पहुंची। इस सांस्कृतिक क्रांति के दौरान यूरोपवासियों के मन में युद्ध विरोधी विचार एक सांस्कृतिक मूल्य बनकर स्थापित हुआ और इसका परिणाम हुआ कि लोगों ने अपनी ही सरकारों पर किसी भी तरह के युद्ध में संलिप्त न होने का दबाव बनाया। परिणामतः यूरोप शांति से रह सका और अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल अपने जीवन स्तर को बेहतर बनाने में कर सका। यह स्थिति हमारे यहां की स्थिति से एकदम विपरीत है जहां हमें अपने लोग प्रायः

युद्धोन्माद की चपेट में दिखाई देते हैं।

भारत में व्यापक भ्रष्टाचार, अपराध की सामाजिक स्वीकृति, जातीय और सांप्रदायिक विद्वेष, धार्मिक कट्टरता और पाखंड, महिलाओं के प्रति हिंसा, विकृत सांस्कृतिक व्यवहारों को बढ़ावा देने वाली चुनावी राजनीति, मनुष्य विरोधी विकास जैसी समस्याओं के प्रति एक सामाजिक-सांस्कृतिक नजरिया विकसित करने की जरूरत है। जब हम समस्याओं को सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखना शुरू करते हैं तो उनका समाधान भी उसी परिप्रेक्ष्य में सोचते हैं। सांस्कृतिक समाधान व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों को बदलते हैं और किसी भी समस्या का स्थायी समाधान होते हैं। वास्तविकता यह है कि भारत को इस समय एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत है - एक ऐसी सांस्कृतिक क्रांति की जो मनुष्य और समाज विरोधी सांस्कृतिक व्यवहारों को अपदस्थ कर सके और उनके स्थान पर सहकारी, समन्वयवादी, संवेदनशील सांस्कृतिक व्यवहारों को प्रतिष्ठित कर सके। भारत की अगले चरण की प्रगति किसी ऐसी ही सांस्कृतिक क्रांति पर खड़ी होगी। सचेत सांस्कृतिक परिवर्तनों के बिना भारत अपनी प्रगति को संभाल नहीं पाएगा। वर्तमान समस्याएं बड़ी होकर उसे निगल जाएंगी।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

●

मिलावट मुक्त भारत का सपना

प्रयाग शुक्ल

भारत के लिए कोई नए स्वप्न देखने से पहले तो यही सोचता हूं कि जो कुछ बचपन और किशोरावस्था में भारत की प्रकृति में देखा था, आज से कोई साठ-पैंसठ वर्ष पहले; उसे भारत फिर से पा ले। चाहें तो इसे ही मेरा पहला स्वप्न मान लें, आगे कुछ और नए पुराने स्वप्नों की बात करूंगा ही। मेरा जन्म तो कोलकाता में हुआ, पढ़ा भी वहीं, बड़ा भी वहीं हुआ, पर पुरखों का गांव, तिवारीपुर, हुसेनगंज, जिला फतेहपुर (उ.प्र.) है, गर्मी और दशहरा की छुट्टियों में, हम गांव जाते थे। कुछ दिनों वहां रहते थे और एक मौका तो वह भी था, जब लगातार चार बरस मैं गांव में रहा। 1946-47 में जो भयानक दंगे हुए थे, कोलकाता में, उसके बाद पिता ने हम कुछ भाई-बहनों को गांव भेज दिया था। यह मेरे लिए सुनहरे दिन थे। वहीं की पाठशाला में पढ़ता रहा। मेरी आयु 6 बरस की थी जब गांव गया था, और कोलकाता वापसी हुई 1951 में जब मैं 10 की उम्र पार कर गया था। गांव की स्मृतियों में सबसे प्रबल हैं, उन दिनों के बाग-बगीचे, ताल-झीलें, नदियां, पशु-पक्षी। पास ही अखनई झील थी, जिसमें कमल खिलते थे। चिड़ियों की कमी न थी। वहां मैं प्रायः साइकिल पर अपने बचपन के मित्र त्रिलोकी रमण द्विवेदी के साथ चला जाता था। झील के पानी को, चिड़ियों को, निर्मल आकाश को, कमल-फूलों को देखा करता था। जब 'अज्ञेय' की असाध्य वीणा में आगे चलकर यह पंक्ति पढ़ी थीः ''कमल कुमुद पत्रों पर चोर पैर द्रुत धावित जलपंक्षी की चाप'' तो सहज ही अखनई की याद आ गयी थी। अब गांव से संपर्क टूट सा गया है। पुरखों का घर टूट-फूट गया है। जाहिर है अब कोई रहता नहीं है वहां। पर, त्रिलोकी रमण द्विवेदी से संपर्क बना हुआ है। फोन पर बातें भी प्रायः होती रहती हैं। वह उसांस भरकर कहते हैं, 'अखनई', अब वह 'अखनई' नहीं रही। आसपास उसके सरकारी-गैर सरकारी कब्जे हो गए हैं, जमीन पर। उस जमीन पर जो मानों कभी 'अखनई' की ही जमीन थी। न बोल सकने वाली 'अखनई' बोले भी तो कैसे, कैसे विरोध करे!

त्रिलोकी रमण के साथ ही गर्मी की छुट्टियों में, कोलकाता से आने पर, गांव-गांव घूमता था। उन दिनों न जाने कितने बागों के आम खाए होंगे। हम साथ में लोटा-डोर रख लेते थे। प्यास लगने पर कुओं से खींचकर मीठा निर्मल पानी पीते थे। अब कुएं भर गए हैं। ताल-पूर दिए गए हैं। झीलों-नदियों का हाल बुरा है। हमारे गांव से गंगा कोई तीन किलोमीटर पर बहती

है। हम वहां भी जाते थे - असनी के घाट पर। असनी जो कभी विद्या केंद्र रहा था। व्यापार का केंद्र भी। उस जमाने में जब नदियां-नौकाएं ही व्यवसाय के अधिक काम आती थीं। थल-मार्ग से भी बढ़कर जल मार्ग महत्व के थे। अपने बचपन की गंगा की याद करता हूं, उसके चौड़े पाट की, निर्मल जल की, वर्षा में उफनाई हुई गंगा की, उसमें नौका-विहार की, तो मन में एक पुलक-सी भी उठती है। पर, यह सोचकर रोना भी आता है कि वही गंगा अब क्या हो गयी है! बताने की जरूरत नहीं है।

तभी तो शुरू में कहा है नए सपने देखूं, उससे पहले यह चाहता हूं कि बचपन के दिनों के ताल-कुओं-झीलों-नदियों की अब जो दुर्दशा हो गयी है, वह न रहे। जल-स्रोतों की निर्मलता-बहुलता लौट आए। और बात केवल गांव की नहीं है। मैं 1964 में दिल्ली आया था। कोलकाता से निकला तो हैदराबाद में 'कल्पना' में गया। पर, साहित्य और कलाओं में उस समय की दिल्ली की गतिविधियां, मुझे हैदराबाद से दिल्ली खींच लायी। तब मेरी आयु थी 24 बरस। 'दिनमान' निकलने वाला था और यह सोच रखा था कि 'अज्ञेय' (जो उसके संपादक होने वाले थे) से चर्चा करके उसी की फ्रीलांसिंग किया करूंगा। वह मैंने 4 बरस तक की भी, 'दिनमान' 1969 में बाकायदा ज्वाइन करने से पहले। बहरहाल 1964-65 में जब 'दिनमान' 10 दरियागंज, नयी दिल्ली से निकलना शुरू हुआ (तब टाइम्स ऑफ इंडिया की नयी बिल्डिंग बन रही थी 7 बहादुरशाह जफर मार्ग में) तो वहां मैं प्रायः रोज ही जाता था। जमुना वहां से बहुत दूर नहीं थी। उसमें पानी रहता था। प्रवाह भी रहता था। वह मैली नहीं हुई थी। दो-चार बार लाल किला से आगे जाकर उसे देखने की स्मृति है। 'दिनमान' में सबसे पहले नियुक्त होने वाले उपसंपादक, वरिष्ठ श्यामलाल शर्मा से उन दिनों के किस्से भी सुने हैं जब पुरानी दिल्ली के लोग बाकायदा चांदनी में नौका विहार करते थे। उनकी बातें सुनकर पंतजी की कविता 'चांदनी रात में नौका विहार' की याद आती थी। पर, जब दिल्ली में आज की जमुना को देखता हूं तो फिर याद आती 'उस' जमुना की जो मैंने साठ के दशक में देखी थी। सचमुच मेरी एक बड़ी इच्छा (और यह इच्छा सपना ही तो है) यही है कि हमारी झीलें-ताल-नदियां 'स्वस्थ सुंदर' हों। उनके मस्तक चमकने वाले हों वक्ष भी। उनकी पीठों की बूंदे पारदर्शी हों। हमारे जमाने से पहले की जो याद हम सबको अनुपम मिश्र ने 'आज भी खरे हैं तालाब' और 'राजस्थान की रजत बूंदों' से दिलायी है, उससे यह 'इच्छा' असंभव भी नहीं लगती है। पर, 'विकास' की दिशा तो किसी और ही ओर मुड़ चुकी है, जहां बहुमंजिली इमारतों की भरमार है, खेत-जंगल, पटते-कटते गए हैं। चिड़ियां मेरे इलाके में, (नोएडा जहां मैं रहता हूं) बची नहीं हैं। 2006 में जब यहां आया था तब तो फिर भी थीं। बस कबूतर हैं। जब आया था तो मोरों की बोली भी कानों में पड़ती थी। और अपने बचपन के गांव में लौटूं तो वहां तो मोरों के झुंड के झुंड दिखाई पड़ते थे। जल दिखता है तो बहुमंजिली इमारतों के बीच के परिसरों में स्वीमिंग पुलों में। और वह भला, नदियों-झीलों-तालों का मुकाबला कहां से करेंगे!

तो ऐसा ही सोचना मेरे लिए स्वाभाविक है कि फिर से नदियों-तालों-झीलों में जल हो,

और वैसे सूखे की हालत न देखनी पड़े, जैसी हम प्रायः हर साल देखते हैं। और इस बार भी हमने महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बुंदेलखंड आदि प्रदेशों/ अंचलों में देखी है। बूंद-बूंद के लिए लोग तरस गए हैं। दरअसल, नदी-नालों को ही नहीं, बनों, पर्वतों की भी पुरानी समृद्धि वापस लौटनी ही चाहिए। अरण्य अब कहां बचे हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'राष्ट्र' की परिकल्पना/ परिभाषा बड़े सुंदर ढंग से की है। उन्होंने कहीं लिखा है कि एक राष्ट्र केवल मनुष्यों से नहीं बनता, वह उन पशु-पक्षियों-वनस्पतियों वनों-पर्वतों-नदियों-झीलों का भी होता है, जो उसमें 'रहते' हैं, जहां के वे निवासी होते हैं। उनके शब्द ठीक ये नहीं हैं, पर, उनके कथन का आशय यही है। लंदन बुकफेअर (2009) के एक परिसंवाद, 'औपन्यासिक कृतियों में भारत की कल्पना' में मैंने उनका यह कथन उद्धृत किया तो यह बहुतों को बहुत भाया था। यह उद्धरण मैंने प्रसंगवश ही दिया था, यह कहते हुए कि भारत की विभिन्न भाषाओं के उपन्यासों-कहानियों में नदियां-पेड़-पौधे-ताल-वन आदि भी 'पात्रों' की सी भूमिका निभाते हैं। और यह कहते हुए विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय की कृतियां विशेष रूप से मेरे ध्यान में थीं, पर, 'निराला' की कृति 'विल्लेसुर बकरिहा' हो, या अमृतलाल नागर के उपन्यास या अनंतमूर्ति का 'संस्कार' भालचंद्र नेमाडे का 'कोसला' और ओड़िया-कन्नड़-मलयालम की भी बहुत सी औपन्यासिक कृतियां- सब में रिहायशी बस्तियों और मानुष-जगत के पात्रों के साथ प्रकृति-जगत के भी बहुतेरे पात्रों से हमारा साक्षात्कार होता है। कारण यही कि भारतीय सामाजिक जीवन रहा ही ऐसा है- ग्रामीण समाजों का ही नहीं, कोलकाता-मुंबई जैसे शहरों का भी, जहां तालाबों-बागानों की कमीं नहीं थी, और गांवों से एक प्रकार का संपर्क भी इन महानगरों तक का खूब रहा है। स्थितियां तो अब बदली हैं, जहां इमारतों और जनसंख्या की भरमार ने महानगरों से 'पक्षियों-वनस्पतियों को दूर कर दिया है। तालाब भी इमारतों की भेंट चढ़ गए हैं या उपेक्षित पड़े हैं। पुराने पेड़-पौधे अपने जीवन की खैर मनाते रहते हैं कि न जाने कब वे भी अपनी जमीन से उखाड़ दिए जाएंगे। लगता है जैसे खेतों में फसलों की जगह अब बहुमंजिली इमारतों की फसल उगायी जा रही है।

तो, सपना उस हरियाली का भी है, उसके पुनरागमन का, जो हमारी बस्तियों को शुद्ध बहती हवा भी दे, और आंखों को ठंडक भी पहुंचाए। इसी के साथ यह बात भी ध्यान में आती है कि जिसे हम धरोहर कहते हैं, हेरिटेज, उसमें वे सारी चीजें भी तो 'शुमार' हैं, जिन्हें सीधे-सीधे 'हेरिटेज' से जोड़कर प्रायः नहीं देखा जाता- कोई पुराना बाजार, पुराना तालाब, गली-सड़क- और भी कई चीजें भी 'हेरिटेज' हैं। लंदन इस बात का एक बड़ा उदाहरण है कि वहां उन सब चीजों को 'बचाने' की कोशिश की गयी है, जिनका संबंध एक जमाने से, शहर की धड़कनों के साथ रहा है। हमारे यहां तो अंधाधुंध ढंग से 'पुराने' को उजाड़कर नए को बसाने की होड़ मची हुई है।

मेरा एक सपना यह भी है कि हर गांव-शहर में अनिवार्य रूप से एक पुस्तकालय हो, और एक कला केंद्र। जिस तरह हर कस्बे में, शहरों के प्रायः हर इलाके में, एक डाकघर हुआ करता था, वैसे ही ये पुस्तकालय और कला केंद्र हों। ऐसे कला केंद्र जिनमें नाटक हो सकें, फिल्में

दिखायी जा सके (विशेष रूप से विश्व सिनेमा की) और चित्रों तथा मूर्तिशिल्पों के लिए कला-दीर्घा हों। यह असंभव भी नहीं है। पर, हमारे यहॉ यह असंभव या 'अकरणीय' दोनों ही मान लिया गया है। आखिरकार कर्नाटक के हेग्गुडु में एक ऐसा प्रयत्न हो चुका है- निजी स्तर पर और वह सफल भी रहा है। ऐसे कला केंद्र अब और भी जरूरी हो गए है, क्योंकि लोक के गीत, लोक के मंच, लोक के नृत्य-नाट्य सब सिमट रहे हैं। यहां तक कि चौपालें भी कई जगह कम हो गयी हैं। यूरोप के कई देशों में एक अरसे से हर शहर में, भले ही वह छोटा-सा शहर क्यों न हो, ऐसे 'कला केंद्र' रहे हैं। विशेष रूप से जर्मनी जैसे देशों में।

मेरा एक सपना यह भी है कि भारत 'मिलावट मुक्त' देश हो। मैंने इस पर एक बार पूरा एक लेख ही लिखा था 'जनसत्ता' दैनिक में कि अब हमारे यहां हालत यह हो गयी है कि मिलावट करने वाला यह भी नहीं सोचता कि उसकी 'मिलावटी' चीज को उसके बेटे-बेटी भी कहीं खा पी ले सकते हैं, और बीमार पड़ सकते हैं, गंभीर रूप से भी। स्थिति अब यह है कि दीवाली जैसे त्योहार पर देश के कई शहरों-कस्बों में मिलावटी मावा बनता है, मिठाइयों में और भी कई तरह की मिलावट होती है। टनों मिलावटी चीजें पकड़ी भी जाती हैं। पर, मिलावट बंद नहीं होती। कई लोग मिठाइयां खाना जरूर छोड़ देते हैं। और यह संकल्प करते हैं कि भेंट में भी मेवे ही देंगे, मावा से बनी कोई चीज नहीं।

कभी-कभी लगता है देश के औसत 'नैतिक' स्तर का भी बुरा हाल है। स्कूलों में परोसे जाने वाले 'मिड डे' मील की 'मिलावट' और लूट जगजाहिर हो चुकी है। बच्चों को दिया जाने वाला भोजन भी 'हजम' कर लेने में अधिकारियों को कष्ट नहीं होता। यह स्थिति क्या बता रही है, सोचता हूं एक दिन ऐसा आएगा भी-जब स्थितियां बदल जाएंगी। नयी पीढ़ियां इस सारी मिलावट से उकताकर मेरे सपने को सच करेंगी।

मेरे सपने में यह भी शामिल है कि पूरा भारत साक्षर हो, और हर घर में कुछ क्लासिक कृतियां अवश्य रहें: वाल्मीकि, कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जीवनानंद दास, शरतचंद्र, प्रेमचंद आदि की। ई-बुक्स का जमाना आ चुका है, पर मुद्रित कृतियां भी चलन में रहें। उनकी वैसी स्थिति न हो जाए, जैसी कि मिनियेचर चित्र शैली वाली पांडुलिपियों की है- वे अब संग्रहालयों में ही दिखती हैं। इसी तरह कंप्यूटर पर कामकाज कर रही पीढ़ी, स्याही वाली कलमों से बेखबर न रहे। हम देख रहे हैं कि देश में प्रचलित कई तकनीकें अब संग्रहालयों की चीज बन रही है। पूर्वोत्तर भारत को ही लें, जहां बांस से बनी हुई टोकरियां, सामान रखने के डिब्बे, और भी कई अन्य उपकरण रोजमर्रा जीवन में इस्तेमाल होते थे, पर, अब वहां भी प्लास्टिक की चीजों का चलन बढ़ गया है। एक जमाना था जब, कला चिंतक आनंद कुमार स्वामी भारत के उच्चतर कलारूपों और हस्तशिल्पों को एक ही स्रोत से निकला हुआ मानते थे, और हस्तशिल्पों की कलात्मकता को कमतर करके देखना-दिखाना नहीं चाहते थे-पर, धीरे-धीरे हस्तशिल्पों को लेकर सामाजिक दृष्टि यही बनी है कि वे तो 'सामान्य' चीजें हैं। कुंभकारों की ही हालत देखिए। शहरों में ही नहीं, वे गांवों में भी विस्मृत-विलुप्त होते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। 'माटी की महक' कम

होती जा रही है। सपना यह भी कि सभी भारतीय भाषाएं समाकृत होती रहें।

एक सपना और है कि हर घर में एक झूला हो। इस असंभव से लगते सपने का अपना एक अर्थ है। हर घर में झूला न भी रहे तो हर घर में झूले की एक मनभावन छवि जोड़कर हम आनंदित तो हो ही सकते हैं। एक जमाना था जब वे रहा भी करते थे। गुजरात के तो प्रायः हर घर में। आज भी रहते ही हैं। पर, कुछ तो कमी वहां भी आयी है- बहुमंजिली इमारतों के कारण। ऊंचे फ्लैटों पर, कई बार इतनी जगह भी नहीं होती। आंगन वाले घर, सामने चबूतरों वाले घर, लगातार कम होते जा रहे हैं। झूला मुझे ही प्रिय हो, और आवश्यक लगता हो, सो बात नहीं। उसे देखकर उस पर थोड़ी देर बैठने की इच्छा भला किसे नहीं हो आती है और बच्चों को तो वह हमेशा लुभाता है। सावन में झूले हमारे यहां अनिवार्य से रहे हैं-पेड़ की डालों पर पड़े झूलों की कमी कहां रही है। पार्कों में अब भी कोई झूला शायद ही खाली रहता हो- उस वक्त, जब बच्चों के पार्क में आने और खेलने का समय होता है। कई बार तो झूले के लिए 'क्यू' में लगे बच्चे भी आपको दिखायी पड़ सकते है। कोई न कोई मनाता रहता है कि वह कब खाली हो, और कब मैं भी उस पर बैठकर पेंग मारूं। झूला-प्रसंग से बच्चों के लिए मेरी एक कविता ही हैः 'झूला झूल रही है मिश्का' जो राजकमल से प्रकाशित इसी नाम के संग्रह में संकलित है और जिसे बड़ो की कविता कहा जाएगा, वह भी है, 'झूला झूलने की विधियां' नाम से उसी से इस लेख का समापन करता हूं :

झूला झूलने की विधियां
एक पैर धरती पर टेककर
हिलाएं हम झूले को,
विधि एक यह है।
मंद-मंद झूलें औ' भूले
कि झूल रहे।
परिचित, पुरानी विधि यह भी कि
डाल से बंधा झूला
पेंगों से भर जाए
लहराए।
वैसे ही जैसे कि लहरें
उछलती हैं।

कभी-कभी कोई किशोरी
अल्हड़ युवती,
झूले पर हो सवार

केशों को छितराती
ऊंची से ऊंची
पेंग भरती है-
कभी बहुत हौले से
झूला उठाती है।
कभी कभी-
पीछे से बार-बार
झूले में गति कोई भर देता।

डोरियां अदृश्य हो जाती हैं।

कभी-कभी
एक नहीं, दो सवार
झूले को चंचल बनाते हैं।

झूले की एक लय
कायम की जाती है
कभी-कभी।

एक वह हिंडोला जो
बच्चों का-
उसकी विधि लोरी-सी गाती है।

ऊपर के आसमान
नीचे की पृथ्वी
को हिला-मिला
झूले की विधियां सब
बरबस मुस्कराती हैं।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार एवं 'संगना' त्रैमासिक के संपादक हैं)

●

गिरेबान में झांकने की जरूरत

संजीव

इतनी कुंठाएं, इतनी ग्रंथियां, इतने डर, इतने संशयों के बीच आस्था और तर्क के परस्पर विरोधी ध्रुवों के बीच घिसटाता मेरा अपना देश! देश, जहां दुनिया के एक तिहाई निर्धनतम लोग रहते है, जहां कुपोषण, दवा के अभाव में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की सर्वाधिक मौतें होती हैं, जहां कुछ दिनों पहले तक ज्यादातर लोग खुले में शौच करते थे (अभी भी स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है), जहां दुनिया के सर्वाधिक बेघर लोग रहते हैं, जहां की झुग्गियों के बाशिंदों की संख्या ब्रिटेन की कुल आबादी की तीन गुना है.....! इसके विपरीत सच पूछा जाए तो कुछ क्षेत्रों में स्थितियां इसके उलट भी है। हथियारों की खरीद पर सबसे ज्यादा खर्च करने वाला देश, एक खाया अघाया भारत, एक भूखा भारत, एक ज्ञानी और एक अज्ञानी भारत! ज्ञान-मूढ़ गीता प्रकाशनी! मेरे सामने यक्ष प्रश्न यह है कि इस भूखे और अघाए भारत के बीच की दूरी कैसे मिटाई जाए, उससे भी बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि इनकी रूढ़ मानसिकता का समाधान कैसे किया जाए। प्रेमचंद ने सन 1930 में कहा था, - 'इस बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुलतावादी संस्कृति को यथार्थ के बिंब में कैसे गूंथा जाए- यह समस्या है।' 75 वर्ष बाद भी हमारी समस्या यह है कि उस जनता के मगज तक कैसे पहुंचा जाए जो सांस्कृतिक राष्ट्रवादी आस्था बनाम वैज्ञानिक चेतना का आधार है। पिछले कुछ दिनों में तर्क की चूलें हिल गई हैं। आस्था के उठे गड़ासे ने कितनों के सिर विच्छेद कर दिए हैं। या तो हम 'मोर्गन की तरह अपनी लेखकीय मृत्यु घोषित कर समर्पण कर दें या दाभोलकर, पानसारे और कलबुर्गी की तरह मरने को तैयार रहें' या रोहित वेमुला की तरह आत्महत्या कर लें।

मेरी झुंझलाहट की कई वजहें हैं, मसलन हमारे देश के लोग आज भी ठीक-ठीक तय नहीं कर पा रहे हैं कि उन्हें क्या चाहिए, उन्हें किधर जाना है? महिलाओं के लिए शिंगणापुर के शनि मंदिर में तेल चढ़ाने का अधिकार पाना प्राथमिकता है या भयंकर सूखे से त्राण के लिए पानी पाने का अधिकार? शिंगणापुर में वे अन्याय के खिलाफ एकजुट हो सकती हैं, बाकी पानी के लिए आपस में एक दूसरे का खून बहाने पर आमादा हो जाती हैं, जिस पर शंकराचार्य यह बयान देते हैं कि मंदिर में औरतों के जाने से दुष्कर्म और बढ़ेंगे कि साईं को पूजते हो, इसलिए सूखा पड़ा है, कि देश का एक बड़ा नेता कहता है कि ममता बनर्जी के पापों के चलते कलकत्ते

का निर्माणाधीन पुल गिरा। (आश्चर्य ममताजी अभी भी जीवित और सही सलामत हैं जबकि 37 से ज्यादा निर्दोष दबकर मर गए।)... गिनाने चलूं तो पोथी भर जाए। तुलसीदास ने ठीक ही कहा है- 'कादर मन कहुं एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा'॥ दूसरे पर दोषारोपण, पलायन या कीर्तन!

शुकर है, स्थितियां सर्वत्र एक-सी नहीं हैं। स्त्रियों के लिए मंदिरों के बंद कपाट खुलने लगे हैं। 'यंग लॉयर्स एसोसिएशन' के तर्कों का किसी के पास जवाब नही है कि कभी 'सती' और 'दहेज प्रथा' भी इस देश में हिंदू परंपरा मानी गई थी, विवेकवान लोग इसके खिलाफ हुए तो अब वह अपराध की श्रेणी में है। मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर न्यायाधीश दीपक मिश्र का कथन ध्यान देने योग्य है, 'क्या अध्यात्म सिर्फ पुरुषों के लिए है! शास्त्र तो भेद नहीं करता कोई भी भगवान या देवी की पूजा कर सकता है। हमने उस ईश्वर की मूर्ति को प्रतिष्ठित किया है तो क्या आप किसी से ये कह सकते है कि आप यहां मत आइए क्योंकि आप महिला है? यह तो हुआ हिंदू धर्म, दूसरे धर्मों पर तो हम खुलकर बात भी नहीं कर सकते।

क्या गजब कि एक तरफ हम धार्मिक पचड़े में अभी भी फंसे पड़े हैं (कई तो महज मिथकीय हैं, यथा ब्रह्मा की दो पत्नियों, सावित्री-सरस्वती के अधिकार का कोर्ट में विवाद है) दूसरी तरफ हम मंगल पर जाने की तैयारी कर रहे हैं, अभी तो जर्जर रेलयात्राओं के बारे में सोच-सोचकर रूह कांप जाती है, दूसरी तरफ बुलेट ट्रेन की उल्हासभरी बातें। क्या इन्हीं असमान बेढब चरमराते चक्कों पर सवार होकर चलेगा हमारे लोकतंत्र और विकास का रथ? किनका विकास भगोड़े उद्योगपतियों का या सबका?

बहरहाल, हमें तय करना है कि बाबावाद और विज्ञान में हमारे लिए क्या जरूरी है, भाववाद, भ्रष्टाचार और भौतिकवाद में हम किसे अपनाएंगे?

परंपरा को इतिहास के उत्सव और उपलब्ध साक्ष्यों से समझा जा सकता है, कोरी भाववादी कल्पनाओं और आग्रहों से नहीं। लूकाच ने इतिहास की सामर्थ्य के बारे में बताया है कि इतिहास का एक प्रमुख कार्यभार मनुष्य विरोधी शक्तियों के बरअक्स अतीत की मानवतावादी प्रवृत्तियों एवं उसके नायकों को इस रूप में उभारना भी होता है... कि वे युगों - युगों तक जनता को प्रेरित करते रहें।' सभ्यता और संस्कृति का ही प्रवहमान रूप होती है परंपरा। इसमें भी सबसे महत्वपूर्ण है संस्कृति, राजनीतिक उथल-पुथल और सभ्यताओं के उत्थान-पतन से भी ज्यादा, कारण संस्कृति में साहित्य, कला, संगीत, अर्थ, धर्म और बोध और जीवन की सारी धाराएं समाहित रहती हैं। चूंकि इतिहास का खेल है सो परंपराएं भी। नेहरू, सर सैयद अहमद खान, इकबाल, जिन्ना, दिनकर, राधाकृष्णन, अंबेडकर, राहुल सांकृत्यायन द्वारा उनके पहले से लेकर उनके बाद तक इतनी तरह से इतिहास, संस्कृति और परंपराओं की व्याख्या की गई है, कि हम किंचित कन्फूज कर जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं। सो हम कुछ मोटी-मोटी बातों तक ही महदूद रहेंगे।

हम दूसरों के गिरेबान में झांकने के पहले अपने गिरेबान में झांक लें तो बहुत सारी उलझनें

खुद-ब-खुद सुलझ जाएं। सबसे विकट सांप्रदायिकता के सवाल हैं। पर सवाल क्या सिर्फ हिंदू मुसलमान का ही है? क्या यह सवाल हिंदू-हिंदू और मुस्लिम-मुस्लिम और इस तरह की तमाम टकराहटों का नहीं है? धार्मिक या सांप्रदयिक कट्टरता दोमुंही नागिन है गैरों को भी डंसती है, अपनों को भी। मेरे लिए जितने जरूरी हिंदू हैं, उतने ही मुसलमान भी। अमीर खुसरो, बाबा अलाउद्दीन खां, बिस्मिल्लाह खां, कबीर, जायसी, रसखान, रहीम, नजीर और वे तमाम संगीतकार, फिल्मी गीतकार, संस्कृति के सार्थवाह उनके बगैर मैं अपनी संस्कृति की कल्पना भी नहीं कर सकता। अगर कहूं उपद्रवी तत्व, तो उधर भी हैं, इधर भी। मैं इस मायने में निर्द्वंद्व हूं कि अगर धर्म, महजब, जाति-संप्रदाय, और लिंगगत भेदभाव हमारे बीच से हटा दिए जाएं तो भारत जैसा कोई देश न हो।

मेरे सपनों के भारत में वह भारत आता है जो अपनी समृद्ध विरासत पर खड़ा है, जिसका आकाश खुला है, रूद्ध नहीं और जिसकी बाहों में पूरी कायनात है - सर्व समावेशी, सहिष्णु, विवेकवान, हर पल सतर्क पर कटुता रहित दुनिया में जहां-जहां जो जो उत्तम है, वह सब हमें चाहिए। वे थोथी अहं की टंकारे श्रेष्ठता, लिप्सा और जुगुप्सा की कहानियां, वे मूर्खताएं, वह गाफिली हम फिर नहीं दुहराएंगे। मेरे सपनों का भारत अंध राष्ट्रवाद का मारा नहीं होगा। वह भाववादी जुनूनों, जेहादों, कर्मकांडों, मजहबी उन्मादियों से मुक्त भारत होगा न हिंदू, न मुसलमान, न सिख, न इसाई, न कोई किसी से बड़ा न कोई किसी से छोटा।

मेरी बातें भले ही यूटोपिया लगे, मगर इसके बिना हमारी घृणात्मक प्रतिस्पर्धाएं बंद नहीं होंगी। यह दो हथेलियों की ताली है आसमान से नहीं टपकती, मुझे अलम्मा इकबाल का सुप्रसिद्ध शेर विश्वास नहीं प्रदान कर पाता :

'मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम, वतन है, हिंदोस्तां हमारा.....'

पहली पंक्ति भावोच्छास है, सही तो यह है कि 'मजहब ही है सिखाता आपस में बैर रखना' पूछेंगे क्यों तो हिंदू और इस्लाम दोनों ही अपने-अपने धर्म मजहब का रक्षण और इससे विधर्मियों का नाश करने का आह्वान करते हैं। क्या हम उससे मुक्त हो पाएंगे? दोनों धर्मों के धर्म ग्रंथों या शास्त्रों के उद्धरण देकर मैं अपने आलेख को लंबा नहीं खींचना चाहता।

गांधीजी ने 'त्याग का पाठ पढ़ाया, नेहरूजी ने 'विज्ञान टेक्नोलॉजीयुक्त विकास के मॉडल दिए और उन्हें देश के नए मंदिरों की संज्ञा दी, इंदिराजी ने 'गरीबी हटाओ तथा लाल बहादुर शास्त्री ने 'जय जवान जय किसान' को चरितार्थ करते हुए 'हरित क्रांति का उन्मेष किया तो अटल बिहारी वाजपेयी ने उस नारे में 'जय विज्ञान' को जोड़ते हुए 'भय भूख और भ्रष्टाचार मुक्त भारत' का नारा दिया। डॉ. अंबेडकर और बाद में किंचित जयप्रकाश नारायण और लोहिया ने सामाजिक न्याय और जाति उच्छेद के लिए आह्वाह किया जो सबसे जरूरी था। दूसरी सबसे बड़ी जरूरत थी परिवार नियोजन जिसे संजय गांधी ने उठाया मगर वह सब दुष्चक्र में फंसकर चूं चूं का मुरब्बा बनकर रह गया है। हमारे विकास की बहुतेरी योजनाएं इसलिए

सफल नहीं हो पा रही हैं कि जनसंख्या विस्फोट है, जनसंख्या सामाजिक न्याय और व्यक्ति उच्छेद से कन्नी काटकर हम 'समरसता' का बहाना करने लगे हैं। इन्हीं दुष्चक्रों में फंस रहा है प्रधानमंत्री का 'स्वच्छ भारत' सबका साथ, सबका विकास।

इसे गांवों, कृषि पर्यावरण और शहरों की ओर पलायन के मौजूदा संकट की पड़ताल से सहज ही जाना जा सकता है। राजीव गांधी की संचार क्रांति हो या और कुछ, विकास के बजाय घोटालों के घोंसले बन गए आज इस क्रांति के बावजूद हिमालय की आग को समय पर न बुझाया जा सका।

'हरित क्रांति के मुख्य आधार बने, उन्नत बीज, सिंचाई, कीटनाशक और नकदी फसलें। अमेरिकी मोनसांटों आदि कंपनियों ने बी.टी. (बैसिलस युरेंजिएंसिस) बीज उतारे जिन्हें जोर-शोर से प्रचारित किया जो ज्यादा पानी, ज्यादा कीटनाशक खींचते थे और जिन्हें दोबारा इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। कीटनाशकों ने सारे पानी में जहर घोल दिया। सिंचाई के लिए भूगर्भ का जल सालों साल चूसते रहे। पारंपरिक खेती बिला गई, हमने बदले में कैंसर पाया। यही नहीं ट्रांसजेनिक या जेनेटिकली मोडिफाएड बीज की फसलें जेनेटिकली हममें कितना नस्लीय क्षरण पैदा कर रही हैं, हमे नहीं मालूम! किसान क्या करे? उसे इस दम तोड़ महंगाई में पैसा चाहिए ताकि वह दहेज, घूस, शिक्षा की महंगी फीस, महंगी चिकित्सा और दीगर खर्चों के लिए कृषि से पैसा उगाह सके। उधर गांवों के मजदूर उत्पीड़न और पैसों के लोभ में शहर भाग गए हैं, मशीनों से अकेले खेती होती नहीं। मजदूर नहीं हैं तो बूढे-बूढ़ियों से गाय भैंस नहीं पलती सो दूध नहीं है फिर बछड़ों का क्या करेंगे? कसाई चील-कौवों से ताक रहे हैं, मौसम की मार अलग से दुश्चिंता का कारण है। एक तरफ यह मजबूरी, दूसरी और उपभोक्ता सामग्रियों के दलाल टी.वी. और अखबारों द्वारा लगातार फेंकी जा रही लिप्सा। लुटो।

लुटने का यह हाल कि सिंचाई के लिए बोरवेल से हो रही लूट ने भूगर्भ के जलस्तर को पाताल पहुंचा दिया। विदर्भ, मराठवाडा, बुदेलखंड में तो जल के लिए हाहाकार कृषक आत्महत्याओं के कारण और निवारण पर 'फांस' उपन्यास के लिए बहुतेरे गांवों का सर्वेक्षण करते हुए मैंने पानी के अकाल और खेती को बर्बाद होते देखा। 'कापूस' के लिए पानी नहीं, पीने के लिए पानी नहीं और चीनी मिलों के लिए गन्ना उगाने को ललचाया जा रहा था। उ. प्र. से महाराष्ट्र तक मैं जहां-जहां गया मैंने जंगल के जंगल खंखाड़ होते और सड़क के दोनों ओर के वर्षों पुराने पेड़ों को सूखता हुआ पाया। भूगर्भ का जलस्तर इतना नीचे चला गया है कि पेड़ों की जड़ों को भी पानी नहीं मिलता लोग मरें तो मरें आई.पी.एल. का विलास चलता रहेगा। यह विकास नहीं विनाश की कथा है जो देशवासियों, विशेषकर किसानों के खून से लिखी जा रही है। तय करना पड़ेगा कि हमारे देश को पहले प्यास जरूरी है या विलास और मुनाफा। जिस दिन खरीदा हुआ बोतलबंद पानी दूध से महंगा हुआ था, हम तब भी नहीं चेते थे। आज अनुपम मिश्र (आज भी खरे हैं तालाब) और राजेंद्र सिंह चेताते रह गए मगर हम नहीं चेते। विदेशी कंपनियों की तरह हम भी शामिल हो गए लूट में। पूरे देश में पानी पिलाना

पुण्य का काम माना जाता था, आज बीस रुपये में बोतलबंद सैकड़ों कंपनियां हैं। सवाल अभी शेष है, हम कैसा भारत चाहते हैं। मैं आंकड़ों नहीं उदाहरणों का सहारा लेता हूं। संभव है, आप दशरथ मांझी को जानते हो, गया के थे, पत्नी की बीमारी और अस्पताल के बीच पहाड़ आ गया था। पत्नी को तो न बचा सके लेकिन साधनहीन दशरथ ने पहाड़ को हटा दिया ताकि अन्य जिंदगियां बचाई जा सकें। संभव है, अक्षय द्विवेदी को आप न जानते हों। वे रीवां (म.प्र.) के हैं। उन्होंने भारतीय न्याय व्यवस्था में अपनी मां को इतना अपमानित होते देखा कि पहले वकील बने, फिर जज। मातृ अपमान का प्रतिशोध इस तरह लिया कि लोगों को त्वरित न्याय मिल सके। उन्होंने अपना वेतन आधा कर देने की दरख्वास्त दी है। सरकारी बंगला छोड़कर सिर्फ एक कमरे में रहते हैं, नौकरों को छुट्टी दे दी है। अविवाहित हैं, संपत्ति के नाम पर सिर्फ एक मोबाइल है। हमारे देश में अनेक दशरथ मांझी और अक्षय द्विवेदी हैं जो बिना किसी शोर-प्रचार के इस अभियान से जुड़े हैं-

धनबाद के पूर्व सांसद ए.के. राय, रांची के पूर्व डिप्टी कमिश्नर के.बी. सक्सेना, ब्रह्मदेव शर्मा (दिवंगत), रक्षामंत्री मनोहर पर्रिकर, कांग्रेस के ए.के. एन्थोनी और त्रिपुरा के पूर्व मुख्यमंत्री नृपेन चक्रवर्ती...। अगर शैतानों की सूची लंबी है तो सच्चे इनसानों की सूची भी है हमारे पास, जो छोटी भले हो जितनी भी है सच्ची संजीवनी है।

'जो लड़े दीन के हेत शूरा सोई।'

मेरे सपनों का भारत गांधीजी के मेरे सपनों के स्वराज से भी आगे हमारे क्रांतिदर्शी शहीदे आजम भगतसिंह का भारत है। उनके कोर्ट में दिए बयान के अंश को यहां फिर से याद दिला देना संदर्भ से परे न होगा- 'क्रांति से हमारा मतलब है कि वर्तमान वस्तु स्थिति और समाज व्यवस्था जो स्पष्टतः अन्याय के ऊपर आश्रित है, परिवर्तन पैदा करने वाले श्रमजीवी समाज के अत्यंत आवश्यक अंग है परंतु उनकी मेहनत का फल उन्हें नहीं मिलता दूसरे उसे हड़प जाते हैं और वह किसान जो सबके लिए अनाज पैदा करता है, अपने कुटुंब सहित भूखे मरते हैं, वह जुलाहा जो दुनिया की मंडी को बुने हुए कपड़ों से पूर्ण करता है, अपना और अपने बच्चों का तन ढ़कने भर की भी नहीं पाता। राजू लोहार और बढ़ई जो बड़े-बड़े विशाल भवन खड़े करते हैं, गंदे घरों और अनाथालयों में सड़ते, खपते और मरते रहते हैं और दूसरी ओर नोचने खसोटने वाले पूंजीपति जो समाज के रक्त शोषक हैं, अपनी सनकों की संतुष्टि के लिए करोड़ों खर्च कर डालते हैं। (आई.पी.एल. और बाबाओं के प्रवचन!) ये भयानक असमानताएं और सुविधा प्रगति की बलात विषमताएं बड़ी भारी दुरावस्था की ओर जा रही हैं...। यह प्रकट है कि समाज का वर्तमान रंग ढंग एक ज्वालामुखी के कगार पर बैठा रंगरेलियां कर रहा है। ... इस सभ्यता का संपूर्ण विशाल भवन यदि समय पर न बचाया गया तो चूर चूर हो जाएगा...।

मेरे सपनों के भारत में भगतसिंह की परिपक्वता और शौर्य, शिवाजी और सावरकर का साहस, गांधीजी के त्याग, सुभाषजी की छटपटाहट, नेहरू की वैज्ञानिक दृष्टि, राकेश शर्मा और कल्पना चावला तथा सुनीता विलियम की उड़ान, पेड़-पौधों में भी हमारी तरह का जीवन है

की समझ जगदीश चंद्र बोस, कबीर की ललकार, महात्मा फुले, शाहूजी, अंबेड़कर की सामाजिक क्रांति और देश का भला चाहने वाले करोड़ों किसान, बुद्धिजीवी और त्यागी महापुरुषों के खून-पसीने, ऊर्जा, विवेक के सौरभ और संजीवनी से बना है, जहां न कोई बड़ा होगा, न छोटा, न दबाएगा, न कपट करेगा, न गाफिल होगा।

आप कहेंगे, आप हवा में हो, यह सब आपका खयाली पुलाव है, यह सपना कभी पूरा होने वाला नहीं है। देश के अंदर बाहर दोनों धूं-धूं कर जल रहे हैं, पर मैं अभी भी शहीद कवि पाश को भूलना नहीं चाहता। सबसे बुरा होता है हमारे सपनों का मर जाना। आपकी निराशा के जवाब में मैं आपको केरल के कोल्लम जिले में ले चलता हूं जहां स्थित पुतिंगल देवी मंदिर में धर्म के नाम पर हुई आतिशबाजी में हुए अग्निकांड में इसी 10 अप्रैल को 114 लोगों की जानें गई और 350 से ज्यादा घायल हैं। जैसी कि सूचना है जिलाधीश ने इस आतिशबाजी पर रोक लगा दी थी लेकिन पुलिस और अन्य लोगों ने कहा कि चूंकि जिलाधीश एक मुस्लिम महिला है और उन्होंने उनकी अवज्ञा कर दी। एक तो महिला, दूसरे मुसलमान और मामला हिंदू मंदिर से जुड़ा हुआ। मेरा विवेकवान भारत वहीं चीख रहा था- जिलाधीश शैनामोल ने कहा 'न तो मैं हिंदू हूं, न मुसलमान, ना ही और कुछ (महिला आदि) मैं अपने देश भारत की एक जिलाधीश हूं।'

जब तक शैनामोल जैसे अधिकारी, अक्षय द्विवेदी जैसे न्यायाधीश, दशरथ मांझी जैसे संकल्पवान और उन जैसे लाखों भारतीय रहेंगे, मेरा सपना मरने वाला नहीं।

(लेखक प्रख्यात कथाकार हैं)

●

धर्म का आधुनिक संदर्भ : भारत

राम पुनियानी

बीसवीं शताब्दी के अंत और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का राजनीतिक और सामाजिक इतिहास धर्म की भाषा में गुथा हुआ है। यद्यपि धर्म जो कि सामाजिक परिघटना की जटिल समष्टि है, समाज का दर्पण है, स्मरणातीत काल से मानव इतिहास का निर्णायक पहलू रहा है, कहें तो हमारे पिछले कुछ दशकों की अवधि में राजनीति धर्म की वेशभूषा पहनती रही है।

समसामयिक दौर

पिछले तीन दशकों से विभिन्न राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक बदलावों के चलते, यथा सोवियत संघ की शक्ति का पतन, समाजवादी अर्थव्यवस्था का ध्वंस, वैश्वीकरण का प्रतिकूल प्रभाव, एकध्रुवीय विश्व का अस्तित्व में आना, धर्म सामाजिक दायरे में अत्यधिक विशिष्ट बन गया है। धर्म के नाम पर चल रही विभिन्न गतिविधियों का स्मरण कीजिए। सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान पर आधिपत्य एवं पाकिस्तान में मदरसों को प्रोत्साहन, जो कि युवाओं को आंतकवाद में दीक्षित कर रहे हैं अन्य प्रमुख मील के पत्थर हैं। जिहाद के नाम पर राजनीतिक कार्य किए गए, जो कि काफिरों को मारने या इसी तरह के कार्यों के लिए थे।

इसी के समानांतर हिंदू धर्म के नाम पर चल रही राजनीति थी। हिंदुत्व ने अपना दावा ठोका और बाबरी विध्वंस एवं उत्तर बाबरी हिंसा ने भारत में लोकतांत्रिक राजनीति के मूलाधार को हिलाकर रख दिया। 9/11 2001 के विश्व व्यापार केंद्र पर हमले ने 3000 निर्दोष लोगों को मार कर घोषित किया कि जिहाद का यही अर्थ है। इसे भी नहीं भूलना चाहिए कि जार्ज डब्ल्यू. बुश ने अफगानिस्तान, जहां ओसामा रह रहा था, पर हमले को क्रुसेड घोषित किया। अफगानिस्तान पर हमले की जबरदस्त घटना ने धर्म को वैश्विक स्तर पर और धर्म के नाम पर जारी हिंसा ने विभिन्न जगहों, विशेषकर भारत में धर्म को सबसे आगे ला दिया। ठीक उसी समय अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में ईसाई अधिकार, खाड़ी देशों में राजनीतिक इस्लाम बहाबी और सलाफी इस्लाम का उभार देखा गया। आश्चर्यजनक तेजी के साथ जनसंख्या के विभिन्न हिस्से रूढ़िवादी और कट्टरपंथी मूल्यों के चंगुल में फंस गए। सामाजिक स्तर पर धार्मिकता और भी ज्यादा गुजर हो गई। हमने भी सामाजिक संस्कृति को धार्मिक अभिव्यक्ति के प्रभाव में अपना स्वर बदलते देखा। वैश्विक स्तर पर मुस्लिम देशों पर लगातार हो रहे हमलों

से मुस्लिमों का एक बड़ा तबका भयभीत और संत्रस्त हुआ और उनमें से अधिकांश अपनी बस्तियों तक सिमटकर रह गए।

भारतीय संदर्भ

भारत में धार्मिकता वैष्णो देवी, तिरुपति बालाजी मंदिर और अन्य मंदिरों के साथ शिरडी साईं मंदिर की तीर्थयात्राओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर थी। बड़ी संख्या में लोग इन तीर्थयात्राओं में सम्मिलित होते चले गए। इस अवधि में मंदिरों को प्राप्त होने वाला चढ़ावा बढ़ता चला गया। समाज के एक बड़े हिस्से के लिए धार्मिकता केंद्रीय मानक बन गई। एक ओर टेलीविजन चैनलों ने कभी खत्म न होने वाले धारावाहिकों का प्रदर्शन किया जिन्होंने रूढ़िवादी मूल्यों को भड़कीले रूप में प्रदर्शित किया, कोई भी पारिवारिक निर्णय पुरोहित और ज्योतिषी के परामर्श के बिना पूर्ण नहीं माना जाने लगा, तो दूसरी ओर संघर्षरत जन मीडिया में प्रदर्शित होने वाले मुद्दों से धीरे-धीरे बाहर होते गए। धार्मिक कार्यक्रमों के प्रसार से दिन का प्रारंभ करने वाले चैनलों की भरमार को चरमसत्ता की शक्ति को समर्पित विशेष चैनलों ने और भी बढ़ा दिया। रामायण और महाभारत जैसे जबरदस्त धारावाहिकों के प्रसारण के समय से टेलीविजन सेटों से जुड़े समूह को आस्था, संस्कार, साधना इत्यादि चैनलों से आध्यात्मिकता की अतिरिक्त खुराक प्राप्त हुई। साथ ही समाचारपत्रों ने आध्यात्मिकता के स्तंभ प्रारंभ किए। इसे भी नहीं छोड़ना चाहिए कि अत्यंत शिष्ट समाचारपत्रों में 'द स्पीकिंग ट्री' के स्तंभ एवं साधुओं के प्रवचन की रिपोर्ट समाचारपत्र का हिस्सा बनीं, जबकि मुफस्सिल प्रेस, भाषा प्रेस, क्षेत्रीय प्रेस ने किसी विशेष कर्मकांड के महत्व अथवा किसी एक या अन्य आचार्य, धर्मगुरु को समर्पित अधिक स्थान देना प्रारंभ किया।

स्वतंत्रता के बाद

स्वतंत्रता के समय नेहरू ने कदम आगे बढ़ाया और नेताओं के मंदिरों के आधिकारिक या विशिष्ट दौरे पर रोक लगाई। अब मंदिर और दरगाह हर संभावित अवसर पर राजनेताओं के नियमित भ्रमण के स्थल बन गए। सामाजिक कार्यक्रमों पर धार्मिक रंग और ज्यादा गाढ़ा हो गया। यद्यपि राजनीतिक विमर्श की भाषा धर्म के परिप्रेक्ष्य में बदल गई और जिनकी राजनीति का आधार धर्म की भाषा थी, वे सामाजिक परिदृश्य में ज्यादा हठधर्मी और विशिष्ट हो गए।

इन राजनीतिक संस्थाओं द्वारा उठाए गए मुद्दे उनकी राजनीतिक पहचान से जुड़े थे, लोगों के अस्तित्व अथवा रोजगार से जुड़े वास्तविक मुद्दे पीछे रह गए। ध्यान देने की बात है कि धार्मिक पहचान पर आधारित राजनीति ने जनोन्माद को बढ़ाया और इशारा पाकर ऐसे मुद्दों को उछाला जिनके परिणामस्वरूप हिंसा हुई।

आज के 'बाबा'/देवपुरुष

इस दौर में बाबा, आचार्य, बापू और गुरु प्रचुरता में फैले। यद्यपि इन धर्म पुरुषों के वास्तविक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि एक ओर तो

देश का ध्यान खींचने वाले बड़े 'खिलाड़ी हैं और दूसरी ओर स्थानीय बाबा भी बहुत हैं जो अपना जाल दूर-दूर तक फैला रहे हैं। इन बाबाओं की कई पहचान है, इनमें से एक उनका भव्य पहनावा है। वे बड़ी संख्या में भीड़ इकठ्ठी कर लेते हैं, क्योंकि वे अच्छे वक्ता हैं और जनमानस और सामाजिक समूह की उनकी अच्छी समझ है। राजनीति के अखाड़े से जुड़े लोग उनके निकट रहना चाहते हैं, उद्योगपति उनका आशीर्वाद चाहते हैं और व्यापारिक विवादों में भी उनकी दैवीय कृपा व हस्तक्षेप के अभिलाषी होते हैं। वे देश के सभी भागों में फैले हैं और उनमें से कई ने ढोंग और सेक्स स्कैंडलों में समाचारों की सुर्खियां बटोरीं, क्या हुआ यदि बच्चे उनके आश्रमों में रहस्यमय परिस्थितियों में मर रहे थे। इनमें यह समानता थी कि वे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निकट थे, उनके पास अकूत संपत्ति थी और वे विशालकाय भू-संपत्ति के स्वामी थे।

इनमें से कुछ लोगों के स्वास्थ्य सुधार के विशेषज्ञ बन गए तो कुछ ने लोगों को लंबे समुद्री जहाजों में 'दैवीय मामलों' पर विचार-विमर्श करने के लिए यात्रा पर ले जाकर आध्यात्मिक शांति प्रदान की। उनमें अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ थे, यथा- ज्योतिष एवं अन्य आस्था आधारित अनुशासन। उनमें से कुछ आक्रामक रूप से इस बात पर डटे रहे कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह विज्ञान है, वास्तव में किन्हीं अर्थों में उन्होंने अंधभक्ति को बढ़ावा दिया। उनमें यह समानता थी कि वे संपन्न थे, उनकी पहुंच थी, जो वे कहते थे उसमें उनका आत्मविश्वास झलकता था, बावजूद इसके कि उसका आधार सच है या नहीं। यद्यपि उनमें से कुछ के पास संभवतः पवित्र ग्रंथों की थोड़ी बहुत समझ थी, जबकि अधिकांश विशेष धर्म की भाषा का सहारा लेते थे। उनमें यह समानता थी कि वे धर्म के नाम पर कार्य कर रही राजनीतिक धाराओं के अतिशय निकट थे। उनमें से कई आधुनिक भाषा में मनुस्मृति के मूल्यों की बात करते थे, तो कुछ भावनात्मक राहत प्रदान करने में निपुण परामर्शदाता थे। इनमें से हर एक विशेष गुणों से संपन्न था।

धर्म : सामाजिक परिघटना

संभवतः धर्म अपने आप में समाज में सबसे बड़ी परिघटना है। यह विस्तृत है, इसका स्पेक्ट्रम व्यापक है और इसमें मानव जीवन के अधिकांश पहलू शामिल हैं। कई चिंतकों ने इसे अपनी दार्शनिक प्रणाली के अंग के रूप में समझने का प्रयास किया है, अतएव हमारे पास धर्म है जिसकी व्याख्या समाज के दर्पण के रूप में की जा सकती है, धर्म जनसाधारण के लिए अफीम है और इस हृदयहीन संसार में वंचित वर्गों की आह की अभिव्यक्ति भी है। आध्यात्मिकता के साथ इसका संबंध बहुत गहरा है। अधिकांश धर्म अलौकिक सत्ता की बात करते हैं तो कुछ ही धर्म हैं जो संसार की नियामक सत्ता से इनकार करते हैं। अधिकांश धर्मों में पूजा की पद्धति अलग है; यह पुनः संप्रदायों और उपसंप्रदायों पर निर्भर है और भूगोल से भी प्रभावित होती है। अलौकिक शक्ति की अवधारणा को प्रतिपादित करने वाले धर्मों के पास 'ग्रंथ' हैं जो कि दैवीय प्रकटीकरण है। धर्म की परिघटना में पुरोहित वर्ग केंद्रीय स्तंभ है, ईश्वर के वचन, उस

पवित्र ग्रंथ का व्याख्याता है। ऐतिहासिक रूप से पुरोहित वर्ग समाज के शक्तिशाली वर्ग के निकट रहा है और स्थापित मानकों और कर्मकांडों आदि के पालन के लिए यथास्थितिवादी है। यह बात धर्म के संस्थापकों के मूल चिंतन के विरुद्ध है, जो कि अपने समय के विद्रोही थे।

ईश्वर के दूत माने गए लोग हिंसा, अत्याचार, अन्याय की व्यापकता से विक्षुब्ध थे। इसी कारण उन्होंने नए मूल्यों का आह्वान किया जो कि उस समय प्रचलित गलत प्रथाओं से लोगों को राहत दे सके। एक बार सामाजिक शक्तियों द्वारा स्वीकृति पाने के बाद धर्म प्रायः रूढ़िवादी बन गए और विद्रोहियों को नर्क का भय दिखाया गया जो कि विद्रोह को कठोरता से रोकता था। चार्वाक, जिसने वेदों की दैवीय प्रकृति को चुनौती दी, को डराया गया और लोगों को बताया गया कि चार्वाक के अनुयायी, लोकायत परंपरा को मानने वाले अगले जन्म में गीदड़ बनेंगे। पुनर्जागरण के आरंभिक भाग में बहुत से वैज्ञानिकों को नारकीय दंड दिए गए और उनमें से कुछ को तो ज्ञान से संबंधित मामलों में पुरोहित वर्ग के आदेश की अवज्ञा करने के लिए जिंदा जला दिया गया।

यद्यपि स्वयं ईश्वर की अवधारणा में समय के साथ बड़े बदलाव हुए हैं, आदिवासियों की प्रकृति पूजा, प्रकृति, सामाजिक जीवन अथवा व्यक्तिगत गुणों के किसी पहलू का निरीक्षण करने वाले देव अथवा देवियों से युक्त बहुदेववाद का रूपांतरण, देहधारी और अतिमानवीय गुणों से युक्त ईश्वर की अवधारणा से भौतिक अस्तित्व से आगे जाकर सत्य, अहिंसा, ज्ञान आदि अवधारणा के रूप में निराकार ईश्वर में हुए बड़े बदलाव का दायरा इतना व्यापक है कि जिसका विश्लेषण करना मुश्किल है।

धर्म के अन्य पहलू जैसे- कर्मकांड, पूजा-स्थल और तीर्थयात्रा का समाज में अपना ही महत्व है। पुरोहित वह वर्ग है जिसने धर्म के इस पहलू को आकार दिया। अत्यंत प्राचीन काल से संतों ने पुरोहित वर्ग के विपरीत नैतिक मूल्यों पर अधिक बल दिया, कर्मकांडों की निंदा की और समाज में गरीब तबके के साथ सामाजिक रूप से जुड़े। यहां संन्यासियों का बड़ा संप्रदाय और कई अन्य सामाजिक समूह भी हुए जो कि धर्म के इर्द-गिर्द जीवन यापन कर रहे थे। इसी तरह भारत में साधु स्वयं में एक विशेष वर्ग है।

आज इस मध्यकाल के संतों के पूर्णतया विपरीत देव पुरुषों की बहुलता देखते हैं। यद्यपि जनसामान्य संत शब्द का हल्के अर्थ में प्रयोग करता है, उनके लिए इस शब्द के कई अर्थ हैं। कुछ के लिए पैगंबर की शिक्षाएं धर्म हैं, कुछ के लिए पवित्र पुस्तकें धर्म हैं, जबकि किसी समूह के लिए धर्म की संस्था और पुरोहित वर्ग का प्रभुत्व धर्म को परिभाषित करता है। यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि धर्म से उभर रहे नैतिक मूल्यपूरक हैं, जबकि पहचान/आइडेंटिटी से संबंधित मुद्दों में यहां मतभेद है।

धर्म : पहचान चिह्नक

समकालीन परिदृश्य में धर्म के चिह्नक के रूप में आइडेंटिटी का प्रयोग ज्यादा किया जाता है। यद्यपि भारत में मंदिर एवं मस्जिद से जुड़े मुद्दे परिदृश्य पर हावी हो जाते हैं, धर्म द्वारा

सिखाए गए नैतिक मूल्य पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। भारत में हिंदुत्व एवं कुछ मुस्लिम देशों में मौलाना मौदूदी और तालिबान को पसंद करना आइडेंटिटी के मुद्दों की ओर पुनः लौटना है।

वैश्विक स्तर पर धर्म के नाम पर सबसे बड़ी हिकमत तब सामने आई, जब धार्मिक पहचान सभ्यता के सबसे महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में प्रस्तुत हुई और वैश्विक राजनीति सभ्यताओं के संघर्ष के रूप में सामने आई। सैमुअल हटिंग्टन ने अमेरिका द्वारा तेल संपन्न देशों पर हमले को पिछड़ी इस्लामी सभ्यता के विरुद्ध युद्ध के रूप में व्याख्यायित किया जो कि हटिंग्टन के ही अनुसार पश्चिमी विकसित सभ्यता के विरोध में है। सभ्यताओं के संघर्ष का सिद्धांत फ्रांसिस फूकोयामा के लेख 'इतिहास का अंत' से निकला जिन्होंने घोषित किया कि सोवियत राज्यों के पतन के साथ स्वतंत्रता और लोकतंत्र पर साम्यवाद का भय समाप्त हो गया, इसलिए इतिहास का भी अंत हो गया। इस विचार को हटिंग्टन द्वारा आगे ले जाया गया जब उन्होंने घोषित किया कि सोवियत विश्व और मुक्त विश्व के मध्य संघर्ष का स्थान इस्लामी सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता के मध्य संघर्ष ने ले लिया है।

लिहाजा यह साम्यवाद, पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने जिसको स्वतंत्रता के लिए खतरे के रूप में प्रचारित किया, अब उन्होंने ही इस्लाम को दुनिया के लिए बड़े खतरे के रूप में प्रचारित किया। इन सभी ने राजनीतिक दायरे में धर्म की उपस्थिति को और अधिक तीव्र किया। अब तक साम्यवाद पश्चिमी मॉडल की राजनीतिक प्रणाली का विपरीत था, अब इस्लाम के विपरीत बनने के साथ धर्म राजनीति के बेहद केंद्र में आ गया। इसके साथ विभिन्न रूढ़िवादियों के मध्य दौड़ और तेज हो गई। अमेरिका और कुछ पश्चिमी देशों में इसाई रूढ़िवाद, भारत में हिंदू रूढ़िवाद और कुछ मुस्लिम बहुल देशों में इस्लामी रूढ़िवाद ने अपना दावा किया। यद्यपि ये राजनीतिक धाराएं एक-दूसरे को बढ़ावा देती हैं, वे आक्रामक रूप से यथास्थितिवाद की भी समर्थक होती हैं। ये जाति और लिंग के जन्म आधारित अधिक्रम को प्रश्रय देती हैं, समाज के निम्न तबके और विशेषकर महिलाओं को समाज के हाशिए पर ढकेल देती है। तेल के कुओं को प्राप्त करने की लोलुपता और वैश्विक राजनीति के प्रभुत्व के इस पूरे खेल में, इस्लाम, मुस्लिम सबसे बुरी तरह पीड़ित थे और आगे घटने वाले घटनाक्रम से मुसलमानों के एक बड़े हिस्से ने खुद को असुरक्षित महसूस किया।

धर्मयुद्ध, जिहाद और क्रुसेड

साम्राज्य- राज्य धर्म को कैसे लें, यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसका बहुत से शासकों ने सामना किया और बाद में राष्ट्र-राज्य को भी इसका सामना करना पड़ा। राजाओं ने धर्म की पहचान का उपयोग अपने राज्य विस्तार के लिए किया चाहे वह जिहाद, क्रुसेड या धर्मयुद्ध हो। राजाओं का साबका विभिन्न धार्मिक समुदायों से भी पड़ा। भारत में यद्यपि अकबर जैसे राजाओं ने सुलह-ए-कुल, धर्मों के मेल-जोल की नीति अपनाई, औरंगजेब जैसे शासक कुछ स्तरों पर अन्य धर्मों को लेकर असहिष्णु थे। इसके बावजूद भारत में शासकों के वैवाहिक संबंध धार्मिक चहारदीवारियों से बाहर थे। एक-दूसरे की धार्मिक परंपराओं से छोटी-छोटी चीजों को

अपनाकर जनसामान्य ने समन्वयात्मक परंपरा का परिचय दिया और धार्मिक विविधता का जश्न मनाया। भारतीय संदर्भ में सूफी और भक्ति इसके बड़े उदाहरण हैं।

औपनिवेशिक दौर में ब्रिटिश शासन ने 'बांटो और राज करो' का खेल खेला और इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण का उपयोग कर धार्मिक समुदायों में भेदभाव के बीज बोए। यह वही नीति थी जिसने आगे चलकर विभाजन की त्रासदी को जन्म दिया और आगे जाकर स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिक समस्याओं के अवशेषों को और बदतर बनाया।

राष्ट्र राज्य के रूपांतरण के विभिन्न प्रकारों के साथ ठीक-ठीक कहें तो धर्म की संस्था को लेकर शासकों द्वारा अलग-अलग रवैया प्रदर्शित किया गया है। उन देशों में जहां जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो गई थी, धर्म को पृष्ठभूमि में ढ़केल दिया गया और राज्य एवं धर्म की संस्था के बीच दीवार खड़ी कर दी गई। कुछ हद तक धर्म हर एक का व्यक्तिगत मामला बन गया।

उन राष्ट्र राज्यों में जहां जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई धार्मिकता की पकड़ ने सामाजिक और राजनीतिक वृत्त में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया। जबकि पाकिस्तान जैसे देशों में धर्म तानाशाहों का साथी बना, भारत में धर्म का यह संबंध घटता-बढ़ता रहा। राज्य ने धर्म को व्यक्तिगत वृत्त तक परिसीमित करना चाहा और सभी धर्मों को समान माना। दुर्भाग्यवश धार्मिक पहचान के साथ राजनीतिक उत्पत्ति ने विभिन्न प्रकार के पुरोहित वर्ग के साथ राजनीतिक शक्ति का गठबंधन करना चाहा और इस प्रक्रिया में पुरोहित वर्ग और बाबा अत्यधिक वर्चस्वशाली हो गए।

समाजवादी राज्य और धर्म

समाजवादी राज्यों का धर्म के प्रति अलग नजरिया था। उन्होंने कथन के पहले भाग को ग्रहण किया : धर्म अफीम है... और आदर्शतः रूस में चर्च पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यह धार्मिकता को नहीं रोक सका और सोवियत व्यवस्था के ध्वंस के साथ ही ये चर्च अत्यधिक प्रतिशोध की भावना से पुनः प्रकट हो गए। क्या ऐसी सामाजिक परिघटनाएं आदेश के द्वारा प्रतिबंधित की जा सकती हैं? आधुनिक राष्ट्र राज्यों में धर्म की भूमिका के बारे में आज के समय में बहुत सारे भ्रम उठ खड़े हुए हैं।

भारत में दो प्रमुख भ्रम प्रबल हैं। एक राजाओं के इर्द-गिर्द उन्हें धर्मनिरपेक्ष या सांप्रदायिक चिह्नित करने को लेकर है। धर्मनिरपेक्षता की सच्ची भावना राष्ट्र राज्य से संबंधित है तो इस तरह की कवायद व्यर्थ है। साम्राज्यों के शासक के लिए हम यथोचित रूप से उदार या असहिष्णु शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। दूसरा भ्रम धर्मनिरपेक्षता की दो धारणाओं के बीच संघर्ष के कल्पित भाव का है, जिनमें से एक सर्व धर्म समान आदर तथा दूसरी धर्म और राज्य के बीच फौलादी दीवार की है। वास्तव में धर्मनिरपेक्षता तत्वतः यह है कि धार्मिक पुजारी वर्ग सामाजिक-राजनीतिक नीतियों को निर्धारित नहीं करेगा। राज्य धार्मिक समागम, कुंभ मेला और हज यात्रा आदि से संबंधित धर्मनिरपेक्ष पहलुओं की भलीभांति देखभाल कर सकता है।

लोग अपने जीवन में जिस किसी भी धर्म को पसंद करते हैं, उसका पालन करने के लिए स्वतंत्र है और उन परंपराओं का पालन करने के लिए भी जो देश के कानून का उल्लंघन नहीं करती हैं और यहीं मामला खत्म होना चाहिए।

अंतिम बात- धर्म और राजनीति

वर्तमान सामाजिक वास्तविकता को समझते हुए किसी को न केवल देवपुरुषों की स्पष्ट परिघटना से टकराना चाहिए, बल्कि उन सामाजिक, राजनीतिक वास्तविकताओं को भी देखना चाहिए जो इन परिघटनाओं के उदय की परिस्थितियों हेतु जिम्मेदार हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पिछले तीन दशकों में बहुत गरीब विरोधी रूप लिया और एक ओर तो जाति और लिंग के सामाजिक संबंधों में सामाजिक यथास्थिति के सिवाय धनी वर्ग का एक धड़ा निर्मित किया और दूसरी ओर अभावग्रस्त लोगों का समूह निर्मित किया जो कि पूर्ण वंचना की स्थिति में जीवनयापन कर रहे थे। धर्म के नाम पर चल रही राजनीति एक ऐसा वातावरण निर्मित करती है जहां संपन्न वर्ग इस राजनीति से लाभान्वित हुआ और अकिंचन वर्ग को धर्म के नाम पर पैदल सेना की तरह इस्तेमाल किया जाता है। अतः एक वर्ग इससे लाभान्वित हुआ और दूसरे वर्ग को जज्बाती अफीम की खुराक दी गई जिससे कि अपनी वंचना की स्थिति में भी वे शांत रह सकें। यह कहा जा सकता है कि देव पुरुषों के पास समाज में यथास्थिति को बनाए रखने की विशेष व्यवहारकुशलता है।

देव पुरुषों की इस परिघटना से टकराने के लिए केवल कुछ ही गंभीर अध्ययन उपलब्ध हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि कुछ दशकों पहले सुना जाने वाला मुक्ति धर्मशास्त्र सामाजिक परिदृश्य से पूरी तरह गायब है। समेकित सामाजिक व्यवस्था देने वाली समन्वयात्मक परंपरा पर भी अब विभाजनकारी रूढ़िवादी लोगों द्वारा हमले किए जा रहे हैं। निहित स्वार्थों द्वारा उत्पन्न किए गतिरोध से बाहर निकलने के लिए रास्ते तलाश करने होंगे। इस समस्या के समाधान के लिए देव पुरुषों की भूमिका और राजनीतिक क्षेत्र में धर्म के इस्तेमाल इन दोनों की और गहरी समझ का विश्लेषण आवश्यक है।

संदर्भ :

चोपड़ा, बी.डी., एशिया में धार्मिक रूढ़िवाद, ज्ञान, दिल्ली, 1994

शर्मा, गीतेश, धर्म के नाम पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.-18

इंजीनियर, असगर अली, प्रोफेट ऑफ नान वायलेंस, वितास्ता, 2010

मेहता, उदय, परंपरागत और आधुनिक भारत में धर्म और गुरु, सुगावा, पुणे, 2015

पुनियानी, राम, धर्म, शक्ति और हिंसा, सेज, दिल्ली, 2007

सर्गी टोकारे, धर्म एवं समाज, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1986, पृ.-9

http://en.wikipedia.org/wiki/Theology.

(लेखक आईआईटी मुंबई के पूर्व प्रोफेसर हैं)

(मूल अंग्रेजी लेख का हिंदी अनुवाद, डॉ. रामप्रकाश यादव)

समता, समृद्धि और उदारता

अरुण कुमार त्रिपाठी

मेरे सपनों का भारत समतामूलक, समृद्ध और उदार होगा। उसमें गैर बराबरी, गरीबी और कट्टरता नहीं होगी। वह दबंग, बाहुबली और महाशक्ति (हालांकि यह विशेषण नकारात्मक नहीं हैं) भले न बने लेकिन किसी से कमजोर नहीं होगा। वह अपनी सुरक्षा में सक्षम होगा लेकिन किसी कमजोर को सताने की इच्छा उसमें नहीं होगी। वह कमजोर व्यक्ति या समूह देश के भीतर भी हो सकता है और बाहर भी। कोई भी पार्टी और व्यक्ति सत्ता में आए उसकी लोकतांत्रिक संस्थाएं निर्भीकता और जनता के प्रति सेवा भाव से खड़ी रहेंगी। उसकी लोकतांत्रिक संस्थाएं किसी पार्टी की विचारधारा के सापेक्ष नहीं होंगी। वे संविधान के सापेक्ष होंगी। संभव है वे समय समय पर सत्ता में आने वाले शासक दलों की विचारधारा के अनुरूप बनने वाली नीतियों को लागू करने का उपकरण बनें लेकिन अगर वे नीतियां संविधान की भावना और मूल चरित्र के विरुद्ध हों तो वे उन्हें ठुकराने का भी साहस कर सकेंगी।

मेरा भारत ऐसा भारत होगा जिसमें विभिन्नताएं तो होंगी लेकिन विषमताएं कम से कम होंगी। वहां विषमता को विभिन्नता बताकर संरक्षित नहीं किया जाएगा और न ही विभिन्नता को विषमता की संज्ञा दी जाएगी। विभिन्नता और विषमता के अंतर को न समझ पाने के कारण भारत के भीतर आज विभिन्न तरह की समस्याएं खड़ी हुई हैं। एक तरफ विषमता को संरक्षण दिया जा रहा है तो दूसरी तरफ विभिन्नता को निशाने पर रखा जा रहा है। जाति और धर्म के मौजूदा टकराव इसी गलतफहमी से निकले हैं। दूसरी समस्या भारत की महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा से भी पैदा हुई है। उसने देश के भीतर समता और समृद्धि कायम करने के बजाय कुछ लोगों की समृद्धि और बाकी लोगों के लिए विषमता कायम की है। जिसके कारण उसकी सारी शक्ति उत्पादन कार्यों में नहीं लग पाई है और वह या तो दूसरों के उत्पादन पर निर्भर है या उनकी पूंजी का मुखापेक्षी है। इसी के साथ जुड़ी है भारत की यूरोप जैसा देश बनने की लालसा। वह उन्हीं की तरह से उपभोग करना चाहता है उन्हीं की तरह से नाभिकीय हथियारों से सुसज्जित होना चाहता है। उसे विश्वास है कि वह नाभिकीय हथियारों को जमा करके ज्यादा सुरक्षित और एकजुट रहेगा। पर सोवियत संघ और ग्रेट ब्रिटेन का उदाहरण इसके विपरीत है। वे नाभिकीय हथियारों के बावजूद बिखर गए और उनका साम्राज्य सिमट गया।

दरअसल भारत की आजादी की लड़ाई जिन उद्देश्यों के लिए हुई थी उसमें भारत का अपना ही नहीं पूरे विश्व का कल्याण था। पर भारत ने अपना वह सपना और रास्ता छोड़कर वही रास्ता अपना लिया जो यूरोप का था। धीरे-धीरे वह दुनिया को कुछ नया दे पाने की जगह दुनिया की समस्याएं अपने सिर पर ओढ़ता जा रहा है। लगता है वह जैसे जैसे महाशक्ति बनेगा वैसे वैसे या तो दुनिया की समस्याएं ओढ़ेगा या दुनिया के लिए समस्याएं खड़ी करेगा। भारत सोचता है कि यह अपनी वैश्विक समस्याओं से बचने का एक तरीका है। दूसरों के लिए ज्यादा से ज्यादा समस्याएं खड़ी करो और तो वे आप के लिए उदार और नरम हो जाएंगे।

भारत की दिक्कत यह हुई है कि वह अपनी आजादी या स्वराज के सपनों जैसा विश्व बना नहीं पाया और बाद में फिर वैसा ही बनने लगा जैसा मौजूदा विश्व है। यह दिक्कत उसकी नाभिकीय नीति के साथ भी हुई और उसके आंतरिक आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रमों के साथ हुई। भारत ने अपनी आजादी के साथ परमाणु हथियार न बनाने और पूरी दुनिया में परमाणु निरस्त्रीकरण का अभियान चलाने का संकल्प जताया था। लेकिन पहले उसने अघोषित तरीके से परमाणु हथियार बनाया और बाद में घोषित तरीके से उस नीति पर चलने लगा। पहले वह अनाक्रमण की नीति पर चल रहा था और अब आक्रामण की नीति अपनाने की राह पर चल निकला है। इसके लाभ भी हैं और हानि भी। लाभ यह है कि वह तात्कालिक रूप से सुरक्षित हो गया लेकिन हानि यह है कि वह दीर्घकालिक रूप से असुरक्षित हो गया। दीर्घकालिक असुरक्षा का कारण यह है कि उसने दुनिया में शांति और परमाणु निरस्त्रीकरण के अभियान को छोड़ दिया और दुनिया टकराव और हथियारों का जखीरा जमा करने के रास्ते पर चल निकली। उससे भारत का पड़ोस तो असुरक्षित हुआ ही भारत स्वयं भी असुरक्षित होने की राह पर है।

महात्मा गांधी दो विश्वयुद्धों के बीच खड़े होकर अहिंसा और सत्याग्रह के हथियार से दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्य से लड़ रहे थे। उन्हें अपने साधनों पर इतना भरोसा था कि उन्होंने विश्व युद्ध के दौरान एक बार ब्रिटेन को आक्रामणकारियों के आगे हथियार डाल देने का सुझाव दे डाला था। ब्रिटेन के लोगों ने तो उनका सुझाव नहीं माना और कहा कि आप का सुझाव तत्काल मानने लायक नहीं है। इस पर गांधी का कहना था कि मेरे सुझाव तो तत्काल के लिए ही होते हैं बाद के लिए नहीं। लेकिन जब उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन छेड़ा तो यही प्रश्न उनके सामने रखा गया। कहा गया कि अगर ब्रिटेन की सेना हटी और जापान और जर्मनी की सेना आ गई तो वे क्या करेंगे, इस पर गांधी ने कहा कि भगवान के लिए आप चले जाइए और हमें ईश्वर के हवाले छोड़ दीजिए।

इसी विश्वास के साथ महात्मा गांधी ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी और उनका स्वराज का सपना कुछ इन्हीं विचारों पर केंद्रित था। आज के देशभक्तों की हुंकार सुनेंगे तो लगेगा कि गांधी सबसे बड़े देशद्रोही थे। शायद उनकी हत्या करने वाले व्यक्ति और विचारधारा ने उन्हें इसी रूप में मान भी लिया था। इसलिए जब आज सरकार से असहमत लोगों के राष्ट्रप्रेम

पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं तो महात्मा गांधी के सपनों के भारत के विचार को जरूर सुनना चाहिए। गांधी ने कहा था- 'भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएं रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए वह सब उसे भारत में मिला है। भारत अपने मूल में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं है। भारत दुनिया के उन गिने चुने देशों में है जिसने अपनी पुरानी संस्थाओं को कायम रखा है। साथ ही वह अभी तक अंधविश्वास और मूल भ्रांतियों की काई को दूर करने और इस तरह शुद्ध और सहज रूप प्रकट करने की सहज इच्छा भी प्रकट करता है। उसके लाखों करोड़ों निवासियों के सामने जो आर्थिक कठिनाइयां खड़ी हैं उसे सुलझा सकने की उसकी योग्यता में मेरा विश्वास इतना उज्जवल कभी नहीं रहा जितना आज है।'

इसके बाद वे भारत के मकसद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- 'मेरा विश्वास है कि भारत का ध्येय दूसरे देशों के ध्येय से कुछ अलग है। भारत में ऐसी योग्यता है कि वह धर्म के क्षेत्र में दुनिया में सबसे अलग हो सकता है। भारत ने स्वेच्छापूर्वक जैसा प्रयत्न किया है उसका दुनिया में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। भारत को फौलाद के हथियारों की उतनी जरूरत नहीं है जितनी दुनिया के और देशों को। भारत अपने आत्मबल से सबको जीत सकता है।

यदि भारत तलवार की नीति अपनाए तो वह क्षणिक विजय पा सकता है। लेकिन तब भारत मेरे गर्व का विषय नहीं रहेगा। मैं भारत की भक्ति करता हूं क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब उसी का दिया हुआ है। मेरा विश्वास है कि उसके पास सारी दुनिया के लिए एक संदेश है।....

मैं भारत को स्वतंत्र और बलवान बना देखना चाहता हूं क्योंकि मैं चाहता हूं कि वह दुनिया के भले के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी आहुति दे दे। भारत की स्वतंत्रता से शांति और युद्ध के बारे में दुनिया की दृष्टि में जड़मूल से क्रांति हो जाएगी।...

मैं भारत के लिए एक ऐसे संविधान की रचना का प्रयत्न करूंगा जो उसे हर तरह की गुलामी और परावलंबन से मुक्त कर दे। .... शेष सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति का होगा। यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे न अपना शोषण होने देंगे। इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सभी हित जिनका करोड़ों मूक लोगों से कोई विरोध नहीं है सम्मान होगा फिर चाहे वे देशी हों या विदेशी। मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफरत करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत। इससे भिन्न किसी चीज से संतोष नहीं होगा।'

महात्मा गांधी के सपनों का यह भारत नहीं बना क्योंकि एक तरफ भारत का विभाजन हुआ और जो पहले हमारा भाई था वह हमारा शत्रु हो गया। दूसरी बात यह है कि दुनिया वैसी भली नहीं बन पाई जैसी गांधी ने सोची थी। गांधी को यह विश्वास था कि हम अपने भारत के माध्यम से दुनिया के सामने ऐसा आदर्श रखेंगे कि दुनिया बदल जाए। इसीलिए वे कहते हैं कि भारत की आजादी के साथ दुनिया में शांति और युद्ध के बारे में जड़मूल से क्रांति हो जाएगी।

गांधी के विचार पथ पर आज के संदर्भ में भारत के विचार की व्याख्या तभी हो सकती है जब हम समझें कि दुनिया के एक सदस्य देश के रूप में भारत की अपनी आजादी का क्या मतलब है और भारत के नागरिक के तौर पर यहां के विभिन्न सामाजिक समूहों से जुड़े व्यक्तियों की आजादी का क्या मतलब है। इसके अलावा यह सवाल भी अहम है कि भारत अपने विचार के लिहाज से कैसे विश्व के निर्माण के लिए सक्रिय है और वह किन विचारों को पराजित करने के लिए काम कर रहा है। इसी विमर्श से वह खाका निकलेगा जिसमें भारत एक आकर्षक विचार और देश बनेगा।

भारत के विचार के साथ इस समय सबसे बड़ी गड़बड़ी प्रतिस्पर्धी लोकतंत्र के कारण हो रही है। राजनीतिक दलों और विचारों व मीडिया के प्रतिस्पर्धात्मक चरित्र के कारण हम तात्कालिकता को स्थायित्व की संज्ञा दे रहे हैं और स्थायित्व को तात्कालिक बना रहे हैं। जहां हमारे राजनेता हर नई घटना को 'न भूतो न भविष्यति' बताकर वाहवाही लूटने में लगे हैं वहीं मीडिया उसमें चार हाथ और जोड़कर उसे शाश्वत सिद्धांत बता रहा है। विचार-विमर्श की यह एक ऐसी विडंबना है जो भारत के विचार और उसके स्वप्न के साथ सबसे ज्यादा गड़बड़ी कर रही है। इस प्रक्रिया में राष्ट्रवाद और अंतरराष्ट्रीयता का अंतर्विरोध है, श्रेष्ठता और हीनता का अंतर्विरोध है, स्वदेशी और विदेशी का अंतर्विरोध है, पराक्रम और कायरता का अंतर्विरोध है। अपने विचार को श्रेष्ठ मानना अगर विश्वास की स्वतंत्रता है तो दूसरे के विचार को सम्मान देना लोकतंत्र की आधारशिला है। विपरीत विचारों को शस्त्र और शास्ति से दबाना न तो प्राचीन भारत के विचार के अनुकूल है और न ही नवीन भारत के। भारत एक श्रेष्ठ विचार इसलिए है कि यहां अपने विचारों को श्रेष्ठ मानते हुए भी दूसरे को श्रेष्ठ मानने का अधिकार लंबे समय से दिया गया है। यही वजह है कि यहां विभिन्न जातियां, धर्म और नस्लें, विभिन्न भाषाएं, परिधान और खानपान एक साथ रहे हैं। नागा और दिगंबर साधुओं से लेकर श्वेतांबर और स्वर्ण जटित सिंहासनों पर बैठने वाले मंडलेश्वर भी रहे हैं। पीर और फकीर भी रहे हैं। इसे एक धर्म और एक खांचे में बांधने की कोशिश कम हुई हैं और जब हुई हैं तो विफल रही हैं। इस देश का विचार ही यह है कि यहां तमाम तरह की नस्लें आती हैं तमाम तरह के विचार आते हैं और वे उसी प्रकार मिलकर एक विशाल मानव समाज का निर्माण करते हैं जैसे नदियां समुद्र में मिलती है। यह ऐसा देश है जहां समुद्र मंथन सदैव चलता रहता है लेकिन देवासुर संग्राम का अंतिम फैसला नहीं हो पाता। भारत के इसी विचार को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ इस तरह से व्यक्त करते हैं- 'रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को महामानव समुद्र कहा है। विचित्र है देश है यह! असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए न जाने कितनी मानव जातियां यहां आईं और भारत के बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिंदू रीति नीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्‌भुत मिश्रण है।'

इस भारत की व्याख्या करते हुए अमर्त्य सेन अपने ग्रंथ 'द आर्गूमेंटेटिव इंडियन' में कहते हैं कि यहां बातचीत संवाद और शास्त्रार्थ की लंबी परंपरा रही है और भारतीय विद्वान और

व्याख्याकार लंबे लंबे व्याख्यान देने और वृहत्त आख्यान गढ़ने में सिद्धहस्त रहे हैं। वे भारत के विदेश मंत्री कृष्णा मेनन के संयुक्त राष्ट्र में अनवरत दिए गए नौ घंटे के व्याख्यान को एक रिकार्ड व्याख्यान बताते हैं। उनका दावा है कि संयुक्त राष्ट्र में उससे पहले और संभवतः उसके बाद उतना लंबा भाषण किसी का नहीं हुआ। इस बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि हम अकसर महाभारत और रामायण की तुलना यूनानी रचनाकार होमर के इलियड और ओडिसी से कर देते हैं। लोग मान लेते हैं कि ये रचनाएं एक ही आकार और गहराई की होंगी। पर वास्तविकता उससे कहीं अलग है। अकेले महाभारत इलियड और ओडिसी को मिला देने पर भी उनसे सात गुना बड़ा है।

वे भारत की तर्क वितर्क और शास्त्रार्थ की इस परंपरा को जीवन के हर अवसर पर उपलब्ध पाते हैं। इसका सबसे प्रमुख उदाहरण भगवतगीता में अर्जुन और कृष्ण के संवाद में है। जहां कृष्ण मनुष्य को अपना कर्तव्य करने की शिक्षा देते हैं वहीं अर्जुन कर्तव्य के परिणाम को लेकर चिंतित हैं। जाहिर सी बात है कि उस शास्त्रार्थ में कृष्ण की विजय होती है और अर्जुन परिणामों की चिंता छोड़कर वही करते हैं जो कृष्ण कहते हैं। इसके बावजूद यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं है कि जिसे भगवान की संज्ञा दी गई है उससे तर्क करने का साहस दिखाया गया है और वह भी युद्ध क्षेत्र में। उससे असहमत होने का प्रयास है। यह प्रयास महत्वपूर्ण है। क्योंकि युद्ध के परिणाम और विनाश की यही चिंता मनुष्य के भीतर बाद में युद्ध को टालने और उसका शांतिपूर्ण समाधान निकालने की सीख देती है। अमर्त्य सेन बाद में इस संवाद को अमेरिकी परमाणु बम के निर्माता भौतिक विज्ञानी जे राबर्ट ओपन हाइमर के उस कथन से जोड़ते हैं जिसमें वे 16 जुलाई 1945 को बम की विनाश लीला देखने के बाद कहते हैं- 'मैं मृत्यु(काल) बन गया हूं। मैं विश्व का विनाशक बन गया हूं।'

अमेरिका के परमाणु बम बनाने वाले भौतिक विज्ञानियों के समूह के प्रमुख ओपनहाइमर तकरीबन कृष्ण के ही तर्क को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- 'जब आप किसी ऐसी चीज को देखते हैं जो तकनीकी रूप से रुचिकर है तो आप उसे करते जाते हैं और उससे निकलने वाले उत्पाद का क्या करना है इसकी चिंता आप तब करते हैं जब उत्पाद बन जाता है।' इसके बावजूद अर्जुन का वह तर्क समाप्त नहीं होता कि इतने सारे लोगों को मारे जाने के बाद अच्छी बात कैसे निकल सकती है। युद्ध और ईश्वर से असहमति जताने का यह साहस भारत की विमर्श परंपरा में है और यही उसकी आत्मा है। इसीलिए भगवतगीता पर कभी वीपी कोइराला व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि गीता के अट्ठारह अध्याय सुनने के बाद अर्जुन की मनुष्यता समाप्त हो जाती है, वे युद्धोन्मादी हो जाते हैं और धरा को रक्तरंजित कर देते हैं। रणक्षेत्र में अपने इष्ट देव से असहमत होने की यह परंपरा भारतीय धर्म और संस्कृति को दूसरे धर्मों और संस्कृतियों से अलग करती है।

संयोग से दिल्ली में हर वर्ष संपन्न होने वाले प्रभाष जोशी स्मारक व्याख्यान में एक बार इसी बात को पूर्व राजनयिक और महात्मा गांधी के पोते गोपालकृष्ण गांधी ने उठाया था।

उनका कहना था कि हमारे लोकतंत्र का आधार ही वह असहमति है जिसे अर्जुन भगवतगीता में कृष्ण के समक्ष उठाते हैं। वे इसके विपरीत वे सूफी फकीर सरमद का उदाहरण देते हैं जिसका औरंगजेब के दरबार में वध कर दिया गया था। सरमद दाराशिकोह का उस्ताद था और पूरा कलमा नहीं पढ़ता था। वह वस्त्र भी नही पहनता था। औरंगजेब के दरबारियों और मंत्रियों ने उसे उकसाया कि दाराशिकोह का उस्ताद अभी जिंदा है। औरंगजेब का कहना था कि इससे क्या फर्क पड़ता है। तब दरबारियों ने कहा कि वह नग्न रहता है। इस पर भी औरंगजेब का कहना था कि यह उसका निजी मामला है। दरबारियों ने कहा कि वह तो कलमा भी आधा ही पढ़ता है यह तो कुफ्र है। इस बात पर सरमद को दरबार में बुलाया गया और पूरा कलमा पढ़ने को कहा गया। सरमद ने आधा कलमा पढ़ा तो उसे पूरा करने का कहा गया। सरमद का कहना था कि आज हमारा इतना ही पढ़ने का मन है। जब उसने बादशाह के आदेश का पालन नहीं किया तो उसका सिर कलम कर दिया गया। यह उदाहरण देते हुए गोपाल कृष्ण गांधी ने कहा कि भारत की परंपरा यह नहीं है। भारत की परंपरा ईश्वर से भी असहमति जताने की है। लेकिन उस सभा की अध्यक्षता कर रही लोकसभा की स्पीकर सुमित्रा महाजन ने कहा कि पहली बात तो यह है कि अर्जुन भगवान कृष्ण से असहमत नहीं था। उसने तो उनके आगे पूर्ण समर्पण किया था। दूसरी बात है कि अर्जुन की बात को शास्त्रार्थ और संवाद के रूप में नहीं पेश किया जाना चाहिए बल्कि शंका समाधान के रूप में रखा जाना चाहिए। इसी बात को उन्होंने संसदीय परंपरा के लिए उचित बताया। उन्होंने कहा कि संसद में एक सीमा से आगे असहमति की गुंजाइश ठीक नहीं।

भारत के इसी विचार का फर्क आज देश में आंतरिक टकराव का कारण बन रहा है। वह दृष्टिकोण कभी जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार पर देशद्रोह का आरोप लगाने का कारण बनता है तो न्यायालय परिसर में उस पर जानलेवा हमला करवाता है। वह विचार न सिर्फ दलित छात्र रोहित वेमुला को विश्वविद्यालय से निष्कासित करवाता है बल्कि उसे आत्महत्या के लिए विवश करता है। असहमति और संवाद की उसी परंपरा को कायम रखने की दुहाई देते हुए कश्मीर के आईएएस अधिकारी शाह फैजल युवाओं के असंतोष के दौरान भारत के राष्ट्रीय चैनलों के आक्रामक राष्ट्रवाद की निंदा करते हैं। वे कहते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद को राष्ट्रीय चैनल जिस तरह से कश्मीर में प्रस्तुत कर रहे हैं वे उसका हित करने के बजाय अहित कर रहे हैं। वे भारत के राष्ट्रवाद को एक सैन्य राष्ट्रवाद के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं और उनकी देशभक्ति के कुछ स्थापित पैमाने हैं जिसे न मानने पर कोई भी व्यक्ति तुरंत देशद्रोही हो जाता है। शाह फैजल को इस बात से परेशानी रही है कि तमाम चैनल उनके चेहरे को पोस्टरबॉय बनाकर पेश कर रहे हैं जबकि उनके विचार और दायित्व की हकीकत वैसी नहीं है। शाह फैजल का कहना है कि भारत अगर विभिन्न जातियों और धर्मों के समन्वय का केंद्र बना है तो उसकी मान्यताएं अलग रही हैं। वहां कत्लोगारद से ज्यादा मत-मतांतर और उस पर लंबे विमर्शों की संभावना रही है। लेकिन मीडिया अपने मंच

पर या तो सेना के विशेषज्ञों से जनमत का निर्माण करवा रहा है या फिर एकतरफा विचारों को रखने वालों से शोर करवा रहा है।

हम विमर्श के जो नियम गढ़ रहे हैं उसमें एक तरफ तो सेंसर करते हैं और दूसरी तरफ उस विवाद को हवा देते हैं जिसका विस्तार लोकतंत्र के लिए खतरा पैदा कर सकता है। यह जानते हुए कि हमारा पड़ोसी पाकिस्तान सेना के राजनीतिकरण के चलते लोकतांत्रिक परिभाषा के दायरे में कभी आ ही नहीं पाया। वहां लोकतंत्र का एकांकी नाटक जरूर होता रहता है लेकिन सेना देश दुनिया और दीन ईमान किसी की परवाह किए बिना अपना काम करती रहती है। वह आतंकवाद को पालती भी है और उससे लड़ती भी है और इसी में अपने देश का हित समझती है। यह विडंबना उस समय दिखाई पड़ती है जब हमारे रक्षा मंत्री मनोहर पर्रिकर एक तरफ कहते हैं कि सेना के दावों पर सवाल नहीं खड़े किए जाने चाहिए। लेकिन दूसरी तरफ सेना की कार्रवाई को विचारधारा से जोड़ देते हैं। वे निरमा विश्वविद्यालय के परिसर में एक सेमिनार में कहते हैं- 'मुझे हैरानी होती है कि एक प्रधानमंत्री महात्मा गांधी की भूमि से संबधित है और रक्षा मंत्री गोवा से और उनके होते हुए सर्जिकल आपरेशन हो रहा है। संभव है वहां राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शिक्षाओं का असर रहा हो। पर यह था एक विलक्षण किस्म का सामंजस्य।'

सर्जिकल स्ट्राइक के बहाने चल रही मौजूदा बहस और उसकी खतरनाक दिशा से आगाह करते हुए पी चिदंबरम लिखते हैं- 'अगर हम असहमति को मारते हैं तो हम आजादी की हत्या कर देते हैं।' वे रक्षा मंत्री के दावों पर सवाल खड़ा करते हुए उसे इस प्रकार उद्धृत करते हैं। रक्षा मंत्री कहते हैं- 'हनुमान की तरह सेना को अपनी क्षमताओं का अहसास नहीं था जब तक हमने उसे उसकी ताकत का अहसास नहीं दिलाया। इस तरह की कार्रवाई पहले कभी नहीं हुई। यह सेना की तरफ से की गई पहली सर्जिकल स्ट्राइक थी। पूरी दुनिया में इतनी सफलता के साथ कभी कोई कार्रवाई नहीं हुई। इस कार्रवाई से तीस सालों की लाचारी और कुंठा निकल गई और लोगों में इसके लिए खुशी की लहर दौड़ गई।'

हालांकि पूर्व राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार शिवशंकर मेनन ने यह प्रमाणित किया है कि वास्तविक नियंत्रण रेखा के पार जाकर ऐसी कार्रवाइयां होती रही हैं। इस बीच हिंदू ने 2011 के 'आपरेशन जिंजर' के प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं जो कि अपने में सर्जिकल आपरेशन ही था।

लेकिन यहां सवाल इस बहस से आगे का है। उस सवाल को चिदंबरम इस तरह उठाते हैं- 'आलोचना और सवाल सार्वजनिक बहस को समृद्ध करते हैं। यह स्वतंत्रता का सत्व है। अगले कुछ हफ्तों और महीनों में जो घटनाएं होंगी वे साबित करेंगी कि आलोचक सही थे या गलत। लेकिन गलत साबित होने के बावजूद आलोचक देशद्रोही या राष्ट्रद्रोही नहीं हो जाएगा।... स्वाधीनता संग्राम की आलोचनाएं हुई हैं। युद्धकाल के नेता पराजित हुए हैं। एक देश के भीतर गृहयुद्ध हुए हैं पर किसी एक पक्ष ने दूसरे का देशभक्त कहे जाने का अधिकार नहीं छीन लिया। सारी उथल पुथल के बावजूद स्वतंत्रता के मानने वालों में एक मूल्य सदैव जिंदा रहा

है और वह है वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार। अगर आप उस आवाज को मारते हैं तो आप स्वतंत्रता की हत्या करेंगे। मुझे डर है कि इस समय राजनीतिक दलों में, सरकारों में, मीडिया में और सोशल मीडिया में बहुत सारे ऐसे लोग खड़े हो गए हैं जो स्वतंत्रता की आवाज को दबाने के लिए कृतसंकल्प हैं।'

उड़ी पर हुए हमले और उसके जवाब में पाकिस्तान पर किए गए सर्जिकल आपरेशन से भारतीय ही नहीं दुनिया के तमाम देश खुश हैं। वह एक घायल देश के जख्म पर लगाया गया हल्का सा मरहम था। लेकिन उससे न तो जख्म भर गया है और न ही जख्म करने वाले खामोश बैठ गए हैं। इसके अलावा उस मरहम का ढोल पीट पीट कर भारत के विचार को इतने जख्म दिए जा रहे हैं कि उसे भरने में लंबा समय लग सकता है। आज जरूरत उस रणनीति को अपनाने के बाद उससे आगे निकलने की है लेकिन जिस तरह उस पर शोर मचाया जा रहा है और उसके बहाने कला और संस्कृति पर पाबंदियां लगाई जा रही है उससे लगता है कि उसका मकसद घरेलू राजनीति की जरूरतों को पूरा करना था न कि पाकिस्तान की गतिविधियों को रोकना। भारत में उन फिल्मों पर अघोषित पाबंदी लगाने की कोशिश हुई जिनमें पाकिस्तानी कलाकार शामिल हैं। उसका पहला शिकार 'ऐ दिल है मुश्किल' फिल्म को बनाया गया। करण जौहर की इस फिल्म में पाकिस्तानी कलाकार फयाद खान ने काम किया है। इसलिए इंडियन मोशन पिक्चर एसोसिएशन ने इस फिल्म को रिलीज न करने का फैसला किया है। उधर पाकिस्तानी मोशन पिक्चर्स एसोसिएशन और पाकिस्तानी इलेक्ट्रानिक मीडिया रेगुलेटरी अथारिटी ने धमकी दी है कि वह भारतीय फिल्मों के प्रदर्शन को रोक देगा और पाकिस्तानी फिल्मों और टीवी के कामर्शियल में आने वाले भारतीय कलाकारों पर भी पाबंदी लगा देगा। इस बीच जिन लोगों ने कला और साहित्य को राजनीति से बाहर रखने की अपील की है उन सबको देशद्रोही बताकर गालियां दी जा रही हैं। करण जौहर, सलमान खान, ओम पुरी, अनुराग कश्यप और प्रियंका चोपड़ा सब निशाने पर हैं। इनमें से करण जौहर ने तो माफी मांग ली बाकी लोग धमकियों से डर गए। भारत की साझी विरासत को राजनीति की भेंट चढ़ाने के इस प्रयास पर टिप्पणी करते हुए पाकिस्तानी संगीत समूह जुनून के संस्थापक और सूफी संगीत के प्रोफेसर सलमान अहमद ने लिखा है- 'आइए हम थोड़ी देर के लिए समाचारों पर विराम का बटन दबा दें और याद करें कि हमारे बीच क्या साझा है। भारतीयों की तरह ही पाकिस्तानी संगीत, कविता, टेलीविजन और साहित्य ने पीढ़ियों, संस्कृतियों और राष्ट्रों के बीच एक सेतु का काम किया है। नूरजहां से लेकर आबिदा परवीन, मेंहदी हसन से लेकर उस्ताद नुसरत फतेह अली खान, नाजिया हसन से जुनून और मौजूदा पीढ़ी तक के कलाकारों ने सांस्कृतिक स्थलों की ऐसी पच्चीकारी की है जो दक्षिण एशिया के वास्तविक चेहरे, उसकी आशाएं और सांझी मानवता को प्रकट करती है।'

विभाजन से बनी खाई और मौजूदा विवाद के खतरों के प्रति आगाह करते हुए सलमान अहमद टिप्पणी करते हैं- 'विभाजन की त्रासदी और हमारे इतिहास के टकराव व मौजूदा दौर

की पीड़ा के बावजूद, अभी भी भारत और पाकिस्तान के बीच चमत्कारिक रूप से अगाध प्रेम, मित्रता और गहन आध्यात्मिक सौहार्द बाकी है....इसका व्यापक संदेश यही है कि जनता का संपर्क कम करने के बजाय ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जाए....कलाकारों, लेखकों और कवियों को प्रतिबंधित करने से आतंकियों और अतिवादियों को ही जीत हासिल होगी।'

भारत और पाकिस्तान की सांझी विरासत यहीं तक सीमित नहीं है। वह विरासत तब और जाहिर होती है जब लाहौर के कुछ वकील शहीदे आजम भगत सिंह पर लगे झूठे आरोपों को हटवाने के लिए पुराने दस्तावेजों को खंगालते हैं। यह सांझी विरासत उस समय की भी याद दिलाती है जब भारत पाक विभाजन के सबसे बड़े खलनायक मोहम्मद अली जिन्ना ने भगत सिंह का मुकदमा लड़ा था। यह विरासत यहीं नहीं रुकती बल्कि इतिहास के उस कालखंड तक जाती है जब 1857 की डेढ़ सौवीं जयंती को दोनों देशों में कुछ लोग मिलकर मनाते हैं। इसी विरासत को विस्तार देते हुए प्रसिद्ध पत्रकार राजेंद्र माथुर कहते हैं कि भारत और पाकिस्तान दोनों सिंधु घाटी की साझी सभ्यता से निकले हुए देश हैं। इसी विरासत को याद करते हुए नर्मदा बचाओ आंदोलन और जनांदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय के पदाधिकारी सिंधु प्रणाली की नदियों के पश्चिम प्रवाह को अवरुद्ध करने का विरोध करते हैं और कहते हैं नदियां तोड़ती नहीं जोड़ती हैं। भारत और पाकिस्तान की इसी साझी विरासत को याद करते हुए डॉ. राम मनोहर लोहिया भारत पाक महासंघ की बात करते हैं और उसी को भाजपा के पदाधिकारी राम माधव उस समय दोहराते हैं जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अचानक क्रिसमस के मौके पर पड़ने वाले नवाज शरीफ और जिन्ना के जन्म दिन पर उनके घरेलू कार्यक्रम में शिरकत करते हैं।

आज जब भारत और पाकिस्तान के बीच नाभिकीय युद्ध की जवाबी कव्वाली जोर पकड़ रही है तो डॉ. लोहिया का वह कथन याद आता है कि बीसवीं सदी के दो ही आविष्कार हैं- एक महात्मा गांधी और दूसरा एटम बम। सदी के अंत तक इनमें से एक ही बचेगा। यही वजह है डा लोहिया अपनी सप्त क्रांतियों में एक सूत्र परमाणु अस्त्रों के खात्मे पर केंद्रित करते हैं। वे हथियारों के निर्माण के पीछे जो पांच कारण बताते हैं उस पर गौर करने लायक है। वे कहते हैं शस्त्रों का निर्माण पांच कारणों से होता हैः- (1) आर्थिक रूप से कुछ राष्ट्रों का विकसित और कुछ का पिछड़ा होना (2) एक दूसरे राष्ट्र के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक असमानता (3) अन्याय के विरुद्ध बढ़ता आक्रोश (4) सामाजिक विषमता (5) संसाधनों की वैश्विक लूट के विरुद्ध प्रतिकार।

इसलिए अगर देश और दुनिया में अमन कायम करना है तो आर्थिक, सामाजिक विषमता को मिटाने के साथ उस अन्याय और शोषण को भी मिटाना होगा जिसके कारण हथियारों का जखीरा बढ़ता है। अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वे हथियारों का जखीरा इसलिए जमा करते हैं क्योंकि दुनिया के बढ़ते गरीब राष्ट्र उनसे उनकी समृद्धि छीन सकते हैं।

आज अगर अमेरिकी चुनाव में डोनाल्ड ट्रम्प अमेरिकी संप्रभुता और संकीर्ण राष्ट्रवाद की

हुंकार भर रहे हैं तो उसकी वजह साफ है कि अमेरिका में आर्थिक असमानता बढ़ी है। दूसरी तरफ अपनी विश्वव्यापी लूट और अत्याचार के कारण अमेरिका ज्यादा असुरक्षित हुआ है। यही वजह है कि वह अब हर किसी के लिए अवसर उपलब्ध करवाने वाला देश न होकर ज्यादा लोगों की कीमत पर चंद लोगों को समृद्धि प्रदान करने वाला देश बन कर रह गया है। हिलेरी क्लिंटन अपने चुनाव में एक प्रतिशत बनाम निन्नाबे प्रतिशत की बहस उठाई थी। इस बात को जोसेफ स्टिग्लिट्ज से लेकर थामस पिकेटी तक तमाम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और राजनीति शास्त्री कह रहे हैं कि उदारीकरण की प्रक्रिया ने पूरी दुनिया में उस ग्राफ को उलट दिया था जो पूंजीपतियों और कमेरे वर्ग के बीच असमानता को घटा रहा था। पिकेटी तो U कर्व के माध्यम से व्यक्त करते हैं कि 1970 और अस्सी के दशक तक जो असमानता घटकर 30 से पचास प्रतिशत तक आ गई थी वह अब सौ से दो सौ प्रतिशत तक बढ़ गई है। थामस पिकेटी यह चेतावनी भारत को भी देते हैं कि वहां का शासक वर्ग बढ़ती असमानता के बारे में सोच नहीं रहा है। वे मानते हैं कि संपत्ति और उत्पादन के साधन पर काबिज लोगों को उसके किराए से जो आमदनी होती है उसकी बराबरी वेतन भोगी कभी नहीं कर पाएगा। उस अंतर को कम करने के लिए कभी सोवियत संघ और चीन के दबाव में अमेरिका और दुनिया के दूसरे देशों में कॉरपोरेट टैक्स लागू किया जाता था, जिसे अब लगातार खत्म किया गया है। आज जरूरत उसे वापस लगाने की है। यह बात अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष भी मानता है कि असमानता एक सीमा तक ही किसी को ज्यादा और अच्छा काम करने की प्रेरणा देती है। अगर वह ज्यादा हो जाती है तो उससे कम आमदनी वाले के स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन शैली पर फर्क पड़ता है और वह बेहतर उत्पादन नहीं दे पाता। भारत की असमानता के बारे में तो कहा जाता है कि यहां असमानता इतनी ज्यादा है कि उसे गिनी(कोफीसिएंट) गणनांक नाप ही नहीं पाता।

भारत में आर्थिक असमानता और असुरक्षा के साथ दिखावटी फीलगुड या इंडिया साइनिंग की कथा बहुत दारुण है। उसी को दूर करने के लिए अच्छे दिन का नारा देकर नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री के पद तक पहुंचे लेकिन अब उनकी चिंता में आत्महत्या करने वाले लाखों किसान और बेरोजगार मजदूर वर्ग नहीं बल्कि अंबानी और अडानी की आर्थिक तरक्की और उन्हें लाभ पहुंचाने वाले स्मार्ट शहर आ गए हैं। इस हकीकत को अमर्त्य सेन और ज्यां द्रेज अपनी पुस्तक 'अनसर्टेन ग्लोरी' में व्यक्त करते हैं वे बताते हैं कि कैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और रहन सहन के मामले में भारत अपने पड़ोसी देश बांग्लादेश, श्रीलंका और यहां तक कि नेपाल से भी पीछे हुआ है। यह बात सन 2011 की भारतीय जनगणना की रपट में भी जाहिर होती है कि किस तरह से भारत के 20 से 25 करोड़ परिवार पांच हजार रुपए महीने पर गुजर करते हैं। यह आंकड़ा अर्जुन सेन गुप्ता कमेटी की उस रपट की याद दिलाता है जिसके अनुसार भारत का तकरीबन अस्सी करोड़ व्यक्ति बीस रुपए रोज पर गुजर करता है। आखिर एक व्यक्ति की रोजाना की आय कम से कम दो डालर तो होनी ही चाहिए। आज हमें उस भारत की जरूरत है जहां किसान आत्महत्या न करें और उसके योग्य युवकों के हाथों से बार-बार नौकरियां न

छीनीं जाएं। भारत में बढ़ती असमानता और आर्थिक असुरक्षा ने स्थिति यह बना दी है कि समाज का वह तबका विद्रोह कर रहा है जो संपन्न और शासक वर्ग में गिना जाता है। कहीं पटेल विद्रोह कर रहे हैं, कहीं जाट विद्रोह कर रहे हैं तो कहीं मराठा। इनमें से कुछ का विरोध हिंसक और अराजक हो जाता है तो कुछ का खामोशी से चलता है और कब हिंसक हो जाए कहा नहीं जा सकता। कल्पना कीजिए जब सामाजिक रूप से सम्मानित तबका भी आरक्षण की मांग करते हुए विद्रोह करे और समाज के उपेक्षित और वंचित तबके को मिले सामाजिक संरक्षण को खत्म करने की मांग करे तो उस समाज का संतुलन और सोशल कांट्रेक्ट कब तक बना रह सकता है।

यह महज संयोग नहीं है कि गुजरात, हरियाणा और महाराष्ट्र के इन विद्रोहों को शांत करने के लिए एक तरफ संविधान में न समा सकने वाले आरक्षण की घोषणा की जाती है और तुष्टीकरण की नीति अपनाई जाती है तो दूसरी तरफ उनके नेताओं पर राष्ट्रद्रोह की धाराएं ठोकी जाती हैं। जाहिर सी बात है कि देश के भीतर विद्रोह पनप रहे हैं और उन्हें शांत करने के लिए शासक दल और उसके साथ नत्थी पूंजीपति और मध्यवर्ग पाकिस्तान के विरुद्ध राष्ट्रवादी भावना की रचना कर रहा है। इस राष्ट्रवादी भावना का ज्वार पैदा करने के कई राजनीतिक फायदे हैं। एक तो इससे कश्मीर के युवाओं के असंतोष की चर्चाएं कम हो गईं और दूसरे जाटों, पटेलों और मराठों के विद्रोह की चर्चा भी मद्धिम पड़ गई। इतना ही नहीं दलितों पर अत्याचार की खबरें भी हाशिए पर चली गईं। इसका मतलब यह नहीं कि समाज के विभिन्न तबकों के भीतर सौहार्द पैदा हो गया या अन्याय बंद हो गया।

वह खाई अभी भी बनी हुई है जो ऊना में किसी मरी गाय का चमड़ा निकाल रहे किसी दलित की पिटाई से पैदा होती है या मरे जानवरों को न उठाने वाले किसी चर्मकारों के दमन से बनती है। इसलिए सामाजिक और आर्थिक गैर बराबरी के बारे में गांधी ही नहीं फुले, अंबेडकर, लोहिया और पेरियार के सपनों का स्मरण भी जरूरी है। जाति व्यवस्था को तोड़ना ही होगा। भले इसके लिए आंबेडकर के उस सुझाव को स्वीकार न किया जाए कि हिंदू धर्म को मिशन बनाया जाए और उसके पास भी इस्लाम और ईसाइयत की तरह से एक ही किताब हो। आज भारतीय समाज कभी अल्पसंख्यकों के निजी कानूनों को लेकर टकरा रहा है तो कभी दलितों को दिए गए अधिकारों को ज्यादा बताकर उसे कम करने के लिए भिड़ रहा है। यह सारी स्थितियां बार-बार हमारे सामने एक बंटे हुए भारत की तस्वीर पेश करती हैं। आज जरूरत एक ऐसी सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति की है जो इन असमानताओं और अविश्वास की दरारों को पाट सके और उत्पादन की उन ताकतों को मुक्त कर सके जो जाति और योनि के कटघरों में जकड़ी हुई हैं। अगर डॉ. लोहिया के शब्दों में कहें तो धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट हो गए हैं। इससे दकियानूसी और अत्याचार बढ़ गए हैं। जरूरत इन दोनों के स्वाभाविक रिश्तों को स्थापित करने और राजनीति में धर्म और धर्म में राजनीति के हस्तक्षेप को समाप्त करने की है।

मेरे सपनों के भारत में न तो रोहित बेमुला की आत्महत्या के लिए कोई जगह होगी और न ही ऊना, भगाड़ा और खैरलांजी जैसे दलित उत्पीड़न और बलात्कार कांड की। वहां न तो निर्भया कांड की गुंजाइश होगी और न ही कोपर्डी कांड की। वहां अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक विवाहों की स्वीकार्यता होगी। वहां न तो पंचायतें युवाओं को फांसी पर लटकाएंगी और न ही मुल्ला और पंडित किसी की शादी तोड़ने का आदेश देंगे। वहां तीन तलाक जैसे कानून भी नहीं होंगे और किसी को विवाह विच्छेद में पूरा जीवन खपा नहीं देना होगा। वहां अगर शाहबानो को उसका हक मिलेगा तो मेरी राय को भी मिलेगा। उनके हक के फैसले को संसद और विधानसभा से पलटा नहीं जाएगा।वहां बहुएं जलाई नहीं जाएंगी और न ही स्त्रियों और बच्चों का देह व्यापार होगा। मेरे सपनों के भारत में स्त्रियों के भीतर उपेक्षिता का भाव नहीं होगा। चाहे परिवार हो या दफ्तर, राजनीति हो या अर्थव्यवस्था, फौज हो या पुलिस सभी जगहों पर उन्हें वाजिब स्थान मिलेगा। वहां सीता बनाम शंबूक और द्रौपदी बनाम एकलव्य की बहस नहीं होगी। वहां अस्मिताओं को लड़ाया नहीं जाएगा। वहां दोनों के साथ होने वाले अन्याय समाप्त होंगे।

मेरे भारत में आदिवासियों को साहूकारों, वन अधिकारियों , पुलिस वालों और पटवारी कानूनगो का भय नहीं होगा। न उन्हें दादा लोग फुसला कर बंदूक उठवा सकेंगे और न ही उन पर सरकारें जुल्म कर सकेंगी। न तो वहां माओवाद होगा और न ही सलवा जुडूम और आपरेशन ग्रीन हंट होगा। न कोई अधिकारी किसी निजी कंपनी के लिए उनकी जमीन का सौदा करेगा और न ही उन्हें बड़े बाधों के लिए विस्थापित होना पड़ेगा। उनकी जल, जंगल और जमीन सुरक्षित रहेगी और उन्हें सशस्त्र बल विशेष अधिनियम का दमन झेलना होगा। आदिवासियों के लिए बने पेसा कानून का सम्मान होगा और उनके लिए बनी संविधान की पांचवीं और छठी अनुसूची का पालन होगा।

मेरे सपनों के भारत में पर्यावरण और प्रदूषण की ऐसी विकराल समस्या नहीं होगी जैसी आज बन गई है। बड़े शहरों में गाड़ियों की ऐसी भरमार न होगी और न ही उन पर आबादी का ऐसा दबाव होगा। दिल्ली आज न सिर्फ आने जाने वाले वाहनों के प्रदूषण से दमे की मरीज हो गई है बल्कि पंजाब और हरियाणा के खेतों में जलाए जा रहे धान के डंठलों के धुएं से सांस लेने में तकलीफ महसूस कर रही है। नए भारत में न सिर्फ इसका समाधान होगा बल्कि नदियों और पहाड़ों और जंगलों की हिफाजत भी होगी। वहां शहर गांव के शोषण पर नहीं खड़े होंगे। वे गांव में सामाजिक परिवर्तन लाएंगे और गांव के संसाधनों को बचाएंगे भी। तब गंगा की सफाई के लिए सिर्फ एक्शन प्लान और प्राधिकरण ही नहीं बनेंगे उन पर अमल भी होगा और वे काम भी करेंगे।

मेरे सपनों का भारत सिर्फ एक देश तक नहीं सीमित होगा। वह पूरी दुनिया के लिए लोकतांत्रिक संस्था का निर्माण करेगा। वह संयुक्त राष्ट्र को और लोकतांत्रिक बनाएगा और विश्व सरकार व विश्व नागरिकता के लिए काम करेगा। एक तरह से वह वैश्विक लोकतांत्रिक

समाजवाद के लिए संकल्पित होगा। यह व्यवस्था फ्रांसिक फुकुयामा के 'इंड आफ हिस्ट्री' से प्रेरित होगी लेकिन उसमें फ्रांसीसी क्रांति की रक्तरंजित भावना नहीं भारत की अहिंसक क्रांति की भावना होगी।

मेरा नया भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उन रूपों को अपनाएगा जो पर्यावरण के अनुकूल हों और मानवीय गरिमा की रक्षा करते हों। उसके पास उच्च स्तरीय विज्ञान भी होगा और धर्म, राजनीति और कला भी होगी। पर वे सब किसी को दबाने और उसका शोषण करने के लिए नहीं होंगे और न ही महज विवाद के लिए होंगे। वे सामंजस्य के लिए होंगे और मानव समाज के कल्याण के लिए। हमारे उस भारत में मनुष्य अपनी आयु पूरी करेगा। वहां रोग और व्याधि कम से कम होंगे और सबको मुफ्त शिक्षा के साथ मुफ्त इलाज भी उपलब्ध होगा। कुल मिलाकर भारत ज्ञान और सेवा पर आधारित समाज होगा जो अपनी सेवा भी करेगा और पूरी दुनिया की भी। वह स्वयं भी शांति से रहेगा और दुनिया को शांति से रहने की सीख देगा। वह जिएगा और जीने भी देगा। वह शोषण, लूट और दमन पर आधारित वैश्वीकरण के बजाय प्रेम और मानवता पर आधारित वैश्वीकरण का समर्थन करेगा। वहां पूंजी से ज्यादा इनसान का आना जाना सुलभ होगा। वहां 'अयं निजः परैवेति' के बजाय 'उदार चरितानाम तू वसुधैव कुटुंबकम' का दर्शन होगा। समता, समृद्धि और उदारता पर आधारित ऐसा भारत टिकाऊ होगा और उसके लिए यह उक्ति उचित होगी कि 'जननी जन्मभूमिश्च च स्वर्गादपि गरीयसी।'

(लेखक सुपरिचित पत्रकार हैं और इन दिनों महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं)

●

गांधी के सपनों का भारत और प्रतिबद्धता

मनोज कुमार

गांधी के सपनों का भारत हमारे सपनों का भारत कभी बना ही नहीं आज की बात छोड़िए अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं को कभी गांधी के सपनों पर विश्वास रहा ही नहीं। गांधी दक्षिण अफ्रीका से जनवरी, 1915 में 21 वर्षों तक अनवरत सत्याग्रह का प्रयोग कर भारत लौटे थे। यों सत्याग्रह शब्द का जन्म 1906 में हुआ, लेकिन दक्षिण अफ्रिका पहुंचते ही उन्हें कई बार अपमान सहना पड़ा लेकिन उसका वे अहिंसक प्रतिकार करते रहे। दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष करते हुए वे भावी हिंद की तस्वीर को स्पष्ट कर चुके थे। जब हिंद स्वराज्य (1909) प्रकाश में आया उस समय भी हिंद की रचना राष्ट्र के रचनाकारों की समझ के बाहर थी। गांधीजी के राजनीतिक गुरु तक ने कह दिया था कि गांधी भारत में रहने पर खुद उसमें बदलाव कर देंगे। (हिंद स्वराज्य के व्यक्त विचारों को) अधिकांश विद्वान यह मानते हैं और यह सही भी है कि उस समय गांधीजी को भारत की सही स्थिति की जानकारी रही होगी ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती है। बावजूद इसके वे अपने उस बीज सिद्धांत को आजीवन नहीं बदलते हैं।

6 फरवरी, 1916 को बी.एच.यू. के स्थापना समारोह में उनके द्वारा दिया गया भाषण (खंड -13,) स्वराज्य की तस्वीर को स्पष्ट करता है उसमें वे भाषा के सवाल को प्रमुखता से उठाते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में एक दिन पूर्व वे भाषा के सवाल को स्पष्ट कर चुके थे। वे हिंदी को स्वराज्य का स्तंभ मानते हैं। वे आशा करते हैं कि इस विश्वविद्यालय में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा का प्रबंध होगा। उन्होंने कहा कि हमारी भाषा में उत्तम विचार नहीं दिए जा सकते, अगर हम ऐसा विचार रखते हैं तो इस संसार से हमारा उठ जाना ही बेहतर है। अंग्रेजी की बेड़ी ने राष्ट्र के पांव को जकड़ रखा है जिसे तोड़ देना चाहिए। क्या अंग्रेजी ने वही भेद पैदा नहीं किया है जो कभी संस्कृत ने किया था? क्या ज्ञान को सामान्य जन से दूर रखने का यह षड़यंत्र नहीं है? जिस समतामूलक समाज की कल्पना गांधी कर रहे थे वह अंग्रेजी भाषा द्वारा पैदा किए गए कृत्रिम वर्ग को खत्म किए बिना संभव है? जिसे हम लोकतंत्रात्मक व्यवस्थाएं कहते हैं उसमें साम्राज्यवादी सरकार से अधिक शस्त्र का प्रयोग गांधी के सपनों का स्वराज्य कभी नहीं हो सकता।

वहीं दूसरी ओर वे वायसराय द्वारा विश्वविद्यालय के शिलान्यास समारोह में उपस्थित

आभूषणों से सजे महाराजाओं को संबोधित कर कहते हैं कि उनके आभूषणों को देखकर पेरिस से आनेवाले जौहरी की आंखें भी चौधियां जाएंगी। वे कहते हैं कि अमीर उमराव जब तक गरीबों की धरोहर मानकर उन जेवरातों को उतार नहीं देते, भारत का कल्याण नहीं हो सकता। आजादी वकील, डॉक्टर और जमींदारों के वश की बात नहीं है 'एक को दो दाने करने वाले भारत के 75 प्रतिशत किसान ही सच्चा स्वराज दिला सकते हैं, अगर हम उनके परिश्रम की कमाई दूसरों को यों ही उठाकर ले जाने दें तो यह नहीं कहा जा सकता कि स्वराज की भावना हमारे मन में है।'

गांधी कहते हैं कि हम अपने विजेताओं पर अराजकता से विजय नहीं पा सकते हैं। स्वराज जनता की इच्छाओं को कार्यन्वित करने के लिए होगा शासन करने के लिए नहीं (वा. खंड-83 पृ.31-32) वे कहते हैं कि लोकतंत्र हमें जीवन और प्रगति की ओर ले जाता है जबकि हुल्लड़बाजी विशुद्ध विनाश की ओर (वा. खंड 8-83 पृ. 337-38)। उन्हें विश्वास था कि वे विशुद्ध नैतिक साधनों द्वारा वे सत्ता लेकर रहेंगे। (वा. खंड छ- 78 पृ. 44-45) बी.एच.यू. के भाषण में ही उन्होंने कहा कि खुशामद की हवा हमें नीतिच्युत करती है। हमें स्वराज्य अपने पुरुषार्थ से मिलेगा वह दान रूप में कभी नहीं मिल सकता। 'आत्म-संयम' और 'आत्म-स्वराज्य' बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से जूझने की 'आंतरिक शक्ति' से पैदा होगा (हिंदी नवजीवन 08. 12.27) गांधी, वायसराय के लिए खुफिया पुलिस और सुरक्षा व्यवस्था को देखकर अत्यंत चिंतित थे। उन्होंने साफ कहा कि स्वराज्य में अपनी ही जनता से डरने वाली व्यवस्था नहीं चलेगी।

उसी भाषण में गांधी विश्वनाथ मंदिर का भी संदर्भ उपस्थित करते हैं और रेल की अव्यवस्था पर भी सवाल खड़े करते हैं। वे कहते हैं कि 'जो देश अपने धर्म स्थलों को भी साफ नहीं रख सकता वह स्वराज्य के योग्य नहीं है। हमारा अपना आचरण है जो हमें स्वराज्य के योग्य बनाएगा' वह आचरण क्या है? विश्वनाथ मंदिर की गंदगी के लिए कौन जिम्मेदार है? अगर हमारे मंदिर सफाई के नमूने न हों तो हमारा स्वराज्य कैसा होगा? वे पूछते हैं कि क्या अंग्रेजों को भगा देने मात्र से ये मंदिर पवित्रता और स्वच्छता के धाम बन जाएंगे? शहर उन्हें 'बदबूदार गंदी कोठरी' लगते हैं। रेलवे में जो अव्यवस्था और गंदगी है उसके लिए रेलवे के अधिकारी के सिर पर दोष मढ़ देना क्या हमें स्वराज्य के योग्य बना सकता है। गरीब यात्रियों के साथ 'नारफॉक जाकिट' पहने अंग्रेजीदां सवारी धौंस जताकर जगह ले लेते हैं। तृतीय श्रेणी जिसमें गांधी सदा सफर करते रहे, का मानना था कि हमें स्वराज्य के योग्य बनने के लिए इन आदतों में सुधार करना चाहिए। यह केवल बयानों से नहीं किया जा सकता, विचार ऐसे हों जिससे हमारे मन में स्फुरण हो, हाथ-पांव हिले। हमें हाथ-पांव और मन की गति में सामंजस्य लाना होगा।

गांधी देश के गांवों में रहने वाले 31 करोड़ लोगों को उनकी शक्ति का भान कराना चाहते थे जिस गांव की आर्थिक स्वतंत्रता मध्यम वर्ग के लोगों ने विश्वासघात करके बेच दी है। (खंड-

64, पृ. 217) उन्होंने गांव को बाजार को बना दिया है। (खंड- 64, पृ. 133) गांवों को भिखारी बना दिया है (खंड- 64, पृ.111) वे ग्रामीणों में मानवता के गुण (खंड 64, पृ. 12) और आध्यात्मिक वृत्ति जगाना चाहते थे। (खंड 64, पृ. 132-133) उनका मानना था कि देहात की समृद्धि अंदर से आएगी (खंड 79, पृ. 26) लेकिन वे उस समय के घटनाक्रम से काफी चिंतित दिखते हैं और कहते हैं कि अगर घटना क्रम इसी तरह चलता रहा तो फासीवाद, नाजीवाद और जापानी सैन्यवाद के ध्वंसावशेष पर दानव का उदय होगा। (खंड 79, पृ. 145-146) उनके अनुसार साम्राज्यवाद और नाजीवाद में कोई अंतर नहीं है। (वा. खंड- 75, पृ. 40 एवं 79)

गांधी का रामराज्य स्वराज्य, धर्मराज्य या लोकराज्य है जो धर्मनिष्ठ और वीर्जवान जनता से बनेगी। (खंड 20, पृ.120) वे कहते हैं कि स्वराज्य हमें भगवान भी नहीं दिला सकता वह हमें खुद हासिल करना होगा। (खंड 20, पृ. 132) उनके अनुसार अच्छी से अच्छी सरकार भी अपनी सरकार या स्वराज्य का स्थान नहीं ले सकती। (खंड-20, पृ. 189) दरअसल गांधी का स्वराज्य अहिंसक लोकतंत्र है। (खंड 67, पृ. 253, 340-41)

स्वराज्य का अभिप्राय लोक-सम्मति के अनुसार होने वाला शासन है। बालिग लोग जिन्होंने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की सेवा की है और मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज कराया है, के सम्मति का शासन बहुसंख्यक जनता का शासन (यंग इंडिया 9 16.04.31) सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य ही स्वराज्य है। (यंग इंडिया 16.04.31) स्वराज्य 'आंतरिक शक्ति' पर निर्भर करता है। इसे पाने के अनवरत प्रयत्न और बचाए रखने की सतत् जागृति का होना अनिवार्य है। उनका स्वराज्य आत्मस्वराज्य या आत्मसंयम है। (हिंदी नवजीवन, 08. 12.27) वे सरकारी नियंत्रण से स्वराज्य को मुक्त करना चाहते थे। गांधी के सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है, अमीर और राजा जो सुविधा और साधन उपभोग करते हैं वह सभी को उपलब्ध होगा। उन्होंने साफ कहा है कि उनका स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा जब तक सभी को सारी सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर दी जाती। (26.03.31)।

पूर्ण स्वराज्य में 'जनता की जागृति', 'सच्चे हित का ज्ञान' और सारी दुनिया का विरोध करके भी उस हित की सिद्धि के लिए कोशिश करने की योग्यता है। (यंग इंडिया 18.06.31) जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब 'प्रतिकार करने की क्षमता' यानी सत्ता पर कब्जा और नियमन की क्षमता स्वराज्य में आवश्यक है। (हिंदी नवजीवन 29.01.25) लेकिन लोकसत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्य भय और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता (हरिजन, 27.05.39)।

वैचारिक स्वतंत्रता लोकतंत्र का आधार है गांधी स्पष्ट कहते हैं कि जब तक बात मन में बैठ नहीं जाती अमल न करें। (खंड 68. पृ. 437) अगर उनके विचारों के खिलाफ कुछ दिखाई दे तो सुधारकर पढ़ने की सलाह देते हैं। (खंड- 80, पृ. 232) उन्हें सत्य, अहिंसा रोज ज्यादा साफ दिखता है। (खंड 80, पृ. 231) वे साफ कहते है आज के विचार या कर्म कल भी रहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा वे नहीं कर सकते। (खण्ड 83. पृ. 210) यही कारण है कि वर्णाश्रम के समर्थक

गांधी बाद में सजातीय विवाह में आशीर्वाद भी देना नहीं चाहते थे। (खंड 80, पृ. 104) दरअसल गांधी मानते हैं कि सत्य सबके अलग हैं, वे विचार लादना नहीं चाहते हैं। (खंड- 56, पृ. 226, 228, 519) वे कहते हैं कि वे बुद्धि और हृदय को गुलाम बनाने का अपराधी नहीं बनेंगे। (खंड 56. पृ. 245) वे मानते हैं कि आलोचना सार्वजनिक जीवन का प्राण है (खंड- 66, पृ. 327-28) लेकिन आलोचना की भाषा अहिंसक हो तथा (खंड 60, पृ. 291) संतुलित और स्वराज्य तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। (खंड 66, पृ. 327) दरअसल आदर्श और आचरण कभी न पटने वाली खाई है। (खंड 70, पृ. 266) वाक् स्वतंत्रता के अधिकार के वे कट्टर समर्थक दिखते हैं। (75/66)।

ऐसा समझना कि गांधी ब्रिटिशों से द्रोह रखते थे गलत होगा। उन्होंने कहा भी है कि पूर्व और पश्चिम में भेद नहीं है। (खंड - 48, पृ. 479) वे सत्याग्रह द्वारा अधिकारियों को भी परेशानी में डालना नहीं चाहते थे। (73/313) दरअसल उन्हें अहिंसा से मनुष्य के स्वभाव में बदलाव पर जबरदस्त विश्वास था। (75/48-49) जबकि वे कांग्रेसियों में आस्था का अभाव पाते हैं (खंड 75/ 60-68) वे कहते हैं कि वे भारत को ईश्वर के रास्ते पर लाने का प्रयास कर रहे हैं। (70/30-33, एवं 215-16)

भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं (यंग इंडिया 5.2.25) इसलिए भारत का ध्येय दूसरे देशों के ध्येय से अलग है। यह दैवी- हथियार से लड़ा है। 'आत्मबल' के द्वारा वह पशुबल पर विजय प्राप्त कर सकता है। भारत के पास दुनिया के लिए यही एक संदेश है। उनका देश प्रेम उनके धर्म द्वारा नियंत्रित है। वे भारत से बच्चों की भांति इसलिए चिपटे हैं क्योंकि वह उन्हें 'आध्यात्मिक पोषण' देता है इसे खोकर वे अनाथ हो जाएंगे। (यंग इंडिया 06.04.21) वे भारत को स्वतंत्र और बलवान हुआ देखना चाहते हैं क्योंकि वह दुनिया के भले के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके। दरअसल वे पश्चिमी सभ्यता की 'विचारहीन और विवेकहीन नकल (यंग इंडिया 11.08.27) का विरोध करते हैं। उन्होंने कहा है कि यूरोपीय सभ्यता के मायामृग के पीछे दौड़ने का अर्थ 'आत्मनाश' होगा। (यंग इंडिया 30.4.31)

गांधी भारत को गुलामी और परालंबन से मुक्त करने वाला संविधान की रचना करने के लिए भी प्रयत्नशील थे। जिसमें उसे गलती करने का अधिकार हो, गरीब से गरीब लोग उसे अपना देश मानें, उसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व हो, ऊंच-नीच का भेद नहीं हो, सभी संप्रदायों में मेल हो। अस्पृश्यता और शराब का कोई स्थान नहीं हो। स्त्री और पुरुषों में समानता हो। वह दुनिया से शांतिपूर्ण संबंध रखें न तो किसी देश का शोषण करें न ही अपना शोषण होने दें इसलिए उनके स्वराज्य में सेना छोटी से छोटी होगी। करोड़ों मूक लोगों के हितों का पूरा सम्मान किया जाएगा। (यंग इंडिया 10.09.31) यही गांधी के सपनों का स्वराज्य है पर वह स्वराज हमसे दूर रहा या दूर रखा गया। कारण क्या है? आज हम कांग्रेस या अन्य राजनैतिक दलों द्वारा गांधीजी की विचारधारा की जा रही उपेक्षा को स्पष्ट देख सकते हैं। मैं बोल नहीं सकता हूं। (वा. खंड- 86, पृ.339) वह भारत विभाजन में तो दिखता ही है, जिन्ना

के स्वतंत्र रूप से मंत्रीमंडल बनाने के प्रस्तावों को भी स्वीकार नहीं किया गया फिर बंटवारा अवश्यसंभावी हो गया। यही कारण था जिससे वे बाद में मृत्यु की कामना करने लगे। उन्होंने 125 वर्ष जीने की इच्छा का कई बार जिक्र किया है फिर क्या कारण हुआ कि वे बार-बार मरने की बात करने लगे। वे कहते हैं ईश्वर मेरा गर्व चूर कर रहा है। (खंड 88, पृ. 235) यह आजादी ऐसी है जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान को लड़ने का सामान भी देती है। (खंड- 88, पृ. 353) वे उस समय की सांप्रदायिक हिंसा से व्यथित थे। उन्होंने कहा कि मैं हिंदू और मुसलमानों के आक्रोश का शिकार बन जाऊंगा। (खंड 89, पृ. 410) क्या फिर उन्हें जिंदा दफना दिया गया है। (खंड 89, पृ. 1) लेकिन वे तो कब्र में भी जिंदा रहने और वहीं से आवाज उठाने की बात करते हैं। (खंड 89, पृ. 18) फिर भी वे असहाय दर्शक बनने के बजाय यहां से उठा लेने की प्रार्थना ईश्वर से करते हैं। (खंड 89, पृ. 176, 204, 233, 237, 295, 297) जो लोग गांधी के इस वक्तव्य पर कि वे सनातनी हिंदू हैं, के आधार पर व्याख्या करते हैं वे तब चकित हो जाते हैं जब अपनी आलोचना कि गांधी मंदिरोपासना का समर्थन कर धर्म की सार्वभौमिकता का तत्व खो देते हैं। (खंड 54, पृ. 55-55) कहते हैं मैं मंदिर नहीं जाता। (खंड 54, पृ. 56) उनके मन में बचपन में राम मंदिर की स्मृति भर है। (खंड 54, पृ. 112)

बाद के दिनों में उन्हें अहिंसा की अपनी समझ के प्रति शंका होने लगी थी। (खंड- 90, पृ. 3, 32) हत्याकांड को देखते हुए उन्होंने कहा कि क्या मेरी अहिंसा दिवालिया हो गई है (खंड- 86, पृ. 172) वह शंका अहिंसा के नियमों के प्रति थी जिसकी सफलता पर उन्हें कोई शंका नहीं थी (खंड- 90, पृ. 322) वे अपने कमी को जांचना चाहते थे। (खण्ड 86, पृ; 150) उनके अनुसार भूतकाल हमारा है, हम भूतकाल के नहीं, हम वर्तमान से हैं और भविष्य बनाने वाले हैं, भविष्य के नहीं हैं। (खंड 82, 475)

स्वप्न देखने वाला स्वप्न को साकार करने वाला और स्वप्न के लिए लड़ने वालों का एकाकार संभव नहीं हुआ है। स्वप्न देखने वाला स्वप्न देखता रहा, पर स्वप्न के लिए लड़ने वाला विभाजित रहा। एक बात में इनमें भिन्नता नहीं थी, वह था भारत की आजादी का सवाल। इसीलिए डॉ. लोहिया, गांधी के सपनों को साकार करने वालों की तीन श्रेणियां बनाते हैं। एक श्रेणी में हैं जो कांग्रेस और गांधी की विरासत से सत्ता तक पहुंचे यों यह नहीं कहा जा सकता है कि ये अपने विचारों में किसी तरह ईमानदार नहीं थे। इनका विश्वास गांधी के ठीक विपरीत विकासवादी सिद्धांतों पर रहा जिसे गांधी-नेहरू और पटेल के बीच हुए पत्र व्यवहार में देखा जा सकता है। गांधीजी अपने अंतिम दिनों तक कांग्रेस को एकजुट करने में लगे रहे वे कहते हैं कि कार्यसमिति में समस्वरता नहीं है। (वा. खंड- 86, पृ.331) उनकी अंतिम वसीयत को हमने पूरी तरह भुला दिया जिसमें कांग्रेस को विघटित कर लोकसेवक संघ में परिवर्तित कर देने की बात गांधी ने की थी। उस पर वे अमल करते इसके लिए उन्हें हमने जिंदा कहां रहने दिया।

दूसरा समूह मठों में कैद हो गए। सिद्धांतों की सूक्ष्मतर व्याख्या की एक सीमा है और अनिवार्य भी लेकिन गांधी का सिद्धांत तो जीवन से निर्मित होता था इसलिए सुगतदास गुप्ता

गांधी के सत्य को सामाजिक सत्य की संज्ञा देते हैं। रचनात्मक संस्थाओं को गांधी ने विकेंद्रित कर दिया था। गांधी सेवा संघ को वे विसर्जित कर देना चाहते थे जबकि आश्रम उनके लिए अहिंसा की प्रयोगशाला स्वराज्य की कार्यशाला और रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का स्थल था। इसलिए वे बार-बार दुहराते हैं कि आश्रम में तो उनकी आत्मा बसती है। जब शरणार्थियों ने उनसे हिमालय में चले जाने और संन्यास लेने की बात कही तो उन्होंने साफ कहा था कि मेरा हिमालय तो यहीं है लेकिन इतना स्पष्ट है कि सत्याग्रह से उन्होंने कभी-अपने को अलग नहीं किया। विरोध, स्वस्थ विरोध और रचनात्मक आलोचना को वे लोकतंत्र का प्राण मानते थे। अंतिम तीन भाइयों नेहरूवादी, लोहियावादी और विनोबावादी ने उन्हें अपने में बांट लिया। वे चाहते थे कि गांधी सेवा संघ उनकी मदद के बिना बढ़े। (वा.खंड-65, पृ. 98) उन्होंने यहां तक कहा कि उससे उनका नाम हटा दिया जाए, सारे लेख भी जला दिए जाएं। (वा. खंड- 65 पृ. 97-98) भूदान, ग्रामदान का स्तुतिगान हम करते रहे, चंबल में डाकुओं का समर्पण आदि कई उपलब्धियों के बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि इन उपलब्धियों का कोई व्यापक असर नहीं हुआ। चंपारण सत्याग्रह को सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। जिसका उद्देश्य जैसा कि गांधी ने बताया है कि एक सम्मानपूर्ण स्थिति में पहुंचना है। इसके व्यापक असर का आज हम मूल्यांकन कर सकते हैं। उस समय तो गांधी की पहचान भारत में उस तरह बनी भी नहीं थी जैसा कि वे दक्षिण अफ्रीका के एक सत्याग्रही के रूप में पहचान बना पाए थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कांग्रेस के बिना वे चंपारण में काम कर रहे थे। (खंड- 13) बिहार के वकीलों की एक पीढ़ी ने अपने शानों-शौकत को छोड़ दिया। चंपारण सत्याग्रह से किसानों का क्या हुआ, यह अलग बात है लेकिन अलग-अलग भोजन पकाने, पैर दबाने और कपड़ा साफ करने के लिए नौकर-चाकर रखने वाले 10,000 प्रतिदिन की आमदनी करने वाले वकीलों ने न सिर्फ सामूहिक गरीबी स्वीकार की वरन झटके में जाति-पांति, ऊंच-नीच ऐसी कई कुरीतियों को तिलांजलि दे दी। राजेंद्र प्रसाद ने जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, अपने परिवार के लोगों से कह दिया कि उनके साथ वही लोग रहेंगे जिसका विश्वास जाति-पांति में नहीं होगा। वही राजेंद्र प्रसाद हैं जिनकी अनुपस्थिति में गांधीजी को उनके नौकरों ने उनके शौचालय का उपयोग करने नहीं दिया था। यह नहीं भूलना चाहिए कि वही राजेंद्र प्रसाद राष्ट्रपति रहते बनारस में दो सौ ब्राह्मणों का पैर धोते हैं। यह राजेंद्र प्रसाद पैर धो रहे थे या राष्ट्र ब्राह्मणवाद को सम्मानित कर रहा था। यह सरकार की नीतियों का विश्लेषण कर देखा जा सकता है।

(लेखक महात्मा गांधी अंरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थित महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र के प्रोफेसर/निदेशक हैं)

●

पंचायतराज और महिला सशक्तिकरण

देवेंद्र उपाध्याय

महात्मा गांधी ने अपने सपनों के भारत में जिस दृष्टि की कल्पना की थी उसमें व्यापकता थी। यही कारण है कि उनके उसी दृष्टिकोण या उन्हीं विचारों को गांधीवाद की संज्ञा दी गई। ग्रामीण विकास की तरफ गांधीजी की दृष्टि हमेशा सजग ही रही। ग्रामीण विकास के लिए जिन बुनियादी चीजों को वे जरूरी समझते थे, उनमें ग्राम स्वराज, पंचायतराज, ग्रामोद्योग, महिलाओं की शिक्षा, गांवों की सफाई, गांवों का आरोग्य और समग्र ग्राम विकास आदि प्रमुख हैं।

महात्मा गांधी गांवों में गृह उद्योगों की दुर्दशा से चिंतित थे। स्वदेशी आंदोलन-विदेशी बहिष्कार और खादी को प्रोत्साहन देना उनके जीवन के आदर्श थे जिनको आधार बनाकर उन्होंने देश भर के करोड़ों लोगों को आजादी की लड़ाई के साथ जोड़ा। उन्होंने कहा कि खादी का मूल उद्देश्य प्रत्येक गांव को अपने भोजन एवं कपड़े में स्वावलंबी बनाना है।

'मेरे सपनों का भारत' में महात्मा गांधी के विभिन्न विषयों पर लिखे विचारों को प्रस्तुत किया गया है। महात्मा गांधी ने समय-समय पर यंग-इंडिया, हरिजन, हरिजन सेवक के अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपने विचार व्यक्त किए थे। इन विचारों का स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के साथ गहरा संबंध रहा है क्योंकि इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर लाखों नर-नारी किसी न किसी रूप में आजादी की लड़ाई में शामिल होते चले गए।

गांधीजी ने 'मेरे सपनों का भारत' में लिखा है- 'भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएं रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।' उनका स्पष्ट रूप से यह मानना था कि भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं।

'स्वराज्य' के अर्थ को परिभाषित करते हुए गांधीजी ने लिखा- 'स्वराज्य एक पवित्र शब्द है, वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म शासन और आत्म संयम है। अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेस' अकसर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वच्छता का अर्थ देता है, वह अर्थ स्वराज्य शब्द में नहीं है।'

गांधीजी ने स्वराज्य की जो कल्पना की थी या स्वराज्य के बारे में उनकी जो अवधारणा थी वह स्वतंत्रता के बाद कई क्षेत्रों में साकार हुई है। स्त्री समानता और बालिग मताधिकार

के बारे में उनका मत था- 'स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक सम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी तादाद के मत के जरिए हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गए हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया है।'

इसे आगे स्पष्ट करते हुए वे कहते है- 'मेरे... हमारे... सपनों के स्वराज्य में जाति (रेस) या धर्म के भेदों का कोई स्थान नहीं हो सकता। भारत के संविधान में जो सेक्यूलर राज्य की परिकल्पना की गई है वह वास्तव में गांधी के विचारों को ही प्रतिपादित करती है। गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में 16 अप्रैल 1931 को ही यह स्पष्ट कर दिया था- 'कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि भारतीय स्वराज्य तो ज्यादा संख्या वाले समाज का यानी हिंदुओं का ही राज्य होगा। इस मान्यता से ज्यादा बड़ी कोई दूसरी गलती नहीं हो सकती। अगर यह सही सिद्ध हो तो अपने लिए मैं ऐसा कह सकता हूं कि मैं उसे स्वराज्य मानने से इन्कार कर दूंगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर उसका विरोध करूंगा। मेरे लिए हिन्द स्वराज्य का अर्थ सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य है।'

भारत में स्वतंत्रता के बाद संसदीय लोकतंत्र लगातार मजबूत हुआ है। भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है जहां अनेक जातियों, धर्मों और भाषाओं के बावजूद सबको बराबरी का हक मिला है। जहां स्त्री-पुरुषों के बीच कोई असमानता नहीं है बल्कि भारत में महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में शीर्ष पर पहुंची हैं और हर क्षेत्र में वे अपनी क्षमता का प्रदर्शन करने में सफल रही हैं।

भारतीय लोकतंत्र की यह सबसे बड़ी सफलता रही है कि यहां संवैधानिक पदों पर हर जाति, धर्म और भाषा के लोगों को बिना किसी लिंगभेद के पदासीन होने के अवसर मिले हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सबको बढ़ने के और अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने के समान अवसर मिले हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी को गांधीजी ने सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने महिलाओं के संघर्ष को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के साथ जोड़ा। अस्पृश्यता के अभिशाप को दूर करने में महिलाओं के सहयोग पर बल दिया। महिलाओं को घर में रहकर भी जिस तरह से गांधीजी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा उसने आंदोलन को और सुदृढ़ किया।

गांधीजी महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार के क्रूर व्यवहार के विरोधी थे और महिला अधिकारों के प्रति संवेदनशील थे। वे ऐसे शोषण मुक्त समाज के पक्षधर थे, जहां सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता हो। महिला सशक्तिकरण के लिए उनके प्रयास का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि बिना सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के उन्होंने देश की लाखों शिक्षित-अशिक्षित महिलाओं तक अपनी आवाज पहुंचायी और उनमें चेतना जगायी।

'भारतीय स्त्रियों का पुनरुत्थान' लेख में गांधीजी ने महिलाओं के अधिकारों की वकालत करते हुए लिखा- 'अहिंसा की नींव पर रचे गए जीवन की रचना में जितना और जैसा अधिकार पुरुष को अपने भविष्यि की रचना का है, उतना और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपने भविष्य तय करने का है।'

ग्रामीण महिलाओं के बारे में उन्होंने लिखा- 'मैं भली भांति जानता हूं कि गांवों में औरतें अपने मर्दों के साथ बराबरी से टक्कर लेती हैं। कुछ मामलों में उनसे बढ़ी-चढ़ी हैं और हुकूमत भी चलाती हैं। लेकिन हमें बाहर से देखने वाला कोई भी तटस्थ आदमी यह कहेगा कि हमारे समूचे समाज में कानून और रूढ़ि की रू से औरतों को जो दर्जा मिला है, उसमें कई खामियां हैं और उन्हें जड़मूल से सुधारने की जरूरत है।'

स्त्रियों के अधिकारों के बारे में गांधीजी के विचार इस प्रकार थे- 'स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिए।'

दहेजप्रथा का गांधीजी ने न केवल घोर विरोध किया बल्कि उनका विचार था कि यह प्रथा नष्ट होनी चाहिए। गांधीजी ने दहेज प्रथा के उन्मूलन के लिए जाति-बंधन को तोड़ने पर जोर दिया। उन्होंने विधवाओं के पुनर्विवाह को उचित ठहराते हुए कहा कि अगर इस पावित्र्य की और हिंदू धर्म की रक्षा करना चाहते हैं, तो इस जबर्दस्ती लादे जाने वाले वैधव्य के विष से हमें मुक्त होना ही होगा। इस सुधार की शुरुआत उन लोगों को करनी चाहिए, जिनके यहां बाल-विधवाएं हों। उन्होंने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा कि बाल-विधवाओं के इस विवाह को मैं पुनर्विवाह का नाम नहीं देना चाहता, क्योंकि मैं जानता हूं कि उनका विवाह हुआ ही नहीं।

वे महिला शिक्षा के वे प्रबल समर्थक थे और उन्होंने अपने इस विचार को रेखांकित करते हुए कहा कि मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूं, लेकिन मैं यह भी मानता हूं कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योग पुरुष की नकल करके या उसकी प्रतिस्पर्धा करके नहीं दे सकती। गांधीजी का यह स्पष्ट मत रहा है कि स्त्री को पुरुष की पूरक बनना चाहिए।

भारत सरकार ने संविधान का 73वां संशोधन विधेयक पारित कर ग्राम पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों और जिला पंचायतों के स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था को लागू कर महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण देकर गांधीजी के सपनों को साकार करने की दिशा में सकारात्मक कदम उठाया है। कई राज्यों में तो महिलाओं को 50 प्रतिशत तक आरक्षण दिया जा चुका है। लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं में महिला आरक्षण उसी दिशा में अगला कदम होगा। राज्यसभा इस विधेयक को पारित कर चुकी है और लोकसभा में भी पारित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस विधेयक के पारित हो जाने से महिला सशक्तिकरण का एक शानदार

अध्याय शुरू होगा।

गांधीजी ने पंचायत राज के बारे में जो सपना देखा था वह साकार हो चुका है। गांधीजी ने 'मेरे सपनों का भारत' में पंचायत राज के बारे में जो विचार व्यक्त किए हैं वे आज वास्तविकता के धरातल पर साकार हो चुके है क्योंकि देश में समान तीन-स्तरीय पंचायत राज व्यवस्था लागू हो चुकी है जिसमें हर एक गांव को अपने पांव पर खड़े होने का अवसर मिल रहा है। गांधीजी ने कहा था 'अगर हिंदुस्तान के हर एक गांव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूंगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिए कि न तो कोई पहला होगा, न आखिरी।' इस बारे में उनके विचार बहुत स्पष्ट थे। उनका मानना था कि जब पंचायत राज स्थापित हो जाएगा तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखाएगा, जो हिंसा कभी भी नहीं कर सकती।

●

स्वास्थ्य क्रांति

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र को सशक्त बनाने के लिए आवश्यक विभिन्न प्रणालियों तथा वर्ष 2020 तक 'सभी के लिए स्वास्थ्य' सुनिश्चित करने के बारे में एक वृहद कार्य योजना की जरूरत है जिसकी एक रूपरेखा दी जा रही है। प्रौद्योगिकी-प्रेरित स्वास्थ्य प्रणालियों के महत्व तथा रक्षा प्रौद्योगिकियों से लाभ उठाने के संबंध में भी चर्चा की गई है। चूंकि भारत जैव-विविधता में समृद्ध है, पारंपरिक उपचार तथा जड़ी-बूटियों से औषधियां बनाने पर भी बल दिया गया है। इसके अलावा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी की आशाजनक भूमिका के बारे में बताया गया है। पोषण, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा हाइजीन जागरूकता बढ़ाने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

- भविष्य में स्वास्थ्य आपूर्ति संस्थानों को किस प्रकार आकार दिया जाएगा?
- वे रुझान तथा बदलाव कौन से हैं जो आगामी वर्षों में हमें दिखाई देंगे?
- हम प्रौद्योगिकी, प्रबंधन तथा चिकित्सा को मिलाकर एक व्यावहारिक तथा आर्थिक रूप से स्वीकार्य गठबंधन किस प्रकार बनाएंगे?
- हमारे रास्ते में निश्चित रूप से आने वाले अवरोध कौन से हैं और हम उन पर विजय कैसे पा सकते हैं?
- वे अनुसंधान विषय कौन से हैं, जिन पर हमें ध्यान देना चाहिए?
- प्रौद्योगिकियों को समाज की पीड़ा कम करनी चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए प्रौद्योगिकी विजन 2020 :

भारत विविध जलवायु अवस्थाओं तथा बहुत अधिक जनसंख्या वाला एक विशाल देश है। अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं, जागरूकता के अभाव तथा कुपोषण के कारण बहुत सी बीमारियां पैदा होती हैं।

जनसंख्या तथा स्वास्थ्य :

पिछले चार दशकों में देश में विभिन्न स्तरों पर किए गए उल्लेखनीय विकास प्रयासों के परिणामस्वरूप कई राज्यों में एक अत्यंत सुस्पष्ट जनसांख्यिकी संक्रांति देखने को मिली है। कुछ राज्यों में वर्तमान एकअंकीय मृत्यु दर कई यूरोपीय देशों के बराबर है और प्रतिवर्ष 8 व्यक्ति

प्रति 1000 व्यक्तियों पर स्थिर हो रही है।

वर्तमान जन्म-दर 25-30 प्रति हजार प्रतिवर्ष है और बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में वह शेष भारत से अधिक है, जिससे प्रतिवर्ष 17 व्यक्ति प्रति हजार की दर से राष्ट्रीय जनसंख्या वृद्धि हो रही है। यह देखा गया है कि उच्च स्त्री शिक्षा वाले राज्यों में जन्म-दर नियंत्रित है। इसलिए महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य विजन 2020 :

स्वास्थ्य के लिए प्रौद्योगिकी विजन 2020 देश के विभिन्न भागों में चुने गए स्वास्थ्य सेवा विशेषज्ञों के एक पैनल द्वारा तैयार किया गया था। इस टीम ने हमारे संपूर्ण समाज के लिए उचित मूल्यवाली, सुलभ तथा अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं के लक्ष्य के साथ वर्तमान स्वास्थ्य सेवा-प्रणाली की केंद्रीय क्षमताओं, उभरती समस्याओं तथा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के तरीकों का अध्ययन किया।

इस टीम ने अगले दशक तक तीन बड़ी बीमारियों- तपेदिक, एच.आई.वी./एड्स तथा जल से उत्पन्न बीमारियों के उन्मूलन के उपायों पर विचार किया है। कई अन्य बीमारियों भी हैं जिन पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, जैसे- कार्डियोवेस्कुलर रोग, न्यूरो-साइकिएट्रिक विकार, गुरदे की बीमारियां तथा उच्च रक्तचाप, गैस्ट्रो-इंटेस्टाइनल विकार, नेत्र विकार, आनुवंशिक रोग तथा दुर्घटनाएं व सदमा। यह भी महसूस किया गया है कि दंत स्वास्थ्य को भी स्वास्थ्य विजन में शामिल किया जाना चाहिए।

हमें ऐसी समस्याओं से निपटने के क्रम में देश में स्वास्थ्य सेवा-प्रणाली में सुधार के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना चाहिए। ऐसे प्रयासों से एक लागत-सक्षम चिकित्सा प्रौद्योगिकी और सभी के लिए उपलब्ध व सुलभ उपकरण बनाने में मदद मिलेगी।

हमारे देश में स्वास्थ्य सेवा आपूर्ति की प्लानिंग के प्रति एक समन्वित दृष्टिकोण रखने की अत्यंत आवश्यकता है। पारंपरिक मेडिकल शिक्षा तथा शोध कार्यक्रमों के अलावा, क्लीनिकल प्रौद्योगिकियों में पोलीक्लीनिक स्तर के कार्यक्रमों पर अवश्य जोर दिया जाना चाहिए। महंगे दैनानिक (डायग्नोस्टिक) तथा उपचारात्मक उपकरणों को लागत-सक्षम (कॉस्ट-इफेक्टिव) बनाने के लिए उनका स्वदेशीकरण तथा स्वदेशी कौशल और अतिरिक्त पुरजों का इस्तेमाल करते हुए चिकित्सीय उपकरणों की एक राष्ट्रीय अनुरक्षण (मेंटेनेंस) प्रणाली की स्थापना भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

एलोपैथिक मार्ग के अलावा वैज्ञानिक तरीके से हर्बल औषधियां विकसित करके तथा क्लीनिकल डाटाबेस द्वारा उनकी सक्षमता को विधि मान्य बनाकर दवाओं की कीमत को कम करने की आवश्यकता है। प्रौद्योगिकी को स्वास्थ्य सेवाओं के साथ समन्वित प्रयास करने से भारत के हर कोने में इच्छित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

स्वदेशी मेडिकल प्रौद्योगिकी, उपकरणों तथा प्रणालियों की आवश्यकता :

न केवल गरीबी रेखा के नीचे स्थित 26 प्रतिशत भारतीय जनसंख्या के लिए, बल्कि मध्यम आय समूह के लिए भी चिकित्सा सुविधाएं खरीदना कठिन है। भारतीय स्वास्थ्य आपूर्ति प्रणाली

की बड़ी समस्या नैदानिक तथा रोगोपचारक उपकरणों तथा मशीनों के आयात पर लगभग पूर्ण निर्भरता है। हर वर्ष 5,000 करोड़ रुपए से अधिक धन मेडिकल उपकरणों तथा मशीनों के आयात पर व्यय होता है। हालांकि आम आदमी शायद ही कोई आयातित वस्तु खरीदता है, लेकिन उसे स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आयातित उपकरणों को खरीदना या उनका आंशिक मूल्य चुकाना पड़ता है। यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य पर बल देता है कि हमें उपलब्ध प्रौद्योगिकी पर आधारित या अपने देश में प्रौद्योगिकी विकसित करके कम लागत पर स्वदेशी चिकित्सीय उपकरण, उपभोग्य वस्तुएं तथा मशीनें उत्पादित करने में सक्षम एक आधारभूत तंत्र का निर्माण करने की आवश्यकता है।

स्वदेशी स्वास्थ्य सेवाओं के लिए प्रौद्योगिकी स्पिन-ऑफ :

सोसाइटी फॉर बायोमेडिकल टेक्नोलॉजी (एस.बी.एम.टी.) की स्थापना स्वास्थ्य सेवाओं को आम आदमी की पहुंच तक लाने के उद्देश्य से प्रौद्योगिकी स्पिन-ऑफ तथा अनुसंधान का लाभ उठाने के लिए की गई थी। रक्षा प्रौद्योगिकियों के कुछ स्पिन-ऑफ (उप-उत्पाद) हैं, एफ. आर.ओ., कार्डिएक स्टेंट 'अनामिका' एसफेरिक लेंस 'दृष्टि' टाइफायड टेस्ट किट, साइटोस्कैन, डेंटल इंप्लांट, हिप प्लांट 'संजीवनी' आदि।

पोलियो प्रभावित बच्चों के लिए चलने में मदद करने वाले उपकरण लोर रिएक्शन ऑर्थोसिस (एफ.आर.ओ.) को विभिन्न स्टैंडर्ड आकारों में एक मॉड्यूलर रूप में विकसित किया गया था। उत्कृष्ट सम्मिर सामग्रियों तथा प्रक्रियाओं के इस्तेमाल ने एफ.आर.ओ. को टिकाऊ, मजबूत, हलका (300 ग्राम) और कम महंगा (300 रुपए) बनाया, जबकि पारंपरिक कैलिपर का वजन 3,000 ग्राम तथा कीमत 1,000 रुपए हैं। फिलहाल एफ.आर.ओ. का उत्पादन सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय द्वारा स्टैंडर्ड आकारों में किया जा रहा है और पोलियो प्रभावित बहुत से बच्चे इसका इस्तेमाल कर रहे हैं।

कोरोनरी आर्टरी स्टेंट अब तक ऊंची कीमत पर आयातित किए जाते थे। रक्षा परियोजनाओं में इस्तेमाल होनेवाली सामग्रियों से बने स्वदेशी स्टेंटों ने लागत को कम करने में मदद की। क्लीनिकल परीक्षणों के बाद इस प्रौद्योगिकी को सामूहिक उत्पादन के लिए एक निजी उद्यमी को हस्तांतरित कर दिया गया तथा आयातित स्टेंट की एक-तिहाई कीमत पर इसका उत्पादन किया जा रहा है।

'अनामिका' इमेज प्रॉसेसिंग प्रौद्योगिकी का एक स्पिन-ऑफ है। यह 2डी एम.आर.आई./सी.टी. स्केन तस्वीरों को 3डी रूप में परिवर्तित करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला मेडिकल विजुअलाइजेशन सॉफ्टवेयर है, जिससे चिकित्सकों द्वारा अपने कंप्यूटरों पर सर्जरी को अनुकृत करना संभव होता है। यह सॉफ्टवेयर वास्तविक सर्जरी से पहले ट्यूमर को अच्छी तरह परखने में मदद करता है, जिससे सर्जरी के दौरान मौत की संभावना कम हो जाती है।

एसफेरिक मैग्निफायर दृष्टि-दोष के पीड़ित लोगों में दृष्टि के सुधार में उपयोगी है। दृष्टि-1064 के नाम से जाना जानेवाला ऑपथेलमिक लेजर फोटो डिसरप्टर 'दृष्टि' कैप्सूलोटॉमी तथा आइरिडोटॉमी के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसे आयातित उपकरण की एक-तिहाई

लागत पर विकसित किया गया।

टायफाइड टेस्ट किट को किसी भी स्थान पर टायफाइड संक्रमण की जांच के लिए इस्तेमाल किया जाता है। साइटोस्कैन (कैंसर के आरंभिक निदान के लिए), कार्डिएक पेसमेकर, टिटेनियम डेंटल इंप्लांट तथा हिप ज्वाइंट रक्षा प्रौद्योगिकी के ही उप-उत्पाद हैं।

'संजीवनी' भूकंप, भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं में जीवन-रक्षक है। इसे गुजरात में हुए भूकंप के दौरान मलबों में दबे लोगों के जीवन को बचाने में इस्तेमाल किया गया था।

ग्रामीण भारत के लिए प्रौद्योगिकी-प्रेरित समन्वित स्वास्थ्य सेवा :

एक परमाणु भौतिक-विज्ञानी प्रो. एम.आर. राजू ने अमेरिका के लॉस अल्मोस प्रयोगशाला से रेडिएशन ऑन्कोलॉजी में विशेषज्ञता प्राप्त की। अमेरिका में पैंतीस वर्ष रहने के बाद वह आंध्र प्रदेश के पश्चिमी गोदावरी जिले में स्थित अपने पैतृक गांव पेड्डामिरम लौटे। गांवों को आत्मनिर्भर बनाने के सामाजिक मिशन के उद्देश्य से उन्होंने अपने गांव के पांच किलोमीटर के अंदर रहने वाले सभी लोगों का एक कंप्यूटराइज्ड डाटा बैंक बनाया। मुख्य रूप से स्वास्थ्य पैरामीटरों पर आधारित यह आधार सामग्री अन्य सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक विवरण भी उपलब्ध कराती है, जो स्वास्थ्य सेवा की आपूर्ति के लिए अनिवार्य है। डाटा बैंक बनाने के अलावा प्रो. राजू जरूरतमंद ग्रामीणों को समन्वित स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करा रहे हैं।

हमें लगता है कि ग्रामीण क्षेत्र में प्रो. राजू के प्रयोग के परिणामों को विस्तृत करना चाहिए। विभिन्न संगठनों को इस मिशन में सक्रिय सहयोगी बनाना चाहिए।

जीव-विज्ञान, प्रयोगशालाओं का बड़ा कार्य किसी भी पर्यावरणीय अवस्था में, चाहे वह ऊंचाई, रेगिस्तान, अंतर्जल या ऐरोस्पेस वातावरण हो, में इच्छित स्वास्थ्य, जूझने की क्षमता तथा ऑपरेशनल सक्षमता सुनिश्चित और विकसित करना है। भारतीय स्वास्थ्य सेवा प्रणाली के विभिन्न पहलुओं- निदान, आरोग्यकर विधि, ड्रगथैरेपी, बचाव औषधि, जन-स्वास्थ्य आपूर्ति, स्वदेशी दवा तथा क्लीनिकल शोध- को सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा समन्वित करने का सही समय आ गया है।

कुछ भारतीय अस्पतालों में हाल में एक समन्वित मेडिकल इन्फॉरमेटिक्स सिस्टम विकसित तथा स्थापित किया गया है। मेडिकल इमेजों के डिजिटाइजेशन तथा मेडिकल विशेषज्ञों द्वारा निदान के लिए वर्तमान संचार आधार-तंत्र के द्वारा उनका संचरण करने का कार्य आरंभ हो चुका है। राष्ट्रीय स्तर पर अपनी मेडिकल प्रौद्योगिकी विकसित करने इन प्रयोगों को अधिक उन्नत रूप देना हमारी जनता के उपचार के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में चल (मोबाइल) क्लीनिक :

उत्तरांचल सरकार तथा बिडला इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च के साथ मिलकर टी. आई.एफ.ए.सी. ने अल्मोड़ा में एक सचल क्लीनिक स्थापित किया है, ताकि पहाड़ी क्षेत्रों के सुदूर कोनों में रहनेवालों लोगों को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराई जा सके। इस गतिशील क्लीनिक में आधुनिक चिकित्सा सुविधाएं, जैसे- एक्स-रे, ई.सी.जी., अल्ट्रासाउंड, रक्त की जांच तथा अन्य नैदानिक उपकरण तथा चिकित्सकों, रेडियोलॉजिस्टों तथा चिकित्सक सहायकों

की एक टीम होती है। साथ ही, इस सचल वैन में ग्रामीण लोगों को शिक्षित करने के लिए दृश्य-श्रव्य स्वास्थ्य सेवाएं भी होती हैं। ऐसे मोबाइल क्लीनिकों को सेटेलाइट टर्मिनलों के द्वारा इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी उपलब्ध कराते हुए शहरी अस्पतालों से जोड़ना चाहिए। यह ग्रामीण जनसंख्या के लिए एक वरदान होगा, जो सुदूर क्षेत्रों में रहते हैं तथा मूलभूत चिकित्सा सुविधाओं का खर्च भी नहीं उठा सकते।

औषधीय (फार्मास्युटिकल) रुझान :

भारतीय फार्मा क्षेत्र ने आयातित औषधियों से सूत्रों के निर्माण तथा पुनःपैकिंग से अपना कार्य आरंभ किया; परंतु अब देश के भीतर 400 से अधिक औषधियों के उत्पादन की क्षमता के साथ वह एक विदेशी मुद्रा अर्जक बन गया है। मात्र संसाधक उद्योग वे वह उन्नत निर्माण प्रौद्योगिकियों, आधुनिक उपकरणों, कड़े गुणवत्ता नियंत्रण तथा उचित कीमत वाले उत्पादों के साथ एक प्रगतिशील क्षेत्र में परिणत हो गया है। फार्मा उद्योग के लिए दवाओं के उत्पादान में भारत को अलगे दो दशकों में नंबर वन बनाने का स्वप्न साकार करने का समय आ गया है। फिलहाल वह मात्रा के संदर्भ में चौथे तथा महत्व के संदर्भ में तेरहवें स्थान पर है।

प्रौद्योगिकी तथा पारंपरिक जड़ी-बूटियां :

पूरे विश्व में कई शताब्दियों तक विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा पारंपरिक औषधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। पारंपरिक उपचार प्रणालियों, जैसे आयुर्वेद, सिद्ध आदि ने बचाव तथा उपचारात्मक चिकित्सा-विधियों का समर्थन और प्रयोग किया है। बचावकारी या रोगोपचारक प्रवृत्ति के लिए शरीर, मस्तिष्क, खाद्य पदार्थ तथा पर्यावरण को समग्र रूप से देखा गया। पारंपरिक औषधि-विज्ञान आधुनिक एलोपैथी से भिन्न है। लेकिन यदि हम दोनों विज्ञानों में पारस्परिक व्यवहार स्थापित कर सकें तो इसका सभी समाजों पर प्रभाव पड़ेगा।

नई प्रौद्योगिकियां, जैसे ह्यून जीनोम सीक्वेंसिंग, प्रोटेमिक्स, केमोजीनोमिक्स, अल्ट्रा-हाई थ्रूपुट स्क्रीनिंग दवा की खोज में क्रांति ला रहे हैं। औषधीय पौधे भी दवाओं के विकास के लिए काफी अवसर उपलब्ध कराते हैं। दवाओं में उनके प्रयोग तथा आर्थिक महत्व के अर्थों में ये औषधीय पौधे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ऐसे औषधीय पौधों को हबैल बगीचों में व्यवस्थित रूप से उगाया जा सकता है। किसी औषधीय पौधे को एक औषधीय उत्पाद के रूप में प्रयुक्त करने से पहले उसकी विशिष्ट जैव क्रिया (बायोएक्टिविटी) को प्रमाणित करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी के आधुनिक उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है। अन्ना विश्वविद्यालय में सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी विशिष्ट जैव क्रिया के लिए पारंपरिक औषधीय पौधों का एक डाटा बैंक तैयार करने का विचार किया हैं सौ औषधीय पौधों की जांच की गई है और नई दवाओं के विकास के लिए पहल कर दी गई है।

पारंपरिक चिकित्सकों को अपने उत्पादों को विधिमान्य बनाने के लिए आधुनिक तरीकों का प्रयोग करने के बारे में सोचना चाहिए, जो पारंपरिक चिकित्सकों के बारे में नकारात्मक विचार रखनेवाले लोगों के समूहों तक पहुंच बनाने में लाभदायक सिद्ध होगा। साथ ही, जैविक क्रिया का यह वैधीकरण एक विस्तृत जन-समूह तक उनके उत्पादों को पहुंचाने में अत्यंत

लाभदायक होगा।

इसके अतिरिक्त पारंपरिक चिकित्सकों द्वारा अपने उत्पाद के संरूपण (फॉर्मूलेशन) से पहले ही अपने विरचन (प्रिपेरेशन) की गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए ऐसे उपकरणों का लाभ उठाया जा सकता है। यह ज्ञात तथ्य है कि औषधीय पौधों में मौसम, मिट्टी आदि के अनुसार जैव क्रिया में भिन्नता होती है, इसलिए जैसे ही उत्पाद तैयार किए जाते हैं, उनकी गुणवत्ता जांच अनिवार्य है।

इस प्रकार, जैव प्रौद्योगिकी में इन जैव क्रिया पर आधारित जांचों की उपलब्धता पारंपरिक चिकित्सकों के लिए अत्यंत बहुमूल्य हो सकती है।

जड़ी-बूटियों के क्षेत्र में चुनौतियां :

हमारा दृष्टिकोण सामान्य कोशिकीय क्रियाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनेवाले अणुओं पर आधारित ज्ञान का लाभ उठाने का होना चाहिए। इनमें से कई अणुओं जैसे सिग्नल स्विच, कोशिका सतहों पर ट्रांसपोर्टर, एड्हेसिव (चिपचिपा) अणु तथा अन्य क्रियात्मक सामान्य अणुओं, विशिष्ट एंजाइमों आदि का आणविक तथा कोशिका जैवीय तकनीकों (मॉलीक्यूलर एंड सेल बायोलॉजिकल टेकनीक्स) द्वारा अध्ययन किया गया है। इन्हें लक्ष्यों तथा जैव क्रिया के लिए परीक्षण उपकरणों के रूप में भी परीक्षण उपकरणों के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। परीक्षण प्रारूप के रूप में क्रियात्मक जैव परीक्षणों को इस्तेमाल करने की यह प्रवृत्ति विशिष्ट जैवीय क्रिया का पता लगाने का बेहतरीन तरीका हो सकता है। आगे यह सक्रिय अणुओं के तीव्र पृथक्करण में मदद कर सकता है, जो संरचनात्मक स्पष्टीकरण को प्रेरित करेगा। इस प्रवृत्ति को सफल बनाने के लिए कोशिका जीव-विज्ञान, परीक्षणों तथा संरचनात्मक रसायन-विज्ञान के बीच पारस्परिक व्यवहार की आवश्यकता होगी।

मैमेलियन सेल कल्चर (स्तनपायी कोशिका संवर्धन), आणविक तथा कोशिकीय जीव-विज्ञान तथा वानस्पतिक लाभों के अध्ययन के द्वारा बायो-इन्फॉरमेटिक्स पर डाटाबेस तैयार किया गया है। स्वास्थ्य सेवा से संबंधित किसी विशिष्ट समस्या को सुलझाने के लिए इस डाटाबेस से सूचना ली जाती है। जैव प्रौद्योगिकीय जांच उपकरण का इस्तेमाल करते हुए इस समस्या की विस्तृत जांच की जाती है और उसे आणविक स्तर पर स्थिर कर दिया जाता है। समस्या की पहचान तथा निर्धारण के बाद उसे सुलझाने के लिए एक उपयुक्त दवा तैयार की जाती है। फिर आणविक स्तर पर दवा को तैयार करने के लिए अनुसंधान तथा विकास किया जाता है। इसमें औषधि-विज्ञानों में विशेषज्ञता, औषधि-विज्ञान, विशिष्टीकरण सुविधा, परीक्षण सुविधा, क्लीनिकल सुविधा तथा विकास कार्य में अधिक मदद के लिए प्रायोजकों की आवश्यकता होती है।

इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए अन्ना विश्वविद्यालय ने तीन नए कैंसर- प्रतिरोधी अणुओं तथा दो मधुमेह-प्रतिरोधी अणुओं की पहचान की है, जिनका विभिन्न स्तरों पर विश्लेषण किया जा रहा है और इससे महत्वपूर्ण दवाएं बनाने में मदद मिल सकती है।

प्राकृतिक संसाधनों तथा ज्ञान को अर्थ-प्राप्ति के लिए उपयोग में लाने के एक उदाहरण के रूप में हर्बल उत्पादों के लिए इनक्यूबेशन सेंटर (आई.सी.) का एक नमूना विकसित किया गया

है। यह एस.ए.सी.सी. (साइंटिफिक एडवाइजरी कमेटी टू द कैबिनेट) यानी मंत्रिमंडल की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सुझावों पर अनुवर्ती कार्रवाई के परिणाम के रूप में विकसित हुआ। इनक्यूबेशन सेंटर भारतीय हर्बल उद्योगों को विश्व बाजार में अपना स्थान बनाने के प्रयासों में मदद करेंगे। इन इनक्यूबेशन सेंटरों को भारतीय हर्बल उद्योगों को व्यावसायिक संसाधन उपलब्ध कराने तथा प्रौद्योगिकी सहयोग के क्षेत्र में प्रोफेशनल सेवाएं उपलब्ध कराने के लक्ष्य से बनाया गया है। इस प्रकार इन सेंटरों के उत्पाद अर्ध-पूर्ण प्रकृति के होंगे और प्रौद्योगिकी संबंधी उत्पादों, जैसे ऊतक संवर्धित पौधों, कृषि तकनीक तथा प्रोटोकॉल, निकाले गए पदार्थों के मानकीकरण आदि के रूप में अधिक होंगे। इसलिए इनक्यूबेशन सेंटरों का उद्देश्य है औद्योगिक भागीदारी के माध्यम से हर्बल क्षेत्र में मूल्य-संवर्धन की तकनीकों को कृषकों तक पहुंचाना।

याद रखने योग्य एक अनुभव : हर्बल औषधि :

यहां पर हम एक घटना का उल्लेख करना चाहेंगे कि किस प्रकार समर्पित स्वास्थ्य सेवा तथा देशी हर्बल प्रणाली ने पूरी तरह से हिमदाह (फ्रॉस्टबाइट) का उपचार करने में मदद की। हिमाचल प्रदेश की ऊपरी पहाड़ियों में स्नो एंड एवलेंच स्टडी इस्टेब्लिशमेंट (एस.ए.एस.ई.) नामक डी.आर.डी.ओ. की एक प्रयोगशाला है। इस प्रतिष्ठान की 15,000 तथा 19,000 फीट की ऊंचाइयों पर आउट स्टेशन वेधशालाएं (ऑब्जर्वेटरी) हैं। हाल में वैज्ञानिकों का एक समूह एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जा रहा था, जब वे एक बर्फीले तूफान में घिर गए। हालांकि अधिकांश वैज्ञानिकों को कोई क्षति नहीं हुई, लेकिन उसमें से एक वैज्ञानिक बर्फ में फंस गया। जब दो दिनों बाद उसे निकाला गया तो उसे पैरों तथा बांहों में गंभीर ग्रेड 4 हिमदाह हो गया था।

स्थानीय अस्पताल के चिकित्सकों ने प्रभावित भागों को काटने की सलाह दी। इसके बाद दिल्ली स्थित डी.आर.डी.ओ. प्रयोगशाला, डिफेंस इंस्टीट्यूट ऑफ फिजियोलॉजी एंड एलाइड साइंसेज (डी.आई.पी.ए.एस.) को एलोपैथी उपचार के साथ एक भारतीय हर्बल उत्पाद एलोवीरा के इस्तेमाल के द्वारा चिकित्सा उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी सौंपी गई। डी.आई.पी.ए.एस. ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया और रोगी का उपचार आरंभ किया। इस प्रयास का नतीजा सकारात्मक निकला और इसके परिणामस्वरूप बिना कोई अंग काटे पैंतालीस दिनों के उपचार के अंदर ही रोगी पूर्ण स्वस्थ्य हो गया। भारतीय हर्बल प्रणाली पर किया गया भरोसा कायम रहा।

यह अनुभव विभिन्न बीमारियों से लड़ने में भारतीय हर्बल प्रणाली की असीम क्षमता तथा रोगी-चिकित्सक संबंध को भी उजागर करता है। हम कहना चाहेंगे कि चिकित्सक तथा मेडिकल विशेषज्ञ रोगियों को समन्वित मनुष्य या मानसिक-शारीरिक सत्ता के रूप में देखते हैं और जिनके लिए उपचार को बहुपक्षीय होना चाहिए। रोगी की अवस्था के अनुसार, कुछ रोगों को केवल भारतीय प्रणाली द्वारा ही ठीक किया जा सकता है, जबकि अन्य में भारतीय तथा एलोपैथी प्रणालियों के मिश्रण की आवश्यकता हो सकती है।

जैव प्रौद्योगिकी :

जैव प्रौद्योगिकी ने विशेषकर डी.एन.ए. तकनीकों, कोशिका तथा ऊतक संवर्धन, इम्युनोलॉजी, एंजाइमोलॉजी, बायोप्रोसेस इंनीनियरिंग तथा वेक्सीनोलॉजी के क्षेत्रों मे काफी प्रगति की है।

डी.एन.ए. की खोज तथा व्यस्क स्तनपायियों के क्लोनिंग में उसके इस्तेमाल ने एक नया क्षेत्र खोल दिया है। नए जैव प्रौद्योगिकीय उपकरणों की उपलब्धता तथा बेहतर प्रकृतियों वाले रोगाणुओं (माहदूक्रोब), पौधों और जानवरों के उत्पादन ने बेहतरीन उत्पादों तथा प्रक्रियाओं के लिए अवसर खोल दिए हैं। इस क्षेत्र की उल्लेखनीय उपलब्धियों में इम्युनो डायग्नोस्टिक्स शामिल हैं, जो विभिन्न प्रकार के संचरी तथा असंचारी रोगों की आरंभिक पहचान के लिए नैदानिक उपकरणों का विकास है।

- फसल जैव प्रौद्योगिकी (क्रॉप बायोटेक्नोलॉजी)- कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के उद्देश्य से जीन अलगाव, ट्रांसफॉरमेशन आदि के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग।
- पशु जैव प्रौद्योगिकी (एनिमल बायोटेक्नोलॉजी)- अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र हैं भ्रूण अंतरण प्रौद्योगिकी (एंब्रयो ट्रांसफर टेक्नोलॉजी), स्वास्थ्य देख-रेख तथा निदान, पोषण, जेनेटिक रिसोर्स कंजर्वेशन, चर्म जैव प्रौद्योगिकी तथा जैव उत्पादों का विकास।
- जलकृषि- चारा विकास, ट्रांसनेनिक मछली का उत्पादन, जैव-सक्रिय यौगिकों को निकालना, भ्रूणों का क्रायो संरक्षण तथा रोग नैदानिकों का विकास।
- जैव उर्वरक- पौधों के कीटों, बीमारियों तथा खर-पतवार का जैविक नियंत्रण।
- औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी (इंडस्ट्रियल बायोटेक्नोलॉजी)- जीन क्लोनिंग, अयस्कों के संवर्धन के लिए जैव प्रौद्योगिकीय विधियां तथा खाद्य मशरूमों की उत्पादन प्रक्रियाएं।

भारत में जैव प्रौद्योगिकी के विकास का नेतृत्व जैव प्रौद्योगिकी विभाग कर रहा है तथा कुछ राज्यों ने 'विजन ग्रुप फॉर बायोटेक्नोलॉजी' की स्थापना की पहल की और जैव प्रौद्योगिकी परियोजनाओं के लिए सरल क्लीयरेंस प्रक्रिया सुनिश्चित कर रहे हैं।

एक और क्षेत्र जो उभरकर सामने आया है, वह है बायोइन्फॉरमेटिक्स या ह्यूमन जीमोन परियोजना, जीनोमिक्स तथा ड्रग केमिस्ट्री से उत्पन्न बड़ी मात्रा में जैविक आंकड़ों के विश्लेषण, तुलना तथा प्रबंध के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल। इस क्षेत्र में हुए हालिया प्रयासों में जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा पूरे देश में 52 जैव सूचना केंद्र (बायोइन्फॉरमेशन सेंटर) स्थापित करना तथा टी.आई.एफ.आर. द्वारा बंगलौर के निकट बायोइन्फॉरमेटिक सेंटर की स्थापना शामिल है।

भविष्य में सूक्ष्म जैस रसायनों तथा औषधियों के उत्पादन के लिए जैविक रूप से उत्प्रेरित प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण होंगी। हानिकारक व्यर्थ पदार्थों को हटाने के लिए तथा महत्वपूर्ण उप-उत्पादों को उत्पन्न करने के लिए बायो-इंजीनियरिंग प्रणालियों का इस्तेमाल किया जाएगा। और जेनिटिक इंजीनियरिंग के परिणामस्वरूप, कई प्राकृतिक उत्पाद, जिनके स्थान पर सिंथेटिक विकल्पों का प्रयोग किया जा रहा था, वे फिर से नजर आएंगे। पर्यावरणीय प्रदूषण की पड़ताल, रक्त-विश्लेषण या किसी फल के पकने की पहचान के लिए जैव संवेदकों (बायोसेंटर) के भी विस्तृत पैमाने पर इस्तेमाल होने की संभावना है। नेनोमेडिसिन जेनेटिक मोडिफायर्स, एडवांस्ड ड्रग डिलीवरी सिस्टम्स, टिशू कल्चर, डी.एन.ए. रिपेयर आदि भावी चुनौतियां हैं। इन्हें सफल बनाने में काम आनेवाली प्रौद्योगिकियां हैं- जैव-उत्प्रेरण (बायोकैटेलाइसिस), बायोइंजीनियरिंग प्रणालियां, बायोमॉलीक्यूलर सामग्रियां तथा जैव सामग्रियां।

जैव संवेदक (बायोसेंसर) :

अन्ना विश्वविद्यालय में मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के मस्तिष्क की लगभग सामान्य क्रिया सुनिश्चित करने के उद्देश्य से एक सॉफ्टवेयर/हार्डवेयर समन्वित समाधान प्राप्त करने के लिए एक अनुसंधान परियोजना चल रही है। सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, मेडिकल इलेक्ट्रॉनिक्स, जैव प्रौद्योगिकी तथा गणितीय अनुकृति के मिश्रण से इस समस्या का समाधान मिल सकता है। मस्तिष्क के क्षतिग्रस्त हिस्से की क्रियाओं को मस्तिष्क के सामान्य भाग में स्थापित करके तथा एक बायो-चिप लगाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस पर शोध अभी जारी है।

स्टेम सेल रिसर्च :

स्टेम सेल गुणधर्मों के साथ प्रजनक की पहचान तथा विशिष्टीकरण ने नई राहें खोल दी हैं, जो विशिष्ट कोशिका संख्या की मौत के कारण हुई क्रियात्मक क्षति के उपचार में उपयोगी हो सकते हैं। स्टेम सेल क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को पुनः उत्पन्न करके और उन्हें आगे और ह्रास होने से बचाकर कुछ दोषपूर्ण अंगों की क्रिया को बहाल करने में मदद कर सकते हैं। यह हृदय रोगों, कैंसर, अंधता तथा मानसिक विकलांगता के लिए मेडिकल उपचार में एक क्रांति को प्रेरित करेगा। एक समन्वित राष्ट्रीय स्टेम सेल रिसर्च प्रोग्राम आरंभ करना जरूरी है।

आनेवाले वर्ष में कृषि क्षेत्र में भी जैव प्रौद्योगिकी प्रमुख प्रौद्योगिकी होगी। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों में एक ट्रांसजेनिक पौधों, यानी इच्छित प्रकार के जीन के ट्रांसफर द्वारा इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तैयार किए गए पौधों का विकास।

भारत में बायोटेक्नोलॉजी तथा बायोइन्फॉरमेटिक्स के विकास के अच्छे मौके हैं, जिसमें नए रासायनिक तत्वों के लिए हाई थ्रूपुट स्क्रीनिंग, जीनोमिक्स तथा फार्मेको-जीनोमिक्स, जीन थैरेपी, डायग्नोस्टिक किट्स, बायो-पेस्टीसाइड तथा बायो-फर्टिलाइजर, इंडस्ट्रियल एंजाइम तथा पर्यावरणीय बायोटेक उत्पाद।

टीके का विकास :

उत्कृष्ट स्वास्थ्य सेवाओं को प्रेरित करनेवाला एक क्षेत्र है एड्स और मलेरिया जैसे घातक रोगों के लिए टीकों का विकास करने के लिए शोध। एड्स का कारण एच.आई.वी. वायरस खतरनाक स्तर तक पहुंच गया है ओर वर्तमान समय में भारत में लगभग चालीस लाख लोगों के इस वायरस से प्रभावित होने का अनुमान है। भारत में कैंडिडेट वायरस का एक प्रारूप विकास की अवस्था में है और प्री-क्लीनिकल टॉक्सिकोलॉजिकल अध्ययनों के लिए तैयार है।

ध्यान देने की आवश्यकता वाला एक अन्य क्षेत्र है मलेरिया रोग, जो विश्व में प्रत्येक वर्ष दस लाख से अधिक लोगों की मौत का कारण बनता है। डबल डोज के एक तरीके को अपनाते हुए एक टीका विकसित करने के लिए शोध जारी है, जिसमें पहले मलेरिया परजीवी के लिए टीकाकरण किया जाएगा, फिर भिन्न मलेरिया डी.एन.ए. वाले हानिरहित वायरस का एक डोज दिया जाएगा। पाया गया है कि इस प्रकार से 5 से 10 गुना मलेरिया-प्रतिरोधी टी-कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं, जो वायरस को समाप्त कर सकती हैं।

स्वास्थ्य सेवा को पुनर्रूपांकित तथा रूपांतरित करना :

विश्व स्तर पर स्वास्थ्य सेवा आपूर्ति के क्षेत्र में लगभग दैनिक आधार पर तीव्र प्रगति हो रही हैं नई क्रांतिकारी प्रौद्योगिकियों, उन्नत प्रबंधन व्यवहारों तथा मेडिसिन की उभरती राजनीति तथा सामाजिक जलवायु के मिश्रित प्रभाव ने स्वास्थ्य आपूर्ति के तरीके तथा माध्यमों को प्रभावित करते हुए बहुत से बदलावों को प्रेरित किया है। स्वास्थ्य संस्थानों की पुनः डिजाइनिंग भी स्वास्थ्य आपूर्ति के मुख्य माध्यम के रूप में अस्पताल के पुनः रूपायन को प्रेरित कर रही है। स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में अन्य संस्थान भी नवीन परिवर्तनों से गुजर रहे हैं। यह सब 'प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य तथा प्रबंधन को साथ लाने में' शोधकर्ताओं तथा चिकित्सकों के लिए चुनौतियां तथा अवसर उत्पन्न कर रहे हैं। हमें ऐसे शोधकर्ताओं को, जो भविष्य पर नजर रखते हुए स्वास्थ्य आपूर्ति के तीन घटकों (रोग से बचाव, निदान तथा उपचार) को साथ लाने का प्रयास कर रहे हैं तथा इन विषयों में रुचि रखनेवाले चिकित्सकों को एकत्र करना होगा।

भविष्य में स्वास्थ्य के क्षेत्र में निम्नलिखित विषय महत्वपूर्ण होंगे-

1. स्वास्थ्य आपूर्ति संगठनों में प्रौद्योगिकी प्रबंधन- स्वास्थ्य आपूर्ति में कार्य की प्रकृति तथा कौशल; प्रक्रियाएं तथा प्रदर्शन; स्वास्थ्य आपूर्ति में ज्ञान प्रबंधन; अस्पतालों में प्रौद्योगिकी स्थापना के लिए रणनीतियां; व्यवस्थित देख-रेख तथा लागत नियंत्रण; प्राथमिक चिकित्सा में प्रौद्योगिकी के प्रयोग; उपकरण; आधारभूत तंत्र तथा भविष्य के अस्पताल की संरचना।
2. स्वास्थ्य आपूर्ति संगठनों में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रबंध तथा व्यवस्था- स्वास्थ्य आपूर्ति में सूचना प्रौद्योगिकी के कार्यान्वयन तथा प्रसार की प्रक्रियाएं; संचार तथा व्यवस्था में मानकों की भूमिका; सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा नेटवर्किंग; कंप्यूटराइज्ड मेडिकल रिकॉर्ड।
3. उभरती मेडिकल प्रौद्योगिकियों, ई-हेल्थ, टेलीहेल्थ तथा टेलीमेडिसिन की व्यवस्था, प्रबंधन और प्रायोग- इन उभरती प्रौद्योगिकियों की भूमिका; इन प्रौद्योगिकियों के कार्यान्वयन तथा अंगीकरण की प्रक्रियाएं, अवरोध तथा व्यवस्थात्मक मुद्दे।
   संचार प्रौद्योगिकी के आविष्कार ने टेलीमेडिसिन को उपचार का एक प्रसिद्ध माध्यम बना दिया है। टेलीमेडिसिन के प्रयोग द्वारा सुदूर गांवों को बड़े अस्पतालों से जोड़ना संभव है, जिसमें डॉक्टर द्वारा अस्पताल में रोगी की अवस्था का निदान किया जाता है और उसके मतों को संचार कड़ी द्वारा प्रेषित किया जाता है। ऐसी एक प्रणाली हैदराबाद में केयर अस्पताल में स्थापित की गई है, जिसे महबूब नगर जिले में एक गांव से जोड़ा गया है।
4. मेडिकल प्रौद्योगिकियां तथा रोगी उपयोगिता- रोगी के लिए मेडिकल प्रौद्योगिकियों की उपयोगिता; प्रौद्योगिकीय प्रगति को देखते हुए रोगी गोपनीयता की भूमिका; नैतिक मुद्दे; स्वास्थ्य आपूर्ति प्रौद्योगिकियां तथा चिकित्सीय परिणाम; मानकों, नियमों, सरकार की भूमिका तथा मेडिकल प्रौद्योगिकियों पर उनका प्रभाव और रोगियों को लाभ।

5. मेडिकल प्रौद्योगिकियां तथा अपातकालीन औषधियां- स्वास्थ्य आपूर्ति तथा मेडिकल प्रौद्योगिकियां किस प्रकार आपातकालीन मेडिसिन के क्षेत्र में योगदान करती हैं और करती रहेंगी; संकटकालीन स्वास्थ्य आपूर्ति; विपत्तिकारक स्थितियों में स्वास्थ्य देख-रेख।

1990 के दशक में हुए नवीन प्रयोगों ने बहुत प्रभाव उत्पन्न किए, जिनमें मेडिसिन में जारी प्रौद्योगिकीय प्रगति से और वृद्धि होगी। स्वास्थ्य के क्षेत्र में टेलीमेडिसिन, टेलीहेल्थ, कंप्यूटराइज्ड मेडिकल रिकॉर्ड, ई-हेल्थ तथा बी2बी और बी2सी प्रयोगों में इंटरनेट का इस्तेमाल कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पड़ाव हैं, जो स्वास्थ्य के परिदृश्य में सुधार ला रहे हैं। इस प्रकार, चुनौती तथा बदलाव के इस युग में एक प्रमुख तत्व है, स्वास्थ्य के आदर्श आपूर्तिकर्ता के रूप में अस्पताल का पुनर्रूपांकन (रिडिजाइन)। पहले ही मेडिकल तथा स्वास्थ्य प्रौद्योगिकियों में नवीन प्रयोग अस्पतालों के प्रचलन, डिजाइन तथा लक्ष्य को रूपांतरित कर रहे हैं।

स्वास्थ्य उद्योग :

स्वास्थ्य उद्योग एक बड़ी विकास प्रक्रिया के द्वार पर है जो उचित मूल्य पर स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने के लिए सभी नई प्रौद्योगिकियों को आत्मसात कर सकता है। वह सभी देशों में सबसे बड़ा नियोजक बनने के लिए प्रतिबद्ध है और न केवल सारी उपलब्ध पूंजी को नियोजित करेगा बल्कि कुशल कार्यशक्ति के एक बड़े हिस्से को भी इस्तेमाल में लाएगा। वह सभी नई प्रौद्योगिकियों का सबसे बड़ा उपभोक्ता भी बन जाएगा।

स्वास्थ्य उद्योग को आनेवाले समय में चुनौती का समाना करने के लिए नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए खुद को अनुकूल बना लेना चाहिए। उसे इन सब चीजों को एक सुनियोजित तरीके से निर्देशित करना चाहिए-

1. इंप्लांट करने वाले उपकरणों को विकसित करने के लिए माइक्रोप्रोसेसर प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल, जिनकी दूर संवेदकों से निगरानी की जा सकेगी। इन उपकरणों को स्वास्थ्य आपूर्तिकर्ताओं द्वारा रोगियों के विभिन्न शारीरिक विकारों को ठीक करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकेगा।
2. विभिन्न शारीरिक विकारों के उपचार या नियंत्रण के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस समर्थित सी.पी.यू. प्रेरित प्रौद्योगिकी का अधिक इस्तेमाल।
3. सही-सही, कम पीड़ादायक तथा कम हानिकारक सर्जरी के लिए ऑपरेटिंग कक्षों में रोबोटिक्स प्रौद्योगिकी का प्रयोग (रोबोटिक माइक्रोसर्जरी)।
4. ऑटोमेटेड तथा परिशुद्ध नैदानिक (डायग्नोस्टिक) अध्ययनों के लिए पारंपरिक प्रौद्योगिकियों के साथ प्रयोगशालाओं में रोबोटिक्स प्रौद्योगिकी का अधिक इस्तेमाल।
5. परिशुद्ध तथा कम पीड़ादायक और कम क्षति पहुंचानेवाली सर्जरी के लिए ऑपरेटिंग कक्ष के अंदर तथा बाहर लेजर प्रौद्योगिकी का अधिक इस्तेमाल।
6. रियल-टाइम डाटा प्राप्त करने तथा आवश्यक इलेक्ट्रो-फिजियोलॉजिकल हस्तक्षेप या जैव रासायनिक इस्तक्षेप प्रदान करने के लिए मेडिकल तथा सर्जिकल क्रियाओं में यंत्रीकरण (इंस्ट्रूमेंटेशन) का विकास तथा इस्तेमाल। यह सामान्य तथा पैथोलॉजिकल

दोनों प्रकार के भौतिक विज्ञान पर असर डालेगा।

7. घातक जैविक क्रियाओं के नियंत्रण के लिए संवर्धित ऊतकों का विकास तथा इस्तेमाल।
8. जांच कक्षों, उपचार कक्षों, ऑपरेशन कक्षों तथा डायग्नोस्टिक रिपोर्टिंग कक्ष की नेटवर्किंग के लिए सूचना प्रौद्योगिकी उपकरणों का इस्तेमाल।
9. दूर से उपकरणों तथा अन्य मशीनों के रख-रखाव के लिए माइक्रोप्रोसेसर प्रोद्योगिकियों तथा आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रतिरूपकों के साथ पैथोलॉजिकल प्रक्रियाओं के नियंत्रण के लिए दूर नियंत्रित इंस्ट्रूमेंटेशन का विकास संभव होगा।
10. विशिष्ट रोग संबद्ध डाटाबेसों की उत्पत्ति के लिए सूचना प्रौद्योगिकी उपकरणों का इस्तेमाल।

संस्थानों की नेटवर्किंग :

सभी प्रौद्योगिकियों द्वारा लक्ष्य आधारित तरीके से 'सभी के लिए समन्वित स्वास्थ्य' के लिए कार्य करना आवश्यक है। इस मिशन में निम्नलिखित चीजें सम्मिलित हो सकती हैं-

- विकलांगों तथा अशक्तों को सहायता उपलब्ध कराने जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में मेडिकल विश्वविद्यालयों, संस्थानों, अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशालाओं, उद्योगों तथा सामाजिक संगठनों की नेटवर्किंग।
- तपेदिक तथा कैंसर की बढ़ती घटनाओं को नियंत्रित करने के लिए जागरूकता और बचाव कार्यक्रम शुरू करना।
- पोलियो तथा अन्य तापमान-संवेदनशील टीकों के लिए एक राष्ट्र स्तरीय कोल्ड स्टोरेज शृंखला का निर्माण।
- राज्य तकनीकी शैक्षिक संस्थानों में मेडिकल प्रौद्योगिकी रख-रखाव पर अस्पताल से जुड़े डिप्लोमा कोर्स चलाना।
- चिकित्सीय उपकरणों के रख-रखाव तथा अपग्रेडेशन के लिए एक उद्योग-समर्थित प्रणाली की स्थापना।
- चयनित सहयोगी उपकरणों जैसे हियरिंग ऐड तथा मेडिकल उत्पादों जैसे इलेक्ट्रोड, कैथर्टर तथा लेड का उत्पादन।

समापन टिप्पणियां :

विकसित भारत के स्वप्न में स्वास्थ्य सेवा एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो जैव विविधता, बौद्धिक संसाधनों, सूचना प्रौद्योगिकी व ज्ञान नेटवर्क, बायोइन्फॉरमेटिक्स तथा अंतरिक्ष, रक्षा और परमाणु प्रौद्योगिकियों के लाभों को सामाजिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने के असीम अवसर प्रदान करता है।

पिछले कुछ दशकों में विकसित स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी ने निदान तथा उपचार में अप्रत्याशित सहयोग दिया है। सरकार तथा गैर-सरकारी एजेंसियों को ज्ञान प्राप्ति, प्रसार तथा लोगों द्वारा उसे आत्मसात् किए जाने के लिए एक सुस्थापित प्रक्रिया विकसित करना चाहिए। बौद्धिक समाज अपनी परतें खोलकर मानव अज्ञानता तथा गलत व्यवहार के अंधेरे कोनों को प्रकाशित कर रहा है। ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था तथा समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य तथा उपयुक्त रोजगार

के साथ जिम्मेदारी नागरिकता जन्म लेती है। यह एक स्थिर जनसंख्या के साथ एक समृद्ध राष्ट्र के लिए रास्ता साफ करेगा। प्रौद्योगिक भागीदारी तथा सामाजिक संगठनों के साथ विभिन्न विभागों द्वारा ग्रामीण विकास का समन्वित लक्ष्य भी आवश्यक है।

भारत समृद्ध जैव-विविधतावाले कुछ देशों में ऊपर की श्रेणी में है। हर्बल क्षेत्र में, पोषण, रोगों के बचाव तथा उपचार के लिए विभिन्न उत्पाद विकसित करने की काफी संभावनाएं हैं। 61 खरब अमेरिकी डालर के वैश्विक हर्बल उत्पाद बाजार में चीन का लगभग 6 खरब अमेरिकी डॉलर का हिस्सा है, जबकि भारत का हिस्सा 1 खरब अमेरिकी डॉलर का भी नहीं है। इस क्षेत्र में प्रगति के लिए विशाल अवसर हैं।

पुष्प कृषि तथा जल कृषि को भी बड़े पैमाने पर बढ़ाने के लिए भारत में ऐसी ही क्षमताएं हैं। इन प्राकृतिक संसाधनों के लिए ज्ञान आधारित मूल्य-संवर्धन का अर्थ होगा, केवल कच्चे माल की अपेक्षा मूल्य-संवर्धित उत्पादों का निर्यात। व्यवसायीकरण तथा विपणन के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल हमारी पहुंच तथा गति को अत्यंत तीव्र कर सकता है।

बिजनेस हाउसवाले भारतीय जैव प्रौद्योगिकीविदों के पास उपलब्ध जीनोमिक डाटा के विश्लेषण का अवसर होगा, जो स्वास्थ्य देख-रेख तथा उपचार के लिए दवाओं के उत्पादन को प्रेरित करेगा। प्रौद्योगिकी में रूपांतरित होता जैव अनुसंधान कृषि उत्पादों के उच्च उत्पादन में मदद करेगा। उत्पादकता बढ़ाने के लिए जेनेटिकली संशोधित बीजों के साथ कीट-मुक्त कृषि उत्पादन प्रदान करने में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्यंत संभावनाएं हैं।

किसी भी समाज के सभी स्तरों पर स्वास्थ्य आपूर्ति उद्योग के विकास को राजनीतिक इच्छा-शक्ति तथा सामाजिक बोध द्वारा सहयोग मिलना चाहिए। इसलिए उसे मानव जीवन का स्तर सुधारनेवाले प्रकार से 'कॉस्ट-इफेक्टिव' स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराते हुए उभरती चुनौतियों का सामना करना चाहिए। लक्ष्य है- वर्ष 2020 तक सभी के लिए स्वास्थ्य। विभिन्न ग्राम समूहों के लिए मोबाइल क्लीनिक आरंभ करके गैर-सरकारी संगठन इसमें सहयोग दे सकते हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र की तरह रणनीतिक प्रौद्योगिकी में क्रांति ने मानव जीवन तथा देशों की सुरक्षा पर कई उल्लेखनीय प्रभाव डाले हैं।

●

उड़े कहानी और कविताएं : मेरे सपनों के भारत में

अमिताभ शंकर राय चौधरी

यानी मेरे सपनों के भारत में बाल साहित्य कैसा हो? तो... सबसे पहले...

-बाम्बे टू बार्सिलोना यानी नांदीपाठ

'शाबाश अमीन, कॉफी अटर्ली, बटर्ली, डिलिशियस है!' हमारी जानी पहचानी प्यारी सी गुड़िया 'अमूल गर्ल' का 'ब्रह्मा' यूस्टेस फर्नांडिस 'आई एम बिकॉज ऑफ यू' के लेखक अमीन शेख को उसकी कल्पना में कहते हैं।

पर कॉफी की इस चुस्की का इस लेख के मंगलाचरण से क्या ताल्लुक? तो सुनिए- अपने बारे में अमीन शेख क्या कहते हैं, 'सड़कों पर रहनेवाले हजारों बेघर बच्चों की तरह मैं ने भी भीख मांगी, चोरी की और जूते पालिश किए। पांच साल की उम्र में मुंबई की एक चाय की दुकान पर काम करता था।... एक दिन... दो गिलास मुझसे टूट गए। दुकानदार की मार पड़ने के साथ साथ घर पर भी (सौतेले पिता द्वारा) पिटने के आसार थे। मैं डरकर घर छोड़कर भागा।'

फिर तो बेसहारा बच्चों के लिए काम करनेवाली संस्था 'स्नेह सदन' ने उसे शिक्षा दी और अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया। आगे वह उसी संस्था से जुड़े यूस्टेस की कार चलाने लगा। फिर उनके साथ अपने पहले विदेश सफर में पहुंचा- भूमध्य सागर के तट पर स्थित स्पेन का शहर बार्सिलोना। तो आगे चलकर 'बाम्बे टू बार्सिलोना' नाम से लाइब्रेरी कैफे चलाना शुरू किया। यहां बैठकर आप कॉफी पीजिए, साथ ही पढ़िए अपनी पसंदीदा किताब!

यहां आपके होंठ छू ले कॉफी का मग और निगाह उड़े किसी किताब के पन्नों के अंबर में...

यूस्टेस ने तो इस दुनिया को अलविदा कह दिया, मगर आज अगर वह रहते तो अमीन से कहते, 'शाबाश...!' (अमर उजाला- 4.11.16)

यानी हमारे बच्चों के हाथों में किताब होनी चाहिए, न कि धोने के लिए किसी की जूठन लगी गिलास।

अब्राहम लिंकन ने भी तो कहा था, 'मेरा सर्वोत्तम मित्र है वो, जो मुझे एक ऐसी किताब दे जिसे मैंने अभी तक नहीं पढ़ी है।' (रविवार डाइजेस्ट : नवंबर, 2016)

- मेरे सपनों के भारत में- वो देखिए....

हरी घास की चादर पर हिरनौटों की तरह उछल रहे हैं बच्चे- अपने हाथों को आकाश की ओर उठाए। आखिर वे अपनी नन्हीं-नन्हीं मुठ्ठियों से पकड़ना क्या चाहते हैं? नीले नभ के नीचे हवा

के थपेड़ों में वे क्या तैर रहे हैं? लाल-नीले-सफेद गुब्बारे? या परिंदे? या पतंगें? अरे नहीं जी,- वे तो भविष्य के बाल साहित्यकारों की कहानियां हैं.... कविताएं हैं .....

तो, 'चंदू मैंने सपना देखा' (नागार्जुन) के तर्ज पर मैं भी ख्वाब देखता हूं कि हमारे बच्चे बच्चियां, पोते, पोतियां, नाती, नतनियां या परपोते या उनके भी आगे की पीढ़ी के बच्चे उन्हें पकड़ रहे हैं, और पढ़कर खिलखिला रहे हैं या पलकों की सीपियों के नीचे रच रहे हैं कहानी के किसी चरित्र के लिए अश्कों की सौगात!

उड़ने के लिए परिंदों को चाहिए अपना पंख और हौंसला। साथ ही खुला आसमान। उसी तरह कहानी, कविताओं को उड़ान भरने के लिए चाहिए- हृदय को छू लेने वाली रचना, बाल पाठकों का उत्साह, उनके किशोर हाथों की छुअन यानी कोर्स बहिर्भूत किताबों को उठाने का अवसर हो उनके पास।

साथ ही ध्यान रहे- डॉ. नामवर सिंह ने कहा है, 'प्रौढ़ साहित्य से ज्यादा चुनौती भरा काम है- बाल साहित्य लिखना।'

जब 'कथा' के बाल साहित्य आलोचना विशेषांक के संपादक अनुज ने उनसे 'छंद तोड़कर कविता के नए सिस्टम' के बारे में पूछा तो उन्होंने अफसोस जाहिर करते हुए कहा, 'दरअसल आज लोगों के जीवन का छंद टूट गया है।'

तो मेरे हिंदुस्ताने ख्वाब में बच्चों को मिले इसी तरह छंद से सजी हुई कविताएं, आनंद का उफान मारती कहानियां....

पर-

- भूखे भजन न होय गोपाला!

इसके लिए चाहिए कि आने वाले दिनों में अपने देश में कोई भी बच्चा रोटी के लिए न तरसे।

उमर खैय्याम अपनी एक रुबाई में जमीं पर जन्नत उतर आने की शर्तें गिनाते हुए कहते हैं कि अगर किसी दरख्त की छांव के नीचे तुम मेरे पास बैठकर गुनगुनाती रहो, हाथ में हो एक कविता की किताब, और बगल में हो एक पानपात्र, साथ में रहे रोटी, तो बस फिरदौस उतर आए इस जहां पर...

तो केवल किताब से ही काम नहीं चलता, साथ में रोटी भी जरूरी है!

'हंगामा रिपोर्ट' में अमर्त्य सेन और जेन ड्रेज के अनुसार भारत में कुपोषण एवं इससे जुड़ी बीमारियों के कारण प्रति वर्ष 40 लाख मौतें होती हैं, (हिंदू- अंग्रेजी, 6.3.12.)। वैश्विक भूख सूचकांक में 88 देशों में भारत 66वें पायदान पर है। सूदान, कैमरून और नाइजीरिया जैसे गरीब देशों से भी नीचे। हमारे यहां 46 फीसदी बच्चे हैं कुपोषण के शिकार। (हिंदू- 27.8.09)। तो पहली शर्त तो यही होगी कि मेरे सपनों के भारत में कोई भी बच्चा (या कोई भी) भूख से बिलबिलाते हुए न सोये। तब तो कहीं वह कहानी कविता के परिंदों को छूने के लिए छलांग लगा सकता है!

अब जिस तरह परिंदों को उड़ान भरने के लिए पर चाहिए, उसी तरह उन किताबों को पढ़ने के लिए बच्चों में भाषा ज्ञान होना भी जरूरी है, तो...

- कोर्स, किताब और स्कूल- कुल मिलाकर 'पढ़ाई'

'अरे रे- वो बच्चा कहीं गिर न जाए!' स्कूली बच्चों से ठसाठस भरे विक्रम ऑटो की पिछली

सीट पर बैठा वह बच्चा सो रहा है। गले से लटक रहा है पानी का बॉटल। सिंदबाद के कंधे पर बैठे बूढ़े की तरह उसकी पीठ पर बैठी 'मोटी सरस्वती' (यानी बैग) उसे सामने की ओर धकेल रही है। इस बचपन को कैसे बुलाऊं? मैं कौन सी कहानी सुनाऊं?

2016 की दीवाली में दिल्ली में छाई जानलेवा धुंध लाल किले से लेकर ताजमहल और बड़ा इमामबाड़ा पर अपनी काली चादर बिछाते हुए अब नीलकंठ की जटाओं के ऊपर जहर के बादल फैलाने पर आमादा है। ऐसे में बच्चों को सांस की बीमारी से लेकर बस्ता ढोते ढोते पीठ दर्द तक बहुत कुछ हो सकता है। तो कब वह पढ़ेगा कोर्स की किताब और कब दौड़ेगा पकड़ने काले अक्षरों से बनी इन रंग बिरंगी तितलिओं को? तो, ऐ मेरे सपनों के हिंदुस्तान, तुम्हारे नभ में न हो ऐसे बिषैले कोहरे! स्कूल जाते हुए बच्चे निरोग रहें, खुशहाल रहें!

अब इस पढ़ाई की व्यवस्था का जरा जायजा लें -

1912 में कायिकी (फिजिओलॉजी) या मेडिसिन में नोबल विजेता फ्रांसीसी सर्जन एलेक्सिस कैरेल कहते हैं- हर बच्चा होशियार (जीनियस) पैदा होता है, बस हमारे स्कूल उन्हें भोंदू (इडियट) बना देते हैं! (हिंदू- 18.12.11)

मिडलसेक्स हॉस्पिटल (लंदन) के कार्डियोलॉजी के प्रोफेसर एवं मनीपाल विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति प्रो. बी.एम. हेगडे का मंतव्य भी उल्लेखनीय है- शिक्षा का उद्देश्य एक स्वस्थ दिमाग का निर्माण होना चाहिए, न कि केवल धनवर्षा करने वाले एक पेशे या धंधे की तैयारी।... परीक्षा में अंकप्राप्ति का दुराग्रह (ऑबसेशन) समाप्त करके एक स्वस्थ शिक्षा व्यवस्था के निर्माण के लिए समाज से सारे स्कूलों की छुट्टी कर देनी चाहिए! (हिंदू)

अंग्रेजी में 'एडुकेट' शब्द की उत्पत्ति लैटिन के इन शब्दों से हुआ है- 1. educare : जिसका संपर्क पालन पोषण से है, और 2. educere – (ducere से) अर्थात अगुवाई करना।

मगर हमारे यहां शिक्षा का पर्यायवाची शायद भय है। शिक्षकों का डर, इम्तहान का डर, असफलता का डर। ऐ मेरे हिंदोस्ताने ख्वाब- कमसे कम तुम्हारी शिक्षा व्यवस्था में आनंद हो, उल्लास हो। जहां नयी चीजें जानने की इच्छा की रोशनी झिलमिलाती रहे।

एक तस्वीर यह भी देखिए। गीता किंग्टन ने अपने शोध में 180 स्कूलों की छानबीन में पाया कि उ.प्र. और बिहार में 24 फीसदी शिक्षक औसतन गैरहाजिर रहते हैं। यानी 87,500 मिसिंग टीचर्स (टाइम्स ऑफ इंडिया. 22.1.12.)। तो? बिल्ली के कंठ में कौन बांधेगा घंटी?

लड़के लेंगे हिंदुस्तान के तौर पर उत्तराखंड बन तो गया मगर वहां की शिक्षा व्यवस्था की बानगी देखिए। अनिल प्रकाश जोशी कहते हैं उत्तराखंड के अस्तित्व में आने के पंद्रह साल बाद वहां 1800 विद्यालय बंद होने के कगार पर खड़े हैं। खुद मुख्यमंत्री के विधानसभा क्षेत्र में 155 में से 30 स्कूल क्षतिग्रस्त हैं। देवापगा के आंचल में बसे राज्य में 1.117 स्कूलों में पानी की व्यवस्था तक नहीं, 546 में शौचालय भी नहीं। (अमर उजाला 24.9.15.) और आज सोलह साल बाद वहां पर्वतीय जिलों के 2.80.000 मकानों में ताले पड़े हैं। बत्तीस लाख लोगों का पलायन हुआ है। 750 स्कूलों की स्थिति इतनी जर्जर है कि आकाश में बादलों के आते ही घोषणा हो जाती है- छुट्टी! (अ.उ. 9.11.16.)

ओडिशा साहित्य के जनक फकीरमोहन सेनापति के बचपन की यह घटना भी हमारी शिक्षा व्यवस्था पर काफी प्रकाश डालती है। वे जब पांच महीने के थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गयी।

मां ने खाट पकड़ ली और चौदह महीने बीमार रहने के बाद बेटे को अनाथ बनाकर चल बसीं। दादी ने उनको पाला पोसा। उनको स्कूल भेजा गया। पढ़ाई के बाद जब सारे बच्चे घर जाते तो उन्हें मास्टर साहब की सेवा के लिए रोक लिया जाता। जब महीने के अंत में गुरुजी तनख्वाह मांगने आए तो उनके निष्ठुर चचाजान ने मास्टर साहब से कहा, 'आप पढ़ाते तो हैं नहीं, तनख्वाह मांगने कैसे आ गए?'

तो पंडितजी ने कहा,'अरे मैं तो इसे अपने पास रखकर पढ़ाता हूं। खेलने भी नहीं देता।'

तो चाचा ने मुस्कुरा कर कहा, 'लेकिन इसकी पीठ पर तो मुझे एक भी बेंत के निशान दिखाई नहीं देते। तो?'

बस, आगे से अकारण ही मास्टर साहब उनकी पीठ पर दस बारह बेंत बरसा देते।

स्कूल में आगे नई किताब खरीदने के भी पैसे उनके पास नहीं थे। पढ़ाई छोड़ने की नौबत आ गयी। खैर, पिछली परीक्षा में प्रथम श्रेणी मिलने के कारण पुरस्कार में ही उन्हें कोर्स की सारी किताबें मिल गयीं। मुफ्त! (अमर उजाला. 8.11.16.)

'रुस की चिठ्ठी' में वहां की शिक्षा व्यवस्था की आलोचना करते हुए रवींद्रनाथ ने लिखा था- सांचे में ढालकर जिस मनुष्यता का निर्माण होता है, वह टिक नहीं सकती। सजीव मन के तत्वों के साथ अगर विद्या का सार न मिले तो या तो वह सांचा ही एकदिन टूट कर बिखर जाएगा, नहीं तो इनसान का मन ही सूखकर मर जाएगा, या चाबी से चलनेवाले खिलौने बनकर रह जाएगा।

तो मन का सजीव स्फूटन कैसे हो? उस भारत में इसका पता कौन बतलाएगा?

- कहानी- कविता

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन (1936) में प्रेमचंद ने अपने अभिभाषण में कहा था, 'साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई है। जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयां और अनुभूतियां व्यक्त की गयी हों।'

सिर्फ सच्चाइयों से अखबार के पन्ने भरे जा सकते हैं, परंतु साहित्य का गगन नहीं। जैसे फूलों से खुशबू आती है, साज बजने से मन अपने आप झूम उठता है, उसी तरह सच्चे साहित्य के पाठ से मन में अनुभूतिओं का उन्मुक्त आकाश उद्भासित हो जाता है। मानो दिन भर के श्रम के बाद आप गंगा की निर्मल धारा में अवगाहन कर खुद को तन मन से तृप्त कर लेते हैं। तभी तो पल्लव ने लिखा है, 'कहानी अगर पढ़ने लायक नहीं है तो उसे कोई पढ़ेगा ही क्यों?' (कहानी का लोकतंत्र)

कविता में छंदों के साथ ब्याह या बिछोह की बात तो नामवरजी से आपने सुन ही ली है, 'शिक्षारंभ' में रवींद्रनाथ लिखते हैं 'जल पड़े पाता नड़े' यह पंक्ति मानो उनके जीवन में आदिकवि की प्रथम कविता है। आखिर इसमें ऐसा कौन सा माधुर्य है जो बालक के अंतरमन को एक स्निग्ध जुन्हाई से सराबोर कर देता है? रवींद्रनाथ कहते हैं - अंत्यानुप्रास है इसीलिए कही हुई बात समाप्त होकर भी खत्म नहीं होती। भले ही उसके वाचन का अंत हो जाता है, परंतु उसकी झंकार दिलो दिमाग में अनुगुंजित होती रहती है। रिमझिम बूंदे बरसा पानी/पत्तियों ने छेड़ी कहानी ..... तो कौन सुनेगा उन पत्तियों से बैसाख जेठ की तपन में झुलसने की, पावस में भींगते हुए पाजेब बजाने की, बसंती

पवन में खिलखिलाने की कहानी?

डॉ. श्रीप्रसाद ने 'बाल साहित्य सृष्टा रवीन्द्रनाथ टैगोर' का आरंभ यूं करते हैं, 'एक चीनी कहावत है- हरी डाल अंतर में लहराओ/गीत सुनाती चिड़िया आएगी।

मानव मन की यही वासंती पौध है, जो मनुष्य को बाल साहित्य सर्जना के लिए प्रेरित करती है, क्योंकि बिना इस गीत गाने वाली चिड़िया की प्रेरणा के शब्द फूटेंगे ही नहीं।'

'नंगातलाई का गांव' में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी का जिक्र किया है। उनका नाम है महेश दत्त मिश्र। पता नहीं वे सज्जन कवि थे भी या नहीं, परंतु उनकी इन दो पंक्तियों से देखिए आपके अंतर्मन में जाने कितनी खिड़कियां खुल जाती हैं।

'मां बाप बहुत रोए घर लौट अकेले में/ मिट्टी के खिलौने भी सस्ते न थे मेले में।'

इन पंक्तियों से गुजरते हुए आपके मन में कितने ही दृश्यों का मेला लग जाता होगा। वो रहा हामीद- अपनी दादी बूढ़ी अमीना के लिए चिमटा खरीद रहा है। आज ईद है न? पर बेचारे ने सबेरे से कुछ खाया नहीं। दादी ने उसे रास्ते में खाने के लिए जो पैसे दिये थे, उसे अपने लिए खर्च न कर वह अभागा दादी के लिए चिमटा ले रहा है। 'रोटी बनाते समय मेरी दादी की उंगलियां जल जाती हैं न?'

या इस नाचीज की छोटी सी कहानी 'मेला' (स्नेह : अप्रैल, 2003) में नन्हीं बच्ची तिन्नी का मिट्टी का गुड्डा मेले में पीछे कहीं दुकान में छूट जाता है। इधर रथयात्रा के मेले में बारिश शुरु हो गयी। तो कौन उसे लाकर तिन्नी को देगा? दुकान में सजे मिट्टी के शेर, तोते, हाथी- सभी अपने अपने ठंग से तिन्नी की मदद करना चाहते हैं। यहां तक कि सड़क के दरिया में तैरती कागज की कश्ती भी कहती है- आओ गुड्डा, मुझ पर बैठ जाओ। मैं तुम्हें तिन्नी के पास पहुंचा देती हूं। क्या यह संभव हो सकता है?

यहां सवाल यह नहीं कि मिट्टी के खिलौने बरसात में घुल कर रह जायेंगे। सवाल यह नहीं कि कागज की नाव लबालब पानी में डूब जाएगी। क्या उससे गुड्डे का भार संभलेगा? यहां बात दर असल यह है कि- ऐ दोस्त, मुझसे तेरे आंसू देखे नहीं जाते। हमदर्द दुःख बांटने आता है। साथी हाथ बढ़ाता है। निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुःख रज मेरू समाना॥ (किष्किंधा कांड, मानस)

महेशजी की पंक्तियों में मां की ममता रो रही है, पिता की बेबसी घुट-घुटकर रह जाती है- हाय मेरी इतनी औकात नहीं कि मैं अपनी औलाद के लिए मेले से एक मिट्टी का खिलौना भी खरीद सकूं। यहां पर यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं होगा कि भारत जारी की गई The Credit Suisse रिपोर्ट दर्शाती है कि मुल्क की कुल संपत्ति की 53 फीसदी है एक प्रतिशत की मुट्ठिओं में। 76. 3 फीसदी लक्ष्मी कैद है दस प्रतिशत के वर्चस्व में। (पीपुल्स डेमोक्रेसी. 8-14. अगस्त. 2016)

शायद आपके मन को भी यह सवाल झकझोरता है- आखिर ऐसा क्यों है? यह विभाजन कब तक चलेगा?

- औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥ (मानस- बालकांड)

तो मेरे सपनों के भारत में मन को छू लेनेवाली सुख-दुःख और जीवन संघर्ष की कहानी कविताएं अपने पंखों को फैलाकर बच्चों के मन-गगन में उड़ सके। चाहे उनमें वाल्मीकि के राम और शबरी

हों, या व्यास के एकलव्य और अर्जुन, या प्रेमचंद के होरी और शंकर, या रवींद्रनाथ के काबुलीवाला, या सत्यजीत के गगन बाबू जो उस लोक से आकर मानो इस लोक के लोगों से कहते हैं- मैं ही नहीं मर गया, बल्कि तुम्हारी इंसानियत मर गयी है! आम आदमी की कथा से परी कथा तक, विज्ञान कथा से लेकर भूत कथा तक- जो जीवन के क्षितिज पर सूर्य के सातों घोड़ों को हांक सके! तुलसीबाबा ने ठीक ही कहा है- पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारू/माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारू!!

(लेखक सुपरिचित कथाकार हैं)

●

मेरे सपनों का भारत : भविष्य का मेरा भारत

धीरेन्द्र पाल सिंह

'मेरे सपनों का भारत' से अधिक उपयुक्त वाक्य मुझे लगता है 'भविष्य का मेरा भारत'। हमारे मन और मस्तिष्क में एक ऐसे भारत की परिकल्पना होनी चाहिए जिसका भविष्य एक ठोस आधार पर अवस्थित हो। इस बात पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है कि हमारी आंखों से हमारा अतीत कभी ओझल न हो। वह हमारी स्मृतियों में हमेशा बना रहे। उसकी सकारात्मकता हमें सदैव संबल देती है। अतीत की श्रेष्ठ परंपराएं हमारी प्रेरणा हैं। साथ ही इस पर भी गंभीरता से विचार करना होगा कि एक मजबूत राष्ट्र के रूप में हम कहां खड़े हैं, आगामी 10- 20 वर्षों में हमारा देश कहां होगा या यह कहें कि हम वैश्विक पटल पर भारत को कहां देखना चाहेंगे। भारत एक ऐसा देश है जहां विशालता की भावना हमारे वाङ्मय में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'वसुधैव कुटुंबकम' का भाव भारत में अंतर्व्याप्त है और अपने लिए सपने देखने के साथ साथ 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' की भावना हमें अपने साथ सबके भविष्य की चिंता करने की याद दिलाती है।

सपनों की बात आते ही मुझे भारत के लोकप्रिय पूर्व राष्ट्रपति स्व. डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की याद बरबस आ जाती है। मुझे उनका वह कथन अत्यंत प्रेरित करता है जिसे वे युवाओं और छात्रों के साथ संवाद करते समय अक्सर दोहराया करते थे कि 'हमें सपने देखने चाहिए, खुली आंखों से सपने देखने चाहिए और उन्हें पूरा करने के लिए भरसक प्रयास करने चाहिए।'

वस्तुतः सपने देखना मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति में शामिल है। चाहे वह सपने बंद आंखों से देखें या खुली आंखों से। इसीलिए सपने तो हर एक व्यक्ति देखता है। सपनों के होने का अर्थ है कल्पना का होना, कल्पना के होने का अर्थ है विचार का होना और यदि मनुष्य विचारशील और कल्पनाशील है तो वह एक सुंदर जीवन का निर्माण कर सकेगा। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि सपनों की एक अलग दुनिया है। उनका अपना एक अलग विज्ञान भी है। कुछ लोग सुप्तावस्था में देखे गए सपनों का अलग अलग विश्लेषण करते हैं और उनके अलग अलग अभिप्राय भी निकालते हैं। यद्यपि नींद के दौरान देखे जाने वाले अधिकतर सपने व्यक्ति की निजी जिंदगी से जुड़े हुए माने जाते हैं। जब हम देश के संदर्भ में सपनों की बात करते हैं तो निश्चित रूप से ये सपने खुली आंखों से देखे जाने वाले सपने होंगे।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपनी पुस्तक मेरे सपनों का भारत की भूमिका में कई व्यक्तियों का उल्लेख करते हुए उनके विचारों की चर्चा की है। उनमें से कोई भविष्य में कुछ बनना चाहता

है तो कोई कुछ करना चाहता है। कलाम साहब खुद चुनौतियों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि 'जब हम भारत में राकेट, प्रक्षेपण यान, मिसाइल प्रणालियां तथा संबंधित प्रौद्योगिकी का विकास कर रहे थे तो कई कारणों से विकसित विश्व ने हमें प्रौद्योगिकी प्रदान करने से इनकार कर दिया। इसने युवा मस्तिष्कों को चुनौती देने का काम किया। प्रौद्योगिकी न मिलने पर प्रौद्योगिकी प्राप्त की जाती है। आज भारत के पास प्रक्षेपण यानों, मिसाइलों तथा वायुयानों के सिस्टम डिजाइन, सिस्टम इंजीनियरिंग, सिस्टम इंटीग्रेशन तथा सिस्टम मैनेजमेंट की योग्यता और प्रौद्योगिकियों के विकास की क्षमता है।'

इससे स्पष्ट है कि भारत ने हमेशा चुनौतियों का सामना किया है और मैं ऐसे ही भारत की कल्पना करता हूं जो निरंतर चुनौतियां स्वीकार करे और अपनी मेधा से उनका हल खोजे।

उक्त परिप्रेक्ष्य में, जब मैं भविष्य के भारत को देखता हूं तो मुझे एक शिक्षित, स्वावलंबी, समर्थ, सशक्त, और समग्र-विकसित भारत नजर आता है। मेरे भविष्य का भारत समग्र रूप से विकसित राष्ट्र हो : वैचारिक रूप से, आर्थिक रूप से, सामाजिक रूप से, पर्यावरण एवं संपोष्यता की दृष्टि से, खुशहाली (Happiness) की दृष्टि से और आध्यात्मिकता (Spirituality) की दृष्टि से भी। लौकिक और अलौकिक दोनों ही दृष्टि से सम्पन्न हो अपना भारत। शाश्वत मानवीय मूल्यों-सत्य, सदाचरण, शांति, अहिंसा और प्रेम का जीवंत उदाहरण बने भारत-ऐसा अनुकरणीय देश जिससे विश्व के अनेक देश सीखें। दया, करुणा, परस्पर सदभाव, सौहार्द, सहअस्तित्व, शाश्वत भाईचारा (Universal brotherhood) की मिसाल बने मेरा भारत। विज्ञान, तकनीकी, ज्ञान, शिक्षा, विद्या और विवेक सभी स्तरों पर चहुं ओर कीर्तिमान स्थापित करे मेरा भारत। इन सभी आयामों में समर्थ हो हमारा देश। भारत की गुरुकुल परंपरा से हम अनभिज्ञ नहीं हैं।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान किसी भी देश के निर्माण में होता है। भविष्य के भारत में प्रत्येक बच्चा प्राथमिक से ले कर उच्च शिक्षा तक प्राप्त करे ताकि हमारा देश उन्नति की सर्वोच्च सोपान चढ़ सके।

दुनिया के अन्य देशों से हमारा देश किन अर्थों में अलग है यह हमारी युवा पीढ़ी तक संप्रेषित होना चाहिये। आज भी हम मूल्यों को अपनी जीवनचर्या में शामिल करना अनिवार्य मानते हैं। मेरे सपनों में मुझे ऐसा भारत दिखता है जहां सभी भारतीय अक्षर ज्ञानी नहीं अपितु सही मायने में शिक्षित हों। समग्र शिक्षा (Holistic Education) से लबालब हों हमारे देशवासी। अपने सदियों पुराने देशज ज्ञान, अपनी सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं का सम्मान करते हुए उन्हें और अधिक परिष्कृत रूप में अपनाते हुए, नवाचार एवं ननीनतम ज्ञान तथा विज्ञान को स्वीकार करते हुए और अधिक सक्षम एवं समर्थ बने मेरा भारत। समग्र शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास और राष्ट्र के समग्र विकास का विश्व में एक प्रादर्श (Role Model) बने अपना भारत।

हर दृष्टि और आयाम से स्वावलंबी और स्वतंत्र बने मेरा भारत। निर्भीक, निडर, आंतरिक और बाह्य रूप से सुरक्षित, संरक्षित, अखंड और अक्षुण्ण रहे हमारा भारत।

मेरे भविष्य का भारत संपूर्ण विश्व में मानवता के श्रेष्ठ मापदंडों को प्रचलित करने वाला देश बने। महामना पं. मदन मोहन मालवीय ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना करते समय यह सपना देखा था कि इस संस्था में ऐसे विद्यार्थी तैयार हों जो चारित्रिक दृष्टि से श्रेष्ठ हों और राष्ट्र

निर्माण में अपना योगदान दे सकें। वे कहते थे-

'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गम् न पुनर्भवम
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्त नाषनम्।'

अर्थात न तो तुम्हें राज्य की कामना करनी चाहिए, न स्वर्ग की और न ही पुनर्जन्म की। तुम्हारी इच्छा तो केवल दुखी, पीड़ित लोगों के दुःख दूर करने की होनी चाहिए। भारत में स्वामी विवेकानंद से लेकर गांधी तक न जाने ऐसी कितनी विभूतियां रही हैं जिन्होंने केवल राष्ट्र सेवा में ही अपना जीवन समर्पित कर दिया। 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' को अपना मूल मंत्र मानने वाला यह देश स्वयं के लिए नहीं बल्कि दूसरों के लिए जीता है। अपरिग्रह का भाव हमें याद दिलाता है कि यहां सब कुछ पृथ्वी और प्रकृति प्रदत्त है। व्यक्ति मात्र का निजी कुछ भी नहीं है यहां। यही भारत की परंपरा रही है। मेरा सपना भी यही है कि अपनी परंपराओं का निर्वाह करते हुए भारत विश्व का गौरव बने ताकि समस्त भारतवासी सिर उठाकर और सीना तानकर, आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान के साथ जीवन जी सकें- ऐसा हो मेरे भविष्य का भारत।

॥जय हिंद॥ ॥जय भारत॥

(लेखक शिक्षाविद् हैं)

●

अंक के रचनाकार

- **प्रकाश जावड़ेकर-** मानव संसाधन विकास मंत्री, शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001
- **कमल किशोर गोयनका-** ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052, 09811052469
- **जी. गोपीनाथन-** सौपार्णिका कांक्कचेरी (पीओ), कुलक्काटचाली, वाया चेलेम्ब्रा-673634 (केरल)
- **अच्युतानंद मिश्र-** आटी-419, शिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201010 (उ.प्र.)
- **रामबहादुर राय-** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, जनपथ, नई दिल्ली-110001, 9350972403
- **दादूराम शर्मा-** महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी, जिला- सिवनी-480661, (म.प्र.) 8878980467
- **प्रमोद कुमार दुबे-** एसोसिएट प्रोफेसर, आईवी4/47, एनसीईआरटी कैंपस, श्रीअरबिंदो मार्ग, नई दिल्ली-110016, 9810780771
- **देवीप्रसाद त्रिपाठी-** 13-डी, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001, 9013181396
- **पुष्पेश पंत-** 4280, सेक्टर-23 ए, गुड़गांव-122017, (हरियाणा) 9810353999
- **एस.एन. सुब्बाराव-** गांधी शांति प्रतिष्ठान, 221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110001 9868942329
- **कमल नयन काबरा-** 8 नेल्सन मंडेला रोड, बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, 011-43158826
- **विभांशु दिव्याल-** 227, वार्तालोक अपार्टमेंट, सेक्टर 4 सी, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012, (उ.प्र.)
- **प्रयाग शुक्ल-** एच-416 पार्श्वनाथ प्रेस्टीज, सेक्टर 93 ए, नोएडा-201301 09810973590
- **संजीव-** 43-ए, न्यू डीडीए जनता फ्लैट्स, चिल्ला मयूर विहार, फेस-एक, दिल्ली-110091, 8587832148
- **राम पुनियानी-** 1102 बिल्डिंग नं. 5 म्हाडा डीलक्स, नियर रामबाग, पवई, मुंबई-400076, (महाराष्ट्र) 9322254043
- **अरुण कुमार त्रिपाठी-** डी-104, जनसत्ता अपार्टमेंट, सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012 (उ.प्र.) 9818801766
- **मनोज कुमार-** प्रोफेसर/निदेशक, महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा-442001 (महा.), 9422404277
- **अमिताभशंकर राय चौधरी-** सी-26/25-40 रामकटोरा, वाराणसी-221001, (उ.प्र.) 9455168359
- **धीरेन्द्र पाल सिंह-** निदेशक, राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) बेंगलुरू-560072 (कनार्टक) 8023005112
- **सत्येंद्र प्रकाश-** डी-31, थर्ड फ्लोर, गली न. ई-1ए, गणेश नगर, पांडवनगर काम्प्लेक्स, दिल्ली-110092, 9958834124
- **उमेश चतुर्वेदी-** द्वारा श्री जयप्रकाश, दूसरा तल, निकट शिवमंदिर, एफ-23 ए, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016, 9599661151

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सदस्यता आवेदन-पत्र

बिक्री एवं प्रसार कार्यालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

'बहुवचन' वार्षिक सदस्यता शुल्क : बैंक ड्राफ्ट से रु. 300/- व्यक्तिगत
रु. 400/- संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए
'बहुवचन' द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क : बैंक ड्राफ्ट से रु. 600/- व्यक्तिगत
रु. 800/- संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए

'पुस्तक-वार्ता' वार्षिक सदस्यता शुल्क : बैंक ड्राफ्ट से रु. 120/- व्यक्तिगत
रु. 180/- संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए
'पुस्तक-वार्ता' द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क : बैंक ड्राफ्ट से रु. 240/- व्यक्तिगत
रु. 360/- संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए

बहुवचन/पुस्तक वार्ता का संयुक्त एक वर्षीय शुल्क रु. 420/- व्यक्तिगत
रु. 580/- संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए

(कृपया मनीऑर्डर एवं चेक नहीं भेजें।)

ड्राफ्ट **'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा'** के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें। किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. : 07152-232943

'बहुवचन/पुस्तक-वार्ता' पत्रिका के एक वर्षीय/द्विवर्षीय/संयुक्त सदस्यता के लिए रुपये ..... का बैंक ड्राफ्ट संख्या ..... दिनांक ..... संलग्न कर रहा हूं/कर रही हूं, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

नाम : ----------

पता : ----------

----------**पिन कोड :** ----------

दूरभाष : ----------**ई-मेल :** ----------

दिनांक : ..... (सदस्य के हस्ताक्षर)